नीलजा-३

जम्मू-काश्मीर राष्ट्र-भाषा प्रचार समिति, श्रीनगर।

नीलजा - ३

१९७७-७८

जम्मू–कश्मीर राष्ट्र-भाषा प्रचार समिति

द्वारा प्रकाशित

वार्षिक साहित्यिक संकलन

नीलजा - ३

●

सम्पादक मण्डल

- प्रो० काशी नाथ दर (अध्यक्ष)
- प्रो० चमन लाल सप्रू (संयोजक)
- श्री मोती लाल प्रमोद (प्रबन्ध)

●

* आवरण—कपिल कौल

●

मूल्य : दस रुपये

मुद्रक :
भान प्रिंटर्स, ७७६-बी/१, नवीन शाहदरा, दिल्ल-११००३२

NEELJA-3 (AN ANTHOLOGY OF J & K HINDI WRITERS)
PRICE : Rs. 10-00

Published By— **J & K Rashtra Bhasha Prachar Samiti**
SRINAGAR, KASHMIR. 190-001

समर्पण

कश्मीरी भाषी प्रथम हिन्दी कवि

१९वीं शताब्दी

के

भक्त-प्रवर महाकवि परमानन्द

की

पावन स्मृति

में

सश्रद्धा समर्पण

जम्मू-कश्मीर राज्य के परिवहन एवं आपूर्ति मंत्री
श्री गुलाम मुहम्मद शाह **नीलजा–९** का विमोचन करते हुए ।

नीलजा–३

अनुक्रमणिका

●

पृष्ठ संख्या

—o—

दो शब्द

साहित्य वस्तुत: साँस्कृतिक थाती की मानसिक अभिव्यक्ति है; संस्कृति का प्रवाह अजस्र है, यह कभी भी हाथ पाँव समेट कर सुस्ताने नहीं बैठती; इस की सजीव प्रेरणा ही जीवन में सार्थकता ले आती है; कहने को तो हर एक युग अपनी विशिष्ट संस्कृति का जन्मदाता समझा जाता है, परन्तु वास्तव में इस की अविछिन्न धारा में जो उतार चढ़ाव आते है, उन की ही नये युग की मांगों के अनुसार पूर्नव्याख्या की जाती है; नवीनता केवल दृष्टिकोण की है, परम्परागत आस्थाओं की नहीं। इस प्रकार संस्कृति तथा साहित्य के बीच की रेखा स्वत: सिद्ध मिट जाती है, प्राचीन और नवीन का मधुर, सरस संगम बिना किसी उल्लेखनीय आयास के बन पड़ता है; साहित्य जोड़ता है, तोड़ना कभी नही; संस्कृति भूत, वर्तमान और भविष्य की शतरंगी आभा में नये अर्थ जोड़कर इन की कड़ियों में एक अप्रितम तारतम्य की सृष्टि करती है। इस तरह नवीन प्राचीन का ही एक सुसंस्कृत तथा परिमार्जित अगला अध्याय बन जाता है; नीलजा को वितस्ता आदि किसी भी नाम से पुकारें, इस की धारा में बनते-संवरते-बिगड़ते बुलबुलों की संगीतात्मक गतिशीलता में कोई भी विकार सम्भव नहीं। इसी प्रांजल ध्येय को सामने रख कर ज०क० राष्ट्रभाषा प्रचार समीति, श्रीनगर ने अपनी संस्कृति को उजागर करने के लिए, 'नीलजा' की तरंगों को इस का दायित्व सौंपा है; प्रस्तुत तीसरी तरंग इसका ज्वलन्त प्रमाण है। किसी भी तरंगिरगी का शाश्वत संगीत एक स्वर नहीं होता; एकस्वरता वितृष्णा का पर्याय बन जाती है; अत: इस तीसरी तरंग की मीठी छुनछुन में आप कश्मीर की प्राकृतिक विधिधता के अनुरूप ही 'विषम' और 'सम' तालों से अवगत होंगे, और अपनी जीवन्त धड़कनों को इस से समस्वर होते हुए अनुभव करेंगे; ऐसा हमारा विश्वास है।

इधर कई स्पष्ट कारणों से अब हमारी समिति को हिन्दी-प्रचार को सोद्देश्य बनाने के लिए सृजनात्मक साहित्य की ओर भी अग्रसर होना पड़ा है; प्रचार-प्रसार तो अपनी जगह ठीक है, परन्तु इसे वाणी देना भी हमारे कार्य-क्षेत्र का एक अनिवार्य अंग है; अभी तो यह तृतीय तरंग अपनी दो बड़ी बहनों - प्रथम और द्वितोय—के हाथों में हाथ डालकर आप का मनोरंजन करके ज्ञान-लाभ की दिशा में भी एक निर्दिष्ठ दायित्व निभाने में सफल होगी। हम यही आशा करते हैं।

प्रस्तुत तरंग में अधिक सुरुचिता और आर्कषक निखार लाने में श्री पृथ्वी नाथ मधुप, प्रो० चमन लाल सप्रू जी तथा श्री मोती लाल जी 'प्रमोद' ने अनथक

परिश्रम किया है, समिति परिवार इसके लिए उनका आभारी है; साथ ही हम उन प्रिय बन्धुओं को धन्यवाद दिये बिना नहीं रह सकते, जिन के सक्रिय सहयोग से प्रस्तुत तरंग का कलेवर सज पाया है, हमें पूर्ण विश्वास है कि उनका आशीर्वाद सदा हमारे साथ रहेगा।

अपनी मानसिक सन्तान किसे प्यारी नहीं लगती; प्रिय समीक्षकों से हमारा सविनय अनुरोध है कि वे इन पृष्ठों पर अंकित भावों की अपेक्षा इनमें समोई हुई भावनाओं का आदर करते हुए हमें अपने बहुमूल्य परामर्श का सुअवसर प्रदान करें, ताकि अगली तरंगों में उनके सुझाव यथेष्ट स्थान पा सकें।

कविवर इक़बाल ने बहुत ही खूब कहा है कि हिमालय के ये चश्मे कभी सूख नहीं सकते, ये अजर और अमर हैं; लोकनायक तुलसी ने किस मार्मिक स्वाभाविकता से कहा है:—

निज कवित्त केहि लाग न नीका।
सरस होउ अथवा अति फीका॥

(प्रो०) काशीनाथ दर
कार्याध्यक्ष,
जम्मू-कश्मीर राष्ट्र भाषा प्रचार समीति.
श्रीनगर (कश्मीर)।

आमुख

'नीलजा' की तृतीय तरंग को हिन्दी संसार की सेवा में प्रस्तुत करते हुए हमें अतीत प्रसन्नता हो रही है। यह वार्षिक संग्रह जम्मू-कश्मीर राज्य के साहित्यकारों की हिन्दी रचनाओं का एक प्रतिनिधि संकलन है। जिस प्रकार नीलजा (वितस्ता) नदी की गरिमा में संवृद्धि का श्रेय इसकी सहायक नदियों को है; ठीक उसी प्रकार हमारे 'नीलजा—३' नामक इस वर्ष के साहितियक-संकलन को संपुष्ट करने का श्रेय जम्मू-कश्मीर राज्य के सुदूर क्षेत्रों, यथा पुँछ, भद्रवाह, कठुआ आदि में रहने वाले हिन्दी के मौन साधकों को है। इस संकलन का मात्र उद्देश्य न केवल इस राज्य के हिन्दीत्तर भाषी हिन्दी साहित्य-सेवियों की प्रतिभा को एक सूत्र में पिरो कर मां-भारती का श्रृंगार करना है, अपितु राष्ट्रभाषा हिन्दी के माध्यम से महान भारत देश के मुकुट–मणि जम्मू-कश्मीर प्रदेश की लोक-संस्कृति, साहित्य और भाषा की विशिष्टताओं से परिचित करके सम्पूर्ण देश की मूलभूत भावात्मक एकता को प्रकाश में लाना है। हमारी संस्था का बोध वाक्य भारत-जननी एक हृदय हो' भी इसी उद्देश्य की पूर्ति के लिए हमारा मार्ग-दर्शन करता है। जभी तो प्रात: स्मरणीय विश्ववंध महात्मा गांधी द्वारा संस्थापित इस महान संस्था के प्रादेशिक एकक के रूप में हमारी समिति गत बाईस वर्षों से कार्य रत है।

हमारे राज्य में 'सांस्कृतिक अकादमी' की त्रैमासिक पत्रिका को छोड़कर समय सम्भवत: कोई और विधिवत् हिन्दी पत्रिका प्रकाशित नहीं हो रही है। कुछ एक शैक्षणिक संस्याएँ अवश्व यदा-कदा अपने छात्रों की रचनाओं को प्रकाशित करती रहती है परन्तु स्तर आदि को दृष्टि से भी उनकीअपनी सीमाएँ हैं। अत: उक्त हिन्दीतर प्रदेश में इस बड़े अभाव की पूर्ति के हेतु हमारी समिति "सतीसर" नामक मासिक हिन्दी पत्रिका के लिए भरसक प्रयत्नशील है। किन्तु समिति के अपने सीमित साधनों से यह पुण्य कार्य अभी निकट भविष्य में पूरा होने की संभावना नहीं। तब तक इस कमी को पूरा करने का माध्यम भी "नीलजा" को ही बनना पड़ रहा है।

हमारे राज्य में हिन्दी के अनेक प्रतिष्ठित लेखकों, कवियों, नाटककारों एवं समालोचकों के साथ-साथ बीसियों नवोदित साहित्यकार उभर रहे हैं। इनमें से अधिकाँश हिन्दी के साथ-साथ अपनी मातृभाषाओं कश्मीरी, डोगरी और लद्दाखी के भी सिद्धहस्त लेखक हैं। हिन्दी इस प्रकार इन बन्धुओं के लिए प्रदेश की भाषाओं तथा राष्ट्र-भाषा के बीच एक स्वस्थ सम्बन्ध स्थापित करके एक सेतु बनने का प्रबल माध्यम बनी है।

'नीलजा : ३' के लिए हमारे पास आशातीत मात्रा में रचनाएँ प्राप्त हुई हैं। अपनी सीमित आर्थिक अवस्था के कारण उक्त सभी रचनाओं को प्रस्तुत संकलन में सम्मिलित करना सम्भव न था। अतः हमने ऐसी रचनाओं को प्राथमिकता दी है जो राज्य के प्राय: प्रत्येक जिले के लेखकों का प्रतिनिधित्व कर सकें। प्रस्तुत संग्रह में इस अचंल की संस्कृति और इतिहास के कुछ अछूते विषयों पर पहली बार लिखे गए शोध-पूर्ण निबन्ध संकलित किए गए हैं—जो इस संकलन की सबसे बडी विशेषता है। इस संकलन में एक और विशेष बात आप यह पायेंगे कि 'नीलजा' एक शोध-पत्रिका और साहित्यिक पत्रिका का सङ्गम बनी हैं। नीलजा-१ और नीलजा-२ के प्रकाशन पर हिन्दी के मनीषियों, सुधी-लेखकों और राष्ट्र-भाषा सेवियों से साधुवाद और आशीर्वाद के साथ-साथ जिन न्यूनताओं का संकेत भी मिला है उनसे हम प्रोत्साहित एवं सतर्क होकर प्रस्तुत संकल तैयार करने में समर्थ हुए हैं। एतदर्थ उन सभी आदरणीय बन्धुओं के प्रति अपना हार्दिक आभार प्रकट करना हम अपना कर्त्तव्य समझते है। साथ ही उन सभी साहित्यकारों को भी धन्यवाद देना अपना धर्म समझते हैं जिनकी रचनाओं ने इस संग्रह को गरिमा प्रदान की है।

अन्त में, मैं समिति के अध्यक्ष प्रो० काशीनाथ जी दर और समिति के कर्मठ प्रचार-मंत्री भाई श्री मोतीलाल जी प्रमोद का आभारी हूं जिन्हों ने क्रमश: अपने मार्ग-दर्शन, सुझावों और पग-पग पर सहयोग प्रदान कर मुझे इस योग्य बनाया कि नीलजा-३ को आपके सम्मुख यथा समय प्रस्तुत कर सका हूं।

कश्मीर में हिन्दी की छपाई की सन्तोषजनक व्यवस्था न होने के कारण हमें विवश होकर राज्य से बाहर इसकी मुद्रण-व्यवस्था करनी पड़ रही है। इस दिशा में अपना अमूल्य समय देकर भाई श्री पृथ्वीनाथ मधुप ने जो तकनीकी सलाह एवं सहयोग प्रदान किया उसके लिए हम उनके प्रति कृतज्ञता ज्ञापन करते हैं। श्री मधुप जी तो समिति-परिवार के आरम्भ से ही एक कमंठ सदस्य रहे हैं।

श्रीनगर (कश्मीर)
महाशिवरात्रि ७ मार्च १९७८

—चमनलाल सप्रु
संयोजक-सम्पादक
"नीलजा-३"
एवं
संयुक्त मंत्री
ज०क० राष्ट्र-भाषा प्रचार समिति, श्रीनगर

कश्मीर की अनोखी दर्शनविद्या

• डॉ० बलजिन्नाथ पण्डित

महाकवि कालिदास ने त्रिलोक-सुन्दरी भगवती-पार्वती के शरीर-सौन्दर्य का वर्णन करते हुए कहा है कि प्रजापति ने शरीर-सौन्दर्य के सभी प्रसिद्ध उपमान-द्रव्यों को, अर्थात् चन्द्रमा, इन्दीवर, कमल, विल्वफल, कदली काण्ड आदि इकट्ठा करके उन्हें क्रम से मुखमण्डल, नेत्र, आनन, वक्षस्थल, जघाकाण्ड आदि के स्थानों पर जोड़ जोड़ कर प्रयत्नपूर्वक पार्वती देवी के सर्वाङ्ग सुन्दर शरीर का निर्माण मानो इस प्रयोजन से किया कि वह सारे के सारे शरीर सौन्दर्य को एक ही शरीर के भीतर देख ले :

सर्वोपमाद्रव्य–समुच्चयेन यथापदेश विनिवेशितेन ।
सा निर्मिया विश्वसृजा प्रयत्नाद् एकस्थ-सौन्दर्य-दिदृक्षयेव ।। (कु० सं०)

ऐसा प्रतीत होता है कि ठीक इसी प्रकार की अभिलाषा से उसने समस्त प्राकृतिक सौन्दर्य को एक ही जगह देखने की ही अभिलाषा से कश्मीर-मण्डल का निर्माण किया। तभी तो इस स्वर्गोपम देश में बाहर की परिधि में चमकीले बर्फ से ढके हुए गगन चुम्बी शिखरों की मालाओं के अनुपम सौन्दर्य को, तदनन्तर चीड, देवदार आदि के घने वनों से ढके हुए पर्वतों की सुन्दर ढलानों और घाटियों की दिव्य रमणीयता को, इन दो के बीच में नीलम जैसी हरी-हरी घासों के ऊपर खिलने वाले रंग बिरंगे पर्वतीय पुष्पों की घनी बहार को, नीचे नीचे समय समय पर तरह तरह के अरण्य पुष्पों और वन्य फलों से सोभायमान बनाने वाले जंगली वृक्षों से सुशोभित अधित्यकाओं और छोटे छोटे पर्वतों कौ दूर दूर तक फैली हुई रमणीय श्रेणियों को, तदन्तर वर्षा जल का आश्रय लेने वाले सस्यों और फलोद्यानों से शोभायमान उपत्यकाओं को, उन छोटे बड़े पर्वतों की ढलानों और उपत्यकाओं के बीच बीच में स्थान स्थान पर सुमधुर ध्वनि से कलरव करती हुई पर्वतीय नदियों और वैसे ही झरनों को तथा उन स्थलों पर स्वच्छन्द गति से विचरण करने वाले विविध प्रकार के पशुओं और पक्षियों के सुविचित्र सौन्दर्य और स्वर माधुर्य को मानव अब भी कश्मीर मंडल में चारों ओर से सर्वत्र देख सुन कर आनन्द विभोर होकर जीवन की समस्याओं को तत् क्षण भूल जाता है।

कश्मीर मंडल के भीतरीय समतल भूभाग में हरे हरे धान के खेतों की नीलम मणि की जैसी छटा का दृश्य तो मानव दृष्टि को एक दम मुग्ध कर देता है। विशेष करके श्रावण और भाद्र के महीनों में उत्तर भारतीय क्षेत्रों से आने वाले

लोग जवाहर सुरंग के भीतर के द्वार से निकलते ही ज्यों ही क्षितिज से क्षितिज तक सभी दिशाओं में फैली हुई धान की हरियाली की एकरस सुन्दरता को सहसा देख लेते हैं तो एकदम अदृष्टपूर्व नन्दनवन की स्मृति उनके मन में उदित हो जाती है। स्थान स्थान पर और ग्राम ग्राम में बहते हुए प्राकृतिक जल स्रोतों से सुन्दर बने हुए, विविध आकार के पुष्पों, फलों और सस्यों से समृद्ध बने हुए तथा सुविचित्र आकृतियों वाले पक्षियों के कलरव से कानों में अमृत बरसाने वाले और चारों ओर से हरे भरे इस देश को देखने पर मानव को एक-दम उस स्वर्ग की स्मृति आ जाती है जिसका वर्णन अनेकों धर्म सम्प्रदायों के ईश्वरीय धर्म ग्रन्थों में मिलता है। तभी तो सौन्दर्य की सच्ची सराहना करने में प्रवीण मुगल सम्राट ने कहा था कि—

"यदि पृथ्वीतल पर कहीं भी स्वर्ग है तो बस यही हैं, और कहीं भी नहीं है।"

किसी पहाड़ी के शिखर से स्पष्टतया दिखाई देने वाले हरे हरे खेतों के बीच बीच में टेढ़ी मेढ़ी चाल से मन्द-मन्द गति से बहने वाली वितस्ता नदी और उसकी सहायक नदियों के सुन्दर दृश्य का वर्णन तो कोई महाकवि ही कर सकता है। कश्मीर मण्डल में जहां तहां मिलने वाले और भूगर्भ में से लेकर निर्मल और शीतल जल के प्रवाहों को उगलने वाले अनेकों चश्मों के तथा श्रीनगर के आगे पीछे अनेकों स्थानों पर उपलब्ध होने वाली, कमल, कुमुद, कह्लार आदि जल पुष्पों से अलंकृत और हंस, कादम्ब, कारण्डव आदि जल पक्षियों से सुशोभित छोटी बड़ी झीलों के सौन्दर्य का पूरा मूल्याङ्कन करने के लिए किसी सौन्दर्योपासक महाकवि की ही दृष्टि की आवश्यकता है।

क्षितिज से क्षितिज तक फैली हुई एकाकार असीम सुनहरी कान्ति को देखना हो तो भाद्रपद के अन्त में पकी हुई धानों के खेतों से भरे हुए कश्मीर मण्डल को देखना चाहिए। फिर यदि इसी प्रकार की चान्दी की धवलिमा के सौन्दर्य का आस्वाद लेना हो तो माघ के महीने में सभी दिशाओं को व्याप्त करके छाये हुए चमकीले हिम की अनुपम कान्ति को निहारना चाहिए। यदि फिर कोसों तक फैले हुए रंग बिरंगे दिव्यातिदिव्य प्राकृतिक गलीचों की अनुपम सुषमा से दृष्टिदेवी को पूरी तरह से तृप्त करना हो तो कार्तिक मास के उत्तर भाग में कश्मीर मण्डल में स्थित पाम्पुर (पद्मपुर) की उन सुविशाल उपत्यकाओं का दर्शन करना चाहिए जिनमें लाजवर्दी पंखुड़ियों के घेरे में स्थित पीले वर्ण की लघुपंखुड़ियों के मण्डल के भीतर खिले हुए चमकीले लाल वर्ण वाले और दिव्यातिदिव्य सुगन्ध वाले किञ्जल्कों की शोभा से मानव हृदय को मस्त बनाने वाले केसर के पुष्पों की घनी बहार से सारी भूमि मीलों तक लगातार ढकी रहती है। शरत्-काल की चान्दनी में तो यह दृश्य दृष्टिदेवी को विशेष तृप्ति देता है।

इस तरह से लगभग समस्त प्रकार का प्राकृतिक सौन्दर्य कश्मीर-देश में

एक साथ ही देखने को मिल जाता है। हां एक मात्र न्यूनता अवश्य ही रह जाती है। वह यह है कि इस देश में समुद्र की तरङ्गों के कल्लोलों के सौन्दर्य को देखा नहीं जा सकता है। परन्तु प्रजापति ने शायद इसी आशङ्का से प्रेरित होकर इस देश में "महापद्मसर" यानी वुल्लर नामक सुविशाल झील का निर्माण करते हुए इस एकमात्र न्यूनता को दूर करने का प्रयत्न किया है। इस झील के भीतर मानव जल-तरङ्गों के विविध दृश्यों के सौन्दर्य का आस्वादन पर्याप्त मात्रा में कर सकता है।

इस प्रकार के विविध सौन्दर्य से परिपूर्ण वातावरण के भीतर जिन मानवों को प्रजापति ने जन्म दिया उनके अन्नमय शरीरों को भी उसने अति सुन्दर बनाया। आचार्य अभिनव गुप्त जैसे दार्शनिक सिद्ध पुरुष ने भी यहां के मानवों के शरीर सौन्दर्य की सराहना करते हुए कहा है—

"चन्द्रोद्द्योता मसृणगतयः पौरनार्यश्च यत्र।" (तं० आ०)

इतना ही नहीं, प्रजापति ने यहां के मानवों को जैसे सुन्दर शरीर दिये वैसे ही रमणीय, सुकुमार तथा भावुक हृदय और मस्तिष्क भी उन्हें दे रखे। इस तरह के समस्त सौन्दर्यमय वातावरण के भीतर उत्पन्न हुए और पले हुए कान्त-कमनीय शरीरों वाले तथा सुकुमार हृदयोंवाले और सौन्दर्यदर्शी मस्तिष्कों वाले यहां के मानव समाज के भीतर स्वभावतः प्राचीन युगों से ही अनेकों ललित कलाओं का खूब विकास होता रहा। नाटच कला में निपुण यहां की नर्तकियों के विषय में महा कवि बिल्हण ने कहा था कि उनकी इस कला के उत्कर्ष को देख कर स्वर्ग की रम्भा, चित्रलेखा, उर्वशी आदि अप्सराएं भी चकित हो जाया करती हैं :—

रम्भा स्तम्भं भजति लभते चित्रलेखा न रेखां।
नूनं नाटचे भवति च चिरं नोर्वशी गर्व शीला॥ (वि० च०)

कश्मीर में प्रचलित गायन विद्या और संगीत विद्या का अब भी अपना ही एक विशिष्ट महत्त्व है जो एक अनुपम कोमलता और सरलता को लिए हुए है। काव्यकला का विकास तो यहां अनादि काल से होता रहा है। आ० अभिनव गुप्त भी तो कह गए हैं :—

सर्वो लोकः कविरथ बुधो यत्र शूरोऽपि वाग्मी (तं० आ०)

दो चार ग्रन्थकारों को छोड़कर भारतीय काव्यशास्त्र (अलंकार शास्त्र) के सभी निर्माता कश्मीर मण्डल में ही प्रकट हुए और इस शास्त्र के लगभग सभी मुख्य सिद्धान्तों का आवि-र्भाव और विकास इसी देश में हुआ। भरतमुनि के नाटचशास्त्र के रहस्यभूत तत्त्वों का विश्लेषण और स्पष्टीकरण भी यहीं के विद्वानों ने किया। यहां के शास्त्रकारों ने तर्कशास्त्र और व्याकरण शास्त्र जैसे रूखे सूखे विषयों को किस तरह से सुकोमल, रुचिकर बना दिया इस बात के उदाहरण जयन्त

भट्ट की न्याय-मञ्जरी और जगद्धर भट्ट की बालबोधिनी हैं । अध्यात्म विद्या के प्रतिपाद्य विषय को लेकर के जगद्धर भट्ट ने स्पष्ट कहा कि वह विषय तर्क शास्त्र सुकठोर शब्दावली की पहुंच से परे की वस्तु है :—

तर्ककर्कश-गिरामगोचर स्वानुभूति-समयैक-साक्षिणम् ।। (स्तु० कु०)

प्राचीन थेरवाद की परम्पराओं से प्रभावित बौद्ध दर्शन ज्यों ही कश्मीर मण्डल में प्रविष्ट हुआ, त्यों ही उसमें अनेकों ऐसे परिवर्तन आने लगे कि उसकी रूक्षता नष्ट होती गई और थोड़े ही समय में वह भागवत धर्म की जैसी रोचकता को प्राप्त कर गया तभी तो वह मध्य एशिया, चीन, जापान और तिब्बत में भी लोकप्रिय बन गया । बौद्ध धर्म को इन देशों में लोकप्रिय बनाने में कश्मीरी भिक्षुओं का बहुत हाथ रहा है । वे कश्मीरी भिक्षु, बौद्ध धर्म को इन देशों में तभी लोकप्रिय बना सके जब उन्हों ने इस धर्म की तपः प्रधानऔर वैराग्य प्रधान कठोर और रूक्ष साधनाओं का स्थान पूजन प्रधान और भक्तिप्रधान तथा विचारप्रधान सुकोमल और मनोग्राह्य साधनाओं को दे दिया ।

अद्वैत शैवदर्शन का लगभग समूचा विकास तो कश्मीर मण्डल में ही हुआ । अतीव सुकुमार और मनोमोहकारी सौन्दर्य के वातावरण में उत्पन्न हुए और पले हुए कश्मीर देश के उन दर्शन शास्त्रकारों को वेदान्त आदि वैदिक दर्शनों का वैराग्यप्रधान दृष्टिकोण प्रभावित नहीं कर सका । उन्हों ने पाशुपत शैवों के कापालिक व्रत को भी पसन्द नहीं किया । तमिल देश के सिद्धान्त शैव की बाह्यपूजा प्रधान नीति भी उन्हें अच्छी नहीं लगी । शरीर को और इन्द्रियों को अतीव क्लेश देने वाली जैन धर्म की घोर तपस्या में भी उन्हें रुचि नहीं हुई । बौद्धों की क्लेशप्रद विनय साधना ने भी उन्हें प्रभावित नहीं किया । लोक व्यवहार में वे सदैव वैदिक परम्परा का अनुसरण करते रहे । उसे उन्हों ने कभी भी ठुकरा नहीं दिया । परन्तु फिर भी क्लेश बहुल और रूक्ष स्वभाव के वानप्रस्थ धर्म और सन्यास धर्म को उन्होंने कभी नहीं अपनाया । उन्हों ने योग साधना को ही मोक्ष प्राप्ति का सर्वोत्तम उपाय माना परन्तु हठयोगियों के जैसे कष्टप्रद योग को कभी नहीं अपनाया । उन्होंने वेदान्तियों और विज्ञान वादियों की तरह इस संसार को मिथ्या नहीं ठहराया । संसार में रहते हुए और सांसारिक विषयों का सेवन करते हुए तथा संसार में ही अपने शास्त्र का प्रचार करते हुए भी इस संसार को ही मिथ्या ठहराना उन्हों ने आत्म-वंचना के तुल्य माना । नैयायिकों और पातञ्जल योगियों ने 'सुन्दर लगने वाले आकर्षक शरीरों पर मांस, रुधिर, चरबी, हड्डी आदि घृणित पदार्थों के पिण्डों की दृष्टि रखते हुए उनके प्रति घृणा के भावों को अपने हृदय में जमा देने के अभ्यास का उपदेश किया । परन्तु कश्मीर के शैवों को ऐसे ऐसे उपदेशों में परमेश्वर के दिव्य कला कौशल के प्रति अन्याय के भाव का अनुभव हुआ ।

उन्हों ने सौन्दर्यशास्त्र के सिद्धान्तों को उच्च स्थान देते हुए समस्त चमत्कार कारी सौन्दर्य के भीतर परमेश्वर की परमेश्वरता की सुविचित्र अभिव्यक्ति को ही देखने की दार्शनिक दृष्टि को अपनाया।

कश्मीर के शैव दर्शन के गुरुओं ने घर गृहस्थी को छोड़ कर वनों या मठों में रहने वाले भिखमंगे साधुओं के मार्ग को नहीं अपनाया। उन्होंने एक अभिनव योग साधना की अनेकों ऐसी प्रक्रियाओं की खोज की जिन का अभ्यास मनुष्य अपने घर में ही सुख पूर्वक कर सकता है। वह परम्परागत स्मार्त्त गृहस्थ धर्म का पालन करता हुआ ही और तदनुसार अर्थ और काम का भी सेवन करता हुआ ही तथा अपने प्रियजनों के साथ सुखपूर्वक निवास करता हुआ ही साथ साथ शैव योग की किसी एक प्रक्रिया का अभ्यास कर सकता है। ज्यों ही किसी शैव-साधक को किसी भी राजयोग की प्रक्रिया में सफलता प्राप्त होती है, त्यों ही उस साधक को किसी एक स्तर के आत्म-आनन्द की अनुभूति होने लगती है। उस अनुभूति के पुनः पुनः अभ्यास में उसे ऐसा दिव्य आस्वाद आता है जिसके सामने सारे का सारा विषयसुख फीका पड़ जाता है। ऐसी स्थिति में साधक के मन में और उसकी इन्द्रियों में विषयसुख के प्रति एक प्रकार के अनादर का भाव उत्पन्न हो जाता है। उसे अनादर विरक्ति कहते हैं। उससे उसकी इन्द्रियां स्वयमेव विषयों से निवृत्त हो जाती हैं। मन भी विषय-सुख के प्रति आकृष्ट नहीं होता है। उस साधक को अपने मनपर और इन्द्रियों पर निग्रह करना ही नहीं पड़ता है। यदि उसका मन प्रवाह पतित विषय सुख का कभी सेवन कर भी लेता है तो नरवत् ही उसका सेवन करता हुआ भीतर से उससे लिप्त नहीं होता है। जिस तरह छिद्र रहित सूखी तुम्बी पानी में डूब कर भी भीतर से गीली नहीं हो जाती है, उसी तरह से उसका मन निर्लेप ही बना रहता है :—

> निमज्जमानमप्येतन्मनो वैषयिके रसे
> नान्तरार्द्रत्वमभ्येति निश्छद्रं तुम्बकं यथा ।। (मा० वि० वा०)

अन्य अन्य दर्शनों के गुरुओं ने तो मन को दबा कर और इन्द्रियों का निग्रह करके ही योग साधना करने का उपदेश किया है। परन्तु कश्मीर के शैवों ने स्पष्ट शब्दों में कहा है कि मन को बलात्कार से दबाए रखना हितकर नहीं होता है। उससे उल्टी और अवाञ्छनीय प्रतिक्रियाएं हो सकती हैं। उन्हों ने दृष्टान्त देकर समझाया है कि जैसे घोड़े को अपने अभ्यस्त मार्ग से रोक कर बलात्कार से अन्य मार्ग पर चलाया जाय, तो वह अनेकों उल्टे मार्गों से इधर उधर भागने का यत्न करता है, वैसे ही दबाया हुआ मन भी करोड़ों उल्टे मार्गों में प्रवृत्त हो जाता है :—

> स्वं पन्थानं हयस्येव मनसो ये निरुन्धते ।
> तेषां तत्खण्डनायोगाद् धावत्युत्पथ कोटिभिः ।। (मा०वि०वा०)

इन्द्रियों की उपरोक्त अनादर विरक्ति के विषय में भी शैव दर्शन में कहा गया है कि उनकी स्वाभाविक विषय-प्रवृत्ति अनादर विरक्ति से ही शान्त हो जाती है, बलात्कार से दबाए रखने में उनमें अवाञ्छनीय प्रतिक्रियाओं की आशङ्का रहती है—

तथा हि गुरुरादिक्षद् बहुधा स्वकशासने ।
अनादर-विरक्त्यैव गलन्तीन्द्रिय-वृत्तयः ॥
यावत्तु विनियम्यन्ते तावत्तावद्विकुर्वते ॥ (मा० वि० वा०)

कश्मीर के इन शैवगुरुओं ने ऐसे मार्ग को अपनाया जिसमें आरम्भ से अन्त तक प्रेममयी भक्ति की प्रधानता बनी रहती है । उससे उनका वह मार्ग अतीव रुचिकर और सरस बना रहता है । वह शैव मार्ग वैसा ही सुन्दर, रुचिकर और सरस है, जैसा स्वयं कश्मीर मण्डल है और जैसी सुन्दर और सरस यहां की जनता है । कश्मीर का शैव शास्त्र मीमांसा, न्याय, वेदान्त आदि शास्त्रों की तरह केवल तर्क प्रधान ही नहीं है । इसमें तर्क (Logic) और मनोविज्ञान (psychology) को एक समान प्रधानता मिली है । यह दर्शन केवल कोरे सिद्धान्तों का ही निरूपण नहीं करता है; अपितु सिद्धान्त निरूपण (Theory) के साथ ही साथ प्रयोग पक्ष (Practical) का निरूपण भी करता जाता है । इस शास्त्र के प्रथम दर्शन ग्रन्थकार आ० सोमानन्द ने अपनी शिवदृष्टि में दर्शन विद्या के स्वपक्ष (अपने सिद्धान्तों), पर पक्ष (अन्य दर्शनों के सिद्धान्तों) और प्रयोग पक्ष (Practical aspect), इन तीनों ही विषयों की विवेचना खूब विस्तार से की है । इस शास्त्र को परिपूर्णता (perfection) पर पहुंचा देने वाले आ० अभिनवगुप्त ने भी जहां अपने विमर्शिनी नामक अनेकों भाष्यों के द्वारा इस शास्त्र के सिद्धान्त पक्ष का पूरा स्पष्टीकरण किया, वहीं अपने तंत्रालोक, तंत्रसार, मालिनी विजय-वार्तिक जैसे ग्रन्थों के द्वारा इस शास्त्र के प्रयोगपक्ष का विश्लेषण, स्पष्टीकरण आदि भी अनुपम ढग से करते हुए इसे सर्वथा सर्वाङ्ग-सम्पूर्ण बना दिया ।

काश्मीर शैव दर्शन हमें जीवन के व्यवहारिक और पारमार्थिक दोनों ही प्रकार के लक्ष्यों की समुचित प्राप्ति के प्रति प्रेरणा दे सकता है । इस शास्त्र की दृष्टि में जीवन के दो पहलुओं में परस्पर कोई विरोध नहीं । दोनों की साधना साथ साथ की जा सकती है । तभी इस शास्त्र को भुक्तिप्रद भी माना गया है और मुक्तिप्रद भी । जीवन के इन दोनों पक्षों के समुचित सामञ्जस्य में ही जीवन के वास्तविक सौन्दर्य का अनुपम रहस्य भरा पड़ा है । जीवन रहस्त के इस अनुपम तथा परिपूर्ण सनातन सिद्धान्त का स्पष्टीकरण हिंदू धर्म के सर्वमान्य गुरु भगवान कृष्ण ने अपने उपदेशों और अपने चरितों के द्वारा पूर्वयुग में कर रखा था । उसे हम युग युग के बीत जाने पर धीरे धीरे भूलते गए और कोरे आदर्शवादों से ढकते

ही रहे। उसी सुन्दरतम सनातन सिद्धान्त का अभिनव विकास संसार के सुन्दरतम देश कश्मीर मण्डल में अद्वैत शैव दर्शन के रूप में हुआ। हमें जीवन के उस दिव्यातिदिव्य सिद्धान्त को पुनः अपनाकर उसके द्वारा सारे राष्ट्र को परिपूर्ण और सर्वाङ्ग सुन्दर प्रगति के पथ पर अग्रसर करने का यत्न करना चाहिए। परन्तु वर्तमान परिस्थितियों में ऐसा वाञ्छनीय भगीरथ प्रयत्न कौन करे, कब करे और कैसे करे, कुछ समझ में नहीं आता। परन्तु कभी न कभी ऐसा यत्न अवश्य ही किया जाएगा और भगवान शिव का यह अनुपम शास्त्र पूरी तरह से चरितार्थ हो जाएगा। यदि ऐसा नहीं होना होता, तो यह सर्वाङ्ग सम्पूर्ण और सर्वसौन्दर्य विभूषित सनातन शास्त्र अभी तक क्यों, कैसे और किस लिए इस तरह से अक्षत रूप से टिका रहा होता।

—०—

कश्मीर शाक्त मत : एक परिचय

• शिव नाथ काटजू

'लोक भाषा में 'शाक्त मत' शब्द का प्रयोग ही अनुचित है, यह कोई पृथक मत नहीं है अपितु विराट सतातन धर्म का महत्वपूर्ण अंग है। सनातन धर्म अपौरुषेय है। उसके प्रवर्तक कोई व्यक्ति विशेष महापुरुष नहीं थे। उसका मूल स्रोत वेद है जिन्हें ऋषियों ने प्राप्त किए और जिन्हें उन्होंने अपनी श्रवण शक्ति के आधार पर कहे। श्रुति ही सनातन धर्म की आधार शिला है। इनकी व्याख्याएं धर्म सूत्रों, गृहसूत्रों, उपनिषदों, स्मृतियों, पुराणों, इतिहासों और उन पर लिखी हुई अनेक टीकाओं में हुई। मर्यादा पुरुषोत्तम भगवान राम और भगवान कृष्ण ने कभी नहीं कहा कि वे किसी नये धर्म के प्रवर्तक हैं। उन्होंने स्वयं शास्त्रों को प्रमाणिक माना और उनमें प्रतिपलित सिद्धान्तों को स्वीकार किया। सत्य की खोज और सृष्टि के उद्भव और विलय पर जो व्याख्याएं हमारे षड्दर्शनों में की गई हैं उन्हें पढ़कर आज कल के विज्ञान युग मैं भी बुद्धि चकित हो जाती है।

जो धर्म पृथ्वी पर मानव जन्म के प्रभात की प्रथम रश्मियों से टकराता है और जिसके आयु की गणना करनी आज भी कठिन हो रही है उसमें विस्तार आना स्वाभाविक है। सहस्रों वर्षों में सनातन धर्म के वृक्ष की अनेक शाखाएं निकलीं। इनमें से कुछ पल्लवित रहीं कुछ काल के ग्रास में चली गईं। आज भी सनातन धर्म की अनेक शाखाएं या यह कहा जाय कि इस उपवन में अनेक क्या-

रियां हैं तो अधिक उपयुक्त होगा । परन्तु ये सभी शाखाएं या क्यारियां सनतान धर्म के अर्न्तगत हैं और उन्हें इससे पृथक नहीं कहा जा सकता । यह हो सकता है कि कोई एक सिद्धान्त पर अधिक बल देता है और कोई दूसरे पर परन्तु सभी शास्त्र की प्रमाणिकता को स्वीकार करते हैं ।

महाभारत काल के बाद सनातन् धर्म में पंचदेव उपासना का प्राबल्य बढ़ा और आज भी इसी उपासना शैली का बाहुल्य है । इसके अर्न्तगत् गणेश, सूर्य, विष्णु, शिव और देवी की उपासना आती है। वेद में कहा गया है कि सब एक ही है परन्तु लोग भगवान को भिन्न नामों से सम्बोधन करते हैं । इन पांच में से इष्टदेव भले ही एक हों परन्तु दूसरे चार का तिरस्कार नहीं होता । सभी रूप पूज्यनीय हैं । इन पांचों देवताओं की पूजन प्रणालियों के अलग अलग तंत्र हैं जैसे गणपत-तंत्र, सौर तंत्र, वैष्णव तंत्र, शैव तंत्र, और शाक्त तंत्र । यह कहना असत्य नहीं है कि आधुनिक हिदुत्व पर तंत्रों की पूरी छाप है ।

कश्मीर की घाटी में भी पन्द्रहवीं और सोलहवीं शताब्दियों के पूर्वकाल में भी हिन्दुओं का वही रूप था जो आज भारत के और प्रान्तों में हैं । कश्मीर के हिन्दू पृथक वर्णों के थे ओर उनमें पंचदेव उपासना प्रचलित थी । कवि सम्राट क्षेमेन्द्र पहले मपामहेश्वर अभिनव गुप्त के प्रभाव में आए और शैव थे । बाद में वे वैष्णव हो गए । क्षेमेन्द्र के काल में भी कश्मीर में शाक्त थे और उकके काल में भी शक्ति उपासकों पर उसी प्रकार के प्रहार होते थे जैसे आज भी अज्ञानता के कारण होते रहते हैं । कौलत्व शाक्त साधना की सर्वोच्च सीमा है :—

"कौलात् पर तरं न हि" कौल के ऊपर फिर कुछ नहीं है । कौल साधना का वाममार्ग महत्वपूर्ण अंग है जो शताब्दियों से निंदासूचक शब्द बना हुआ है । क्षेमेन्द्र ने कश्मीरी शाक्त साधक ब्राह्मण पर प्रहार करते हुए लिखा है :—

मधुपाने कृत बुद्धिः कौल क्या नष्ट जाति संकोचः ।
मस्तशरावकहस्तो गुरुगृहमायाति दीक्षितो भट्टः ॥

गौतम बुद्ध के काल के जातकों में भी शाक्तों के प्रति इसी प्रकार के प्रहारों का उल्लेख मिलता है । उसके बाद भी हर काल में शाक्तों के विरुद्ध प्रचार होता रहा परन्तु शाक्त साधकों ने इसकी कभी भी चिन्ता नहीं की और आज तक शक्ति साधना के उस मार्ग पर जिसके प्रवर्तक स्वयं आशुतोष अनंगहर चन्द्र शेखर भगवान सदा-शिव हैं चलते आ रहे हैं । प्रहारों के प्रति शाक्त साधकों की उदासीनता का एक कारण यह भी था कि इस साधना मार्ग को वहुत गोपनीय रखा गया और इसके प्रचार की चेष्टा नहीं की गई ।

यह ऐतिहासिक तथ्य है कि कश्मीर में मुसलमानों के व्यापक धर्म-परिवर्तन प्रयास के फलस्वरूप केवल (नौ) या (ग्यारह) ब्राह्मणों के परिवार बचे और इनके

अतिरिक्त सभी वर्णों के हिन्दू मुसलमान हो गए । इन्हीं नौ या ग्यारह घरों के वंशज कश्मीरी ब्राह्मण आज कश्मीर की घाटी में और भारत के, विशेषत: उत्तरीय प्रान्तों के अन्य स्थानों में बसे हैं । यही कहा जा सकता है कि उर्पयुक्त नौ या ग्यारह घर सब शाक्त ब्राह्मणों के ही थे । संभवत: सब गाणपन्थ, वैष्णव, या सौर कश्मीरी ब्राह्मणों का धर्म परिवर्तन हो गया । हो सकता है कि इन नौ या ग्यारह घरों में कुछ शैव भी हों । शैव और शाक्त, विशेषत: कश्मीर में, आपस में इतने मिले हुए हैं कि इनकी अलग गणना करना कठिन है । तुलसीदासजी ने भी राम चरित मानस में शिव और भवानी को साथ साथ स्मरण करके वन्दना की है :—

"भवानी शकरौ व दे श्रद्धाविश्वास रूपिणौ ।

महा कवि कालिदास ने भी इनको संयुक्त रूप में देखकर इनकी वन्दना की है : -

"जगत् पितरौ वंदे पार्वती परमेश्वरौ ।।"

फिर भी यह कहा जा सकता है कि आज जितने भी कश्मीरी ब्राह्मण हैं चाहे वे कश्मीर की घाटी में रहते हों, अथवा भारत के अन्य प्रान्तों में रहते हों वे सब जन्मजात् शाक्त हैं । ऐसा कोई भी कश्मीरी ब्राह्मणों का परिवार नहीं है जिसकी कुल देवी राज्ञा, शारिका, ज्वाला या बाला त्रिपुर-सुन्दरी न हो । किसी परिवार की कुलदेवी इन चार के अतिरिक्त कोई और हो परन्तु वह देवी का कोई और रूप ही होगा ।

कश्मीरी ब्राह्मण श्रोत कर्मी हैं । इनका वेद कृष्ण यजुर्वेद है । ये सारस्वत ब्राह्मण हैं, शाखा कठ है और इनका गृह्यसूत्र लंघाक्षी है ।

उपासना दो प्रकार की होती है— सामान्य और विशेष । दीक्षा के पश्चात् ही साधक गोपनीय उपासना में प्रवेश करता है । सामान्य उपासना में पंचोपचार और षोडषोपचार पूजन की विधियां आती हैं । जहां कश्मीरी ब्राह्मण अपनी कुलदेवियों का पूजन करते हैं उसके साथ साथ उनमें गणेश, विष्णु, सूर्य शिव इन सभी की उपासना प्रचलित है ।

उपर्युक्त कही गई पृष्ठ भूमि में यह कहना अनुचित नहीं होगा कि इस समय कश्मीर में शाक्त उपासना की स्थिति दयनीय हो रही है । उपासना के स्तर की जानकारी का मापदण्ड विशेष साधना की स्थिति और उसके ज्ञाताओं के बलपर ही किया जा सकता है । आज कश्मीर में ऐसे साधकों का अभाव हो रहा है और जो इने गिने हैं वे भी अपने आप को गोपनीयता के गुहा में छिपाये हुए हैं । कश्मीरी ब्राह्मणों का एक वर्ग उनके कुल पुरोहितों का है । इनमें से आज अधिकांश अपने यजमानों को उनकी कुलदेवियों के मन्त्रों में दीक्षित कराने की भी क्षमता नहीं रखते उसके आगे की सीढ़ियां तो अलग रहीं । श्रेष्ठ साधक प्राय:

सद्ग्रहस्थ ही होते हैं जो कौलत्व के शिखर पर चढ़ते हैं परन्तु जैसा कहा गया है ऐसे साधकों की संख्या बहुत ही कम है।

शाक्त साधना के तीन क्रम हैं।कश्मीर, केरल और गौड़ (वंग) भारत को तीन भागों में बांटा गया है जहां इन क्रमों की अलग अलग प्रधानता है। विन्ध्या पर्वत माला का उत्तरीय और पश्चिमोत्तरीय भूभाग कश्मीर क्रम के अन्तर्गत आता है। दक्षिण भूभाग केरल क्रम में और पूर्वीय भूभाग गौड़ क्रम के अन्तर्गत आता है। इन तीन क्रमों से एक प्रकार का त्रिपद बनता है । यदि इस त्रिपद का एक भी पाया शिथिल होता है तो उसका कुःप्रभाव सारे शाक्त जगत पर पड़ता है। कश्मीर क्रम पर चलने वाले शाक्त साधक उत्तर भारत के अतिरिक्त देश के अन्य भागों में भी फैले हुए हैं। इनमें उच्च कोटि के साधक हैं। यह सब होते हुए भी कश्मीर क्रम का मूल स्तोत्र कश्मीर ही है। जब कभी साधना सम्बन्धी प्रश्न उठता था तो शंका समाधान कश्मीर के आचार्यों द्वारा ही होता था। आज वह श्रृंखला टूट गई है।

अखिल भारतीय शाक्त सम्मेलन की कार्यकारिणी समिति ने गत वर्ष के पूर्वार्द्ध में कश्मीर क्रम की शिथिलता और उसके फलस्वरूप उत्पन्न हुई स्थिति पर गंभीरता से विचार किया। उसने यह निर्णय लिया कि सर्वप्रथम मैं स्वयं, सम्मेलन के अध्यक्ष के नाते, कश्मीर जाऊं और वहां शाक्ति उपासना की स्थिति को देखूं। मैं गत् वर्ष के सितम्बर मास में अपनी धर्मपत्नी अन्नपूर्णा जी के साथ श्रीनगर में रहा और मैंने चेष्टा की कि वहां की शाक्त गतिविधियों को देखूं। जो कुछ मैंने देखा उससे मुझे कुछ दुःख अवश्य हुआ परन्तु मैं हताश नहीं हुआ। इस समय साधना का कश्मीर में लोप हो रहा है। अधिकांश ब्राह्मण समाज अपनी कुलदेवियों के मन्दिर में जाकर उनके दर्शन करके ही कृतार्थ हो जाते हैं। कुछ को शंकर और जगदम्बा के कुछ स्तोत्र याद हैं। वे उनका यथासमय स्तवन करते हैं। दीक्षित साधक मुझे नहीं दिखे। पुरोहित समाज का भी यही हाल है। उनमें बहुतों ने अपना धन्धा छोड़ दिया है अथवा उनकी सन्तान और धन्धों में लगती जा रही है। उनकें पास जो पांडुलिपियां हैं उन्हें वे धीरे धीरे बेंच रहे हैं और इस तरह के बहुमूल्य ग्रन्थ विदेश चले जा रहे हैं। श्रीनगर के रिसर्च डिपार्टमेंट और आरकाइव्स में लगभग् ४००० संस्कृत की पांडुलिपियां हैं जिनमें अधिकांश तंत्र और शैवदर्शन सम्बन्धी हैं। वे आलमारियों में बन्द हैं और किसी को नहीं मालूम कि इन ग्रन्थों में क्या है। इनका विषय सम्बन्धी कोई व्योरा नहीं है। मैंने इस ओर जम्बू कश्मीर की सरकार एवं केन्द्रीय सरकार का ध्यान आकर्षित किया है परन्तु यह सब होते हुए भी नहीं कहा जा सकता है कि कश्मीर के क्रम के मूल श्रोत्र का लोप हो गया।

कश्मीर की घाटी ने इस शताब्दी में भगवान गोपीनाथ को जन्म दिया।

उन्हें ब्रह्मीभूत-हुए अभी दस वर्ष हुए । उनकी गणना भारत के इस शताब्दी के महान सिद्ध महापुरुषों-जैसे रामकृष्ण परमहंस, और महर्षि रमण से की जा सकती है । उनके भक्तों द्वारा स्थापित भगवान गोपीनाथ ट्रस्ट मुझे कश्मीर में अन्य धार्मिक, और सांस्कृतिक संस्थानों में सबसे अधिक जागृत लगा । इसके साथ साथ आज भी कश्मीर की घाटी में ऐसे महापुरुष हैं जो भले ही गोपनीयता के आवरण से अपने आप को छुपाए हुए हों लेकिन उनके प्रभाव और नेतृत्व से शीघ्र ही उत्साही और प्रबल साधक उत्पन्न हो जायेंगे । इस श्रेणी के व्यक्तियों में श्रीमान् पं० श्रीधरजूधर महाराज और श्रीमान् महात्मा जानकीनाथ जी धर महाराज का नाम उल्लेखनीय है । कश्मीर की भूमि में आज भी वह क्षमता है कि वह महान साधकों को उत्पन्न करे । राज्ञा, शारिका, ज्वाला और भुवनेश्वरी के स्थान आज भी पूर्ण रूप से जागृत हैं । यह कोई विस्मय की बात नहीं होगी कि शीघ्र ही अपनी परम्परागत् मर्यादाओं की रक्षा करने हेतु कश्मीर की घाटी पुनः मेधावी और प्रतापी साधकों को सामने खड़ा करदे जिनके द्वारा शाक्त जगत को बल और नेतृत्व मिले ।

इन्हीं आशाओं को लेकर मैं प्रयाग लौटा ।

— o —

काश्मीरी वाङ्मय में साहित्य-समीक्षा : उद्गम और विकास की दृष्टि से

• जानकीनाथ भान

भूमिका एवं परिप्रेक्ष्य

किसी भी साहित्यिक कृति के गुणों अर्थात् श्लाघ्य विशेषताओं को आंकना और उसकी त्रुटियों या गर्ह्य बातों अथवा दोषों को गिनाना साहित्य-समीक्षा कहलाता है । अंग्रेजी विश्वकोश 'इनसाइक्लोपीडिया ब्रिटानिका' के अनुसार साहित्य-समीक्षा "कलाओं की तर्कसम्मत एवं प्रणालीबद्ध चर्चा है जो उनके शिल्पों एवं कृतियों का निरूपण, मूल्यांकन अथवा व्याख्या करती है", और इस प्रकार साहित्य की यह शाखा "कला अथवा साहित्य की कृतियों का औचित्य जानने एवं विद्वत्ता-पूर्ण विश्लेषण अथवा मूल्यांकन करने की कला है ।" गुणावगुण में भेद करने तथा क्षीर को नीर से पृथक् करने की मेधा के चर्मोत्कर्ष पर ही इस प्रकार का आलोचनात्मक न्याय संभव हो सकता है । अतः साहित्य-समीक्षा प्रौढ़ विवेक की

परिणति की ही अभिव्यञ्जना है। यह स्पष्ट है कि कोई भी कवि या लेखक उद्गारों के रूप में अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त करने से पहले बहुत समय तक परिस्थितियों और समय के चढ़ाव-उतार और प्रिय-अप्रिय फेर देख चुका होता है, और तभी वह अपने समय के किसी वर्ग विशेष या श्रेणीविशेष को अपनी रचनाओं में प्रतिबिम्बित करता है। अतः तर्क के आधार पर यों कहा जा सकता है कि यदि कोई भी लेखक या कवि अपने समय के प्रति सच्चा, ईमानदार और सदाशयी हो तो उस समय के इतिहास को जानने के लिए उसकी रचनाओं से बढ़कर और कोई भी प्रामाणिक एवं अधिकृत कृति नहीं मिल सकती। यों भी सजीव साक्ष्य के रूप में अन्य किसी भी विश्वसनीय अभिलेख अथवा इतिहास की अनुपस्थिति में, किसी भी विशेष जाति, प्रजाति, वंश या कुल का सही एवं सच्चा इतिहास उस जाति वंश या कुल में बोली जाने वाली भाषा से ही ज्ञात हो सकता है। चूंकि प्रस्तुत लेख काश्मीरी वाङ्मय में साहित्य-समीक्षा के उद्गम और विकास के सम्बन्ध में है, अतः यहां इस बात का उल्लेख करना असंगत न होगा कि काश्मीरी भाषा ने काश्मीर की मुख्य घाटी में जन्म लिया, और भाषा एवं ध्वनिविज्ञान की दृष्टि से काश्मीरी भाषा संस्कृत भाषा का ही एक बिगड़ा हुआ रूप या अपभ्रंश है जो आर्य अथवा भारत-ईरानी भाषाकुल की भारत-आर्य वैदिक शाखा के दर्द-समूह से सम्बन्ध रखती है।

कालानुक्रम से विभाजनः : चार काल

श्रीमती ब्रूस के अनुसार काश्मीर की कहानी २,००० ईसा पूर्व पुरानी है। इसमें कोई भी संदेह नहीं कि इतनी लम्बी कालावधि में काश्मीरी वाङ्मय और यहां की भाषा पर समय-समय पर की उथल-पुथल अथवा राजनैतिक क्रान्तियों का बहुत गहरा प्रभाव पड़ा होगा। यदि नागसेन की मिलदःपाःन्ह तथा गुणाढ्य की बृहदकथा की ऐतिहासिकता एवं उद्गम सिद्ध हों तो काश्मीरी भाषा का वाङ्मय १५० वर्ष ईसा पूर्व पुराना माना जा सकेगा। चाहे कुछ भी हो, प्राचीन काश्मीरी की सर्वप्रथम प्रसिद्ध कृति "महानय प्रकाश" काश्मीर के महान् इतिहासकार कल्हण के लगभग एक सौ वर्ष बाद, तेरहवीं शताब्दि ईसवी में शीति कण्ठ द्वारा रची गयी थी। कदाचित् यही कारण है कि काश्मीरी साहित्य के इतिहासकार (प्रो०) जे०एल० कौल ने समझ-बूझ कर काश्मीरी साहित्य के एतिहासिक विकास को विशद रूप से चार कालों में इस प्रकार विभक्त किया है :—(१) प्रथम काल या युग :- १५५५ ईसवी तक; (२) द्वितीय काल या युग :- १५५५ ईसवी से १७५२ ईसवी तक; (३) तृतीय काल या युग :—१७५२ ईसवी से १९२५ ईसवी तक; और (४) चतुर्थ काल या युगं :—१९२५ ईसवी से १९४७ ईसवी तक। इस विद्वान् प्रोफैसर ने आधुनिक या अर्वाचीन काल को पृथक् स्थान दिया है और १९४७ से इधर की सारी कृतियों को आधुनिक माना है।

प्रथम काल:

इस प्रथम काल या युग (अर्थात् १५५५ ईसवी तक) में काश्मीरी साहित्य में साहित्य-समीक्षा नाम की कोई भी कृति नहीं मिलती यद्यपि लल्लेश्वरी, शेख नूरुद्दीन, भट्टावतार, गनक प्रशस्त, योद्ध भट्ट, उत्थसोम, ख्वाजा हबीबुल्लाह नौशहरी तथा अन्य कवियों, कवयित्रियों एवं लेखकों की रहस्यवादी कविता, छायावादी कविता, प्रकृति-सबंधी कविता, नाटक, जीवन-चरित्र तथा प्रेमाख्यानक काव्य-विषयक कई मौलिक एवं सर्जनात्मक साहित्यिक रचनाए देखने को मिलती हैं।

द्वितीय काल :

इस द्वितीय काल या युग (अर्थात् १५५५ ईसवी से १७५२ ईसवी तक) में भी काश्मीरी वाङ्मय में साहित्य-समीक्षा पर कोई भी पुस्तक नहीं लिखी गई यद्यपि लगभग दो सौ वर्ष की इस लम्बी अवधि में काश्मीरी साहित्य मानवोचित प्रेम और करुणा के गीतों से समृद्ध हो गया। इस अवधि में साहित्य-गगन पर जिन दो कवयित्रियों का उदय हुआ, वे थीं हब्बा खातून और अरिज़माल। ऐहिक प्रेम और करुणा-भरे गीतों के अतिरिक्त, इस द्वितीय काल या युग में गूढ़ कविता, रहस्यवादी कविता, भक्तिमय गीतों और प्रकृति की वदान्यता से सम्बद्ध काव्य की रचना हुई। इस काल के रचनाकार थे मिर्जा अकमालुद्दीन कामिल, अलखेश्वरी रूपा भवानी, साहिब कौल, शाह ग़फ़ूर तथा कई अन्य लेखक-कवि।

तृतीय काल:

इसे विडम्बना कहिए कि इस तृतीय काल या युग (अर्थात् १७५२ ईसवी से १९२५ ईसवी तक) में भी काश्मीरी साहित्य में साहित्य-समीक्षात्मक रचना का सृजन नहीं हुआ, यद्यपि इस काल के उत्तरार्द्ध में काश्मीरी वाङ्मय बहुत ही अधिक समृद्ध हुआ था। इस अवधि में, उदाहरणार्थ, महमूद गामी, स्वच्छःक्राल, वली उल्लाह मत्तू, रहीम साहिब, शाह कलन्दर, परमानन्द, लक्ष्मण रैणा 'बुलबुल', प्रकाश राम, रसूल मीर, शमस फ़कीर, मक़बूल शाह क्रॉलवारी, मौलवी सिद्दीक उल्लाह हाजिनी, मिस्कीन, हक्कानी, अहमद बटवारी, वहाब खार और कृष्ण राज़दान जैसे वरिष्ठ कवियों ने उत्कृष्ट शैली के गीत, गज़ल, उदात्त एवं भव्य परम्पराओं के प्रेमाख्यानक, लोक गीत, गाथागीत, शोकगीत, लोरिया, प्रहसन एवं व्यंग्यकाव्य, मसनवियां, संग्रामगीत, चारित्र्यगीत, सूफियाना कलाम, रहस्यवादी कृतियां, भक्तिपूर्ण गीत, गीतिकाव्य, वीरगाथा महाकाव्य, वृत्तान्त, आदि लिखे। निस्संदेह, इसी काल में फारसी एवं उर्दू की कुछ एक महान् कृतियों के काश्मीरी में अनुवाद और रूपान्तर प्रकाशित हुए। यह कहना असंगत नहीं होगा कि ये रूपान्तर और अनुवाद प्रसंगगर्भित एवं इतिहासमूलक थे।

चतुर्थ काल:

कितने आश्चर्य की बात है कि चतुर्थ काल या युग (अर्थात् १९२५ ईसवी

से १९४७ ईसवी तक) में भी काश्मीरी वाङ्मय में साहित्य-समीक्षा नाम की कोई भी कृति नहीं दिखाई देती, यद्यपि लुप्तप्राय मसनवियों के अतिरिक्त इस अवधि में इलियास, इस्माइल नश्रामी, सत राम, दयाराम गूंज, नवाज़ रत्नपुरी, रसा जाविदानी और अन्य लेखक-कवियों ने गज़ल गाथा-गीत, स्तोत्र, भक्तिपूर्ण काव्य, उपदेशमूलक छन्द एवं रहस्यवादी कविता का प्रणयन किया। वाड़े और नोल्ज़ जैसे यूरोपीय धर्म प्रचारकों तथा सर ऑरल स्टाइन एवं सर जार्ज ग्रियर्सन जैसे प्रकाण्ड पण्डितों ने काश्मीरी व्याकरण को सूत्रबद्ध रूप दिया और काश्मीरी लोकोक्तियां एवं पहेलियां, काश्मीरी लोक-कथाएं, आदि संगृहीत कीं। पं० ईश्वर कौल तथा पं० आनन्द कौल ने काश्मीरी भाषा के शब्दकोश एवं व्याकरण की रचना करके अपना पाण्डित्यपूर्ण योगदान तो किया, किन्तु इस अवधि में किसी भी लेखक-विद्वान् ने काश्मीरी में साहित्य-समीक्षा सम्बन्धी कोई भी लेख नहीं लिखा, और न इस विधा विशेष का कहीं कोई अंकुर फूटा।

दो दिग्गज अग्रदूत

इस बात का उल्लेख करना परमावश्यक है कि काश्मीरी भाषा एवं साहित्य के सांस्कृतिक नवजागरण के दो प्रकाश-पुंज एवं अग्रदूत कवि महजूर और आज़ाद, जो सन् १९५० तक आधुनिक प्रवृत्तियों के नये-नये प्रयोग करके औरों का मार्ग-दर्शन करते रहे, साहित्य की इस महत्वपूर्ण प्रशाखा को नज़रों से ओझल कर गए, यद्यपि इन दोनों अग्रणी कवियों ने ऐहिक प्रेम, क्रान्ति, परिवर्तन, समाजवाद और समता के मार्मिक एवं ओजस्वी गीत लिखे। इस सांस्कृतिक नवजागरण की लहर से काफी समय पूर्व काश्मीरी भाषा में कवियों और लेखकों की एक मंदाकिनी ने अपने प्रवाह से काश्मीरी पद्य और गद्य की अनेक प्रजातियों एवं रचना के सूक्ष्म भेदों-प्रभेदों को उर्वर और समृद्ध तो कर दिया, किंतु साहित्य-समीक्षा का क्षेत्र बिल्कुल शुष्क रहा। इस मंदाकिनी को प्रवाहित करने वाले थे मास्टर ज़िंदा कौल, नीलकण्ठ शर्मा, शमसुद्दीन हैरत, अमरचंद वली, समद मीर, अहद ज़रगर, जी० आर० नाज़की, अलमस्त, आरिफ़, फाज़िल, नंदलाल अम्बारदार, लक्ष्मण राज़दान तथा कई अन्य मेधावी कवि एवं लेखक। घोर आश्चर्य का विषय है कि कवि आज़ाद ने काश्मीरी साहित्य के इतिहास पर उर्दू भाषा में तीन खण्डों की एक बृहद्काय स्मारकीय कृति "काश्मीरी ज़बान और शायरी" की रचना की। इस ग्रंथ में अनेक कवियों के कवित्व–शिल्प एवं कृतियों का निरूपण एवं विवेचन किया गया है। उर्दू भाषा में लिखे जाने के कारण इसे काश्मीरी वाङ्मय की साहित्य-समीक्षा की कोटि में नहीं रखा जा सकता और न कवि आज़ाद को काश्मीरी भाषा में समीक्षक होने का श्रेय प्राप्त हो सकता है।

पत्र–पत्रिकाएं:

यह जानना रोचक होगा कि 'प्रताप' और 'लाला रुख' नाम की श्रीनगर

के कालेजों की दो पत्रिकाएं, जो अब कई दशाब्दों से प्रकाशित हो रही हैं, क्रमशः सन् १९३६ और सन् १९४२ से काश्मीरी अनुभागों को भी प्रकाशित करती आ रही हैं। ये दोनों कालेज पत्रिकाएं काश्मीरी भाषा के उदीयमान लेखकों एवं कवियों की साहित्यिक रचनाएं प्रकाशित करती रहीं किन्तु साहित्य-समीक्षा के नाम पर इन में भी कोई मानक लेख नहीं छपा यद्यपि इस शताब्दी के पाचवें दशाब्द के उत्तरार्द्ध में यदा-कदा कुछ एक लेख प्रकाशित हुए। काश्मीरी भाषा का सर्वप्रथम पत्र गाश बहुत पहले प्रकाशित हुआ था किन्तु इसमें भी साहित्य-समीक्षा के नाम पर ढंग का कोई लेख नहीं छपा। इसके पश्चात् नेब तथा क्वोंग पोश नाम की पत्र-पत्रिकाओं में काश्मोरी में साहित्य–समीक्षा के कुछ एक मानक लेख प्रकाशित हुए किन्तु यह दोनों प्रकाशन अधिक दिनों तक नहीं चल सके। गुलरेज (१९५२-५५) तामीर, चमन, प्रागाश, साप्ताहिक वतन (श्री गुलाम नबी खयाल द्वारा संपादित) तथा षण्मासिक शीराज़ा में इस साहित्यिक प्रजाति विशेष पर कई उत्कृष्ट लेख प्रकाशित हुए। खेद है कि इन में से कई एक पत्र-पत्रिकाएँ अब बन्द हो चुकी हैं। श्री गुलाम रसूल संतोष द्वारा प्रकाशित कॉशुर अदब नाम के प्रकाशन में भी साहित्य-समीक्षा के सम्बन्ध में कई अच्छे लेख एवं निबन्ध प्रकाशित हुए किन्तु, वस्तुतः, साहित्य की यह प्रशाखा समृद्ध नहीं हो सकी।

काश्मीर से दूर दिल्ली में काश्मीरी भाषा एवं साहित्य की अभिवृद्धि एवं प्रचार-प्रसार के लिए कई एक काश्मीरी युवकों द्वारा स्थापित सामाजिक एवं सांस्कृति संस्था-काश्मीरी बज्म–ए–अदब-जो सन् १९५४ से सन् १९५९ तक लगभग पांच वर्ष चलती रही, दो वर्ष तक (१९५६-५८) तक उच्च कोटि की त्रिभाषी पत्रिका पम्पोश प्रकाशित करती रही जिस में काश्मीरी भाषा में साहित्य-समीक्षा सम्बन्धी उच्च कोटि के लेख प्रकाशित होते रहे। इसी प्रकार दिल्ली-स्थित काश्मीरी समिति का त्रिभाषी मासिक पत्र काशुर समाचार, जो सन् १९६२ से प्रकाशित हो कर अब विगत छः वर्षों से काश्मीरी गद्य एवं पद्य के अनुभाग को देवनागरी लिपि में प्रकाशित कर रहा है, में इस साहित्यिक प्रजाति विशेष पर कई उत्कृष्ट लेख देखने को मिलते हैं किन्तु उनकी संख्या नगण्य है।

सन् १९४७ का सांस्कृतिक नवजागरणः

वास्तव में, सन् १९४७ की समाप्ति के साथ-साथ काश्मीर घाटी में काश्मीरी भाषा एवं साहित्य के विकास के अनुरूप बौद्धिक परिस्थिति की का वातावरण तैयार हो सका क्योंकि पाकिस्तानी आक्रान्ताओं के आक्रमण के कारण देशभक्तिपूर्ण उत्साह एव समाज सुधार के जोश ने अनेक कवियों, लेखकों एवं नाटककारों को आगे लाकर खड़ा कर दिया। इसमें कोई संदेह नहीं कि प्रारम्भ में

पं० नन्दलाल कौल "नन्ना" तथा प्रेमनाथ 'परदेसी' नाटककारों के रूप में साहित्य-जगत् में उदित हुए थे, किन्तु नवजागरण की इस लहर के कारण नैशनल कल्चरल फ्रंट को ही यह नया दायित्व संभालना पड़ा। नादिम, जुत्शी, राही और आसी इस नई चेतना की लहर में औरों से आगे-आगे बढ़ रहे थे और उक्त फ्रंट को नेतृत्व प्रदान कर रहे थे। फिर भी प्रारम्भ में किसी भी लेखक ने साहित्य-समीक्षा को अपना कार्यक्षेत्र नहीं चुना। सन् १९४८ में रेडियो काश्मीर, श्रीनगर, का उद्घाटन हुआ और इसी के आस-पास आकाशवाणी, दिल्ली, में कश्मीरी न्यूज यूनिट की स्थापना हुई। परिणामतः समाचार बुलेटिन, समाचार-समीक्षा एवं अन्य कार्यक्रम प्रसारित होने लगे और साहित्य की इस प्रशाखा, अर्थात् साहित्य-समीक्षा, के सम्बन्ध में कुछ आशाएं बन्ध गई। सन् १९५८ के अन्तिम दिनों में श्रीनगर में कल्चरल अकादमी की भी स्थापना हुई। इस प्रकार इन चार माध्यमों से काश्मीरी भाषा एवं साहित्य की अभिवृद्धि को पुष्टि मिली और साहित्य की अनेक शाखा-प्रशाखाएं समृद्ध होने लगीं। धीरे-धीरे, इन ही मंचों पर काश्मीरी भाषा में साहित्य-समीक्षा की जड़ें जमने लगीं।

सन् १९४७ के बादः आधुनिक युग का सूत्रपातः

बीसवीं शताब्दि के छठे दशाब्द के पूर्वार्द्ध में जहां एक ओर रेडियो कश्मीर, श्रीनगर, से काश्मीरी रचनाओं, निबन्धों, लेखों आदि के आलोचनात्मक विश्लेषण की एक कड़ी का प्रसारण होने लगा, वहां आकाशवाणी, दिल्ली, से इसी छठे दशाब्द के मध्यकाल में "काश्मीरी वार्ता एवं कार्यक्रम" में 'शाह पारे' नाम की एक और लेखमाला प्रसारित होने लगी। इसके अतिरिक्त, आकाशवाणी के कश्मीरी न्यूज़ यूनिट के तत्कालीन वरिष्ठ उपसंपादक श्री विश्वम्बरनाथ कौल (जन्म १९१५) ने दिल्ली से प्रकाशित होने वाली पत्रिका पम्पोश (१९५६-५८) में 'जग तॅ प्रोन' (मटमैला और उजला) शीर्षक से एक लेखमाला आरम्भ की जिसमें काश्मीरी भाषा के कवियों, लेखकों, आदि का आलोचनात्मक विश्लेषण एवं तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया गया था। श्री कौल का निरूपण एवं विवेचन प्रौढ़, परिपक्व तथा मार्गदर्शक था, और जैसा ऊपर कहा जा चुका है, साहित्य-समीक्षा की जम रही जड़ें और भी दृढ़ होने लगीं और लेखक-समीक्षकों को एक नई दिशा मिली। कल्चरल अकादमी, श्रीनगर, ने सूफी शायर शीर्षक से तीन खण्डों का एक बृहद संकलन प्रकाशित किया जिसमें रहस्यवादी कवियों की चीदा-चुनिन्दा कविताओं को श्री अमीन कामिल ने संपादित किया था। इस प्रकाशन के संपादकीय टिप्पणों एवं भूमिका से साहित्य-समीक्षा को और भी योगदान प्राप्त हुआ। सन् १९५९ से कल्चरल अकादमी प्रकाशन-वर्ष से पहले की लिखी गयी उच्चस्तरीय गद्य एवं पद्य की नवीन रचनाओं का संकलन एवं संपादन करके लगभग

प्रति वर्ष सोन अदब नाम का संकलन प्रकाशित कर रही है, और इस प्रकाशन में साहित्य-समीक्षा सम्बन्धी मानक लेख एव निबन्ध प्रकाशित होते रहते हैं। साहित्य-समीक्षा के इस विशेष विषय पर के उज्जवल भविष्य वाले लेखकों, जिनकी कृतियों का मूल्यांकन प्रस्तुत लेख में आगे चलकर देखने को मिलेगा, के नाम इस प्रकार हैं :– श्री विश्वम्बर नाथ कौल (जन्म १९१५), श्री गुलाम नबी आरिज़ (जन्म १९१६), प्रो० मुहीउद्दीन हाजिनी (जन्म १९१७), प्रो० प्रथ्वी नाथ पुष्प (जन्म १९१७) श्री नूर मुहम्मद रोशन (जन्म १९१९), श्री शम्भुनाथ भट्ट 'हलीम' (जन्म १९२१), श्री गुलाम नबी 'फ़िराक़' (जन्म १९२२), श्री अमीन कामिल (जन्म १९२४), श्री रहमान राही (जन्म १९२५), श्री अली मुहम्मद लोन (जन्म १९२७), श्री अख्तर मुहीउद्दीन (जन्म १९३०), श्री अवतार कृष्ण रहबर (जन्म १९३३), श्री गुलाम नबी 'खयाल' (जन्म १९३६), और मुहम्मद यूसुफ़ 'टेंग' (जन्म १९३८)। इसके अतिरिक्त 'स्टडीज़ इन कश्मीरी' के विद्वान् लेखक (प्रो०) जे० एल० कौल का नाम उल्लेखनीय है। श्री कौल साहित्य समीक्षक होने के साथ-साथ कश्मीरी के एक अच्छे गद्य-लेखक भी हैं। इन्होंने साहित्य-समीक्षा पर कई लेख और निबन्ध लिखे हैं जिनमें से कुछ एक 'सोन अदब' में प्रकाशित हो चुके हैं। श्री कौल का निरूपण-विवेचन प्रौढ़ एवं विद्वत्तापूर्ण है। इसी प्रकार काश्मीरी के प्रख्यात कवि श्री दीनानाथ 'नादिम' (जन्म १९१६) ने भी साहित्य-समीक्षा पर कुछ एक उत्कृष्ट निबन्ध लिखे हैं किन्तु वे बहुधा अप्रकाशित हैं।

एक मूल्यांकन :

इस समय काश्मीरी साहित्य-जगत् में दर्जन-भर साहित्य-समीक्षक हैं। यदि ये इस विशेष विषय पर लिखते रहें तो साहित्य-जगत् की अनेक आशाएँ और आकांक्षाएं पूरी हो सकती हैं। यदि कालानुक्रम से इन की नामावली का अवलोकन किया जाय तो सर्वप्रथम प्रो० गुलाम मुहीउद्दीन हाजिनी (जन्म १९१७) का नाम देखने को मिलेगा। इसमें कोई संदेह नहीं कि श्री हाजिनी उच्च कोटि की साहित्य-आलोचना करते हैं। इनकी शैली पर फारसी-अरबी का प्रभाव है। इनका निरूपण-विवेचन वस्तुतः विद्वत्तापूर्ण है। सन् १९६१ में कल्चरल अकादमी द्वारा पुरस्कृत इन की रचना "काशिरि नसरच्य किताब" (काश्मीरी गद्य की पुस्तक) से पाठक को इनकी साहित्य-आलोचना के शिल्प की झलक मिलती है। उक्त पुस्तक की भूमिका और संपादकीय टिप्पण उच्च कोटि की समीक्षा प्रस्तुत करते हैं। इसी प्रकार इन ही प्रो० हाजिनी द्वारा संपादित "कॉशिर शायरी" (काश्मीरी काव्य) की भूमिका एवं संपादकीय टिप्पण साहित्य-समालोचना की दृष्टि से बहुत सारगर्भित एवं विद्वत्तापूर्ण हैं। इनके पश्चात् (प्रो०) पृथ्वीनाथ 'पुष्प' (जन्म १९१७) का नाम आता है। क्चोंग पोश, गुलरेज़, तथा सोन अदब

में प्रकाशित काश्मीरी आदि के कई कवियों के सम्बन्ध में आलोचनात्मक अध्ययन सम्बन्धी इनके लेखों और निबन्धों से यह सिद्ध होता है कि समीक्षा के क्षेत्र में इनकी प्रच्छन्न प्रतिभा से बहुत कुछ आशा की जा सकती है। न्यूनाधिक रूप में इनकी आलोचना शैली परम्परावादी है। इनके अनन्तर श्री शम्भुनाथ भट्ट 'हलीम' (जन्म १९२१) आते हैं। हलीम साहिब काश्मीरी गद्य एवं पद्य के लेखक हैं। क्वोंग पोश, गुलरेज़, पम्पोश (दिल्ली), काशुर समाचार (दिल्ली) वतन, तामीर और सोन अदब में प्रकाशित काश्मीरी के कई कवियों एवं लेखकों के सम्बन्ध में समीक्षामूलक विश्लेषण सम्बन्धी इनके लेखों और निबन्धों को पढ़कर यही कहना पड़ता है कि 'हलीम' साहिब के विश्लेषण-विवेचन की शैली प्राय: रूढ़िगत है यद्यपि यदा-कदा उसमें पूर्वात्य एवं पाश्चात्य प्रणालियों का संश्लेषण भी देखने को मिलता है। इनके बाद श्री गुलाम नबी "फ़िराक़" (जन्म १९२१) का नाम आता है। साहित्य-समालोचक "फ़िराक़" एक अच्छे गद्य लेखक हैं। इन की शैली पर भी फारसी-अरबी शैली का रंग चढ़ा है। इनके कई आलोचनात्मक निबन्ध और लेख गुलरेज़, वतन, चमन, सोन अदब और काशुर समाचार में प्रकाशित हुए हैं। श्री मुहम्मद अमीन कामिल (जन्म १९२४) उच्च कोटि के साहित्य-समालोचक हैं। इनमें किसी भी प्रकार का पूर्वाग्रह नहीं, और इनके साहित्य-विवेचन की शैली में पूर्वात्य एवं पाश्चात्य प्रणालियों का संश्लेषण प्रस्तुत होता है। काश्मीर कल्चरल अकादमी द्वारा तीन खण्डों में प्रकाशित ग्रंथ "सूफ़ी शायिर" में इनके संपादकीय टिप्पणों से इनकी श्रेयस्कर शैली और प्रच्छन्न प्रतिभा का पता चलता है। चमन, प्रागाश, गुलरेज़, सोन अदब तथा काशुर समाचार में कई काश्मीरी कवियों एवं लेखकों सम्बन्धी इनके समीक्षामूलक विश्लेषण एवं विवेचनापूर्ण अध्ययन प्रकाशित हो चुके हैं। श्री रहमान राही (जन्म १९२५) इसी क्षेत्र के एक और ख्यातिप्राप्त साहित्य-समीक्षक हैं और अपनी उच्च कोटि को बराबर संभाले रखे हैं। इनकी निरूपण-विवेचन शैली पर भी अरबी-फ़ारसी शैली का रंग चढ़ा हुआ है। सोन अदब, क्वोंग पोश, गुलरेज़, चमन, तथा काशुर समाचार जैसी अनेक पत्रिकाओं ऐवं प्रकाशनों में इनके अनेक समीक्षामूलक लेख ऐवं निबन्ध प्रकाशित हुऐ हैं इनके पश्चात् श्री अली मुहम्मद लोन (जन्म १९२७) का नाम आता है। लोन साहिब ख्यातिप्राप्त बहुसर्जक रचनाकार ऐवं अकादमी पुरस्कार-विजेता हैं। इन्होंने साहित्य-समीक्षा पर अनेक लेख लिखे हैं जिनके आधार पर समीक्षा-जगत् में निस्संदेह इन्हें ऊंचा स्थान प्राप्त हो सकता है। इनकी शैली में प्राय: पूर्वात्य एवं पाश्चात्य प्रणालियों का संश्लेषण पाया जाता है यद्यपि कभी-कभी इनकी शैली पर भी फारसी-अरबी शैली का रंग चढ़ा रहता है। इनकी कुछ एक आलोचनात्मक रचनाएं पम्पोश (दिल्ली) तथा सोन अदब

में प्रकाशित हो चुकी हैं। इनके पश्चात् एक और साहित्य अकादमी पुरस्कार-विजेता श्री अख्तर मुहीउद्दीन (जन्म १९२८) का नाम आता है। अख्तर साहिब बहुत ही उच्च कोटि के काश्मीरी गद्य-लेखक हैं। इनकी ओजस्वी लेखनी ने अन्य उच्च कृतियों के अतिरिक्त साहित्य-समीक्षा के विषय पर गद्य की मार्मिक एवं उदात्त कृतियों को जन्म दिया है। इनकी शैली में जहां प्रायः पाश्चात्य एवं पूर्वात्य प्रणालियों का संश्लेषण प्रस्तुत होता है, वहां यह शैली पाश्चात्य प्रणाली की ओर ही आनत दिखाई देती है। हो भी क्यों न, जब लेखक अपने विषय-पात्रों का मनोवैश्लेषिक एवं मनोवैज्ञानिक अध्ययन प्रस्तुत करते हैं। **क्योंग पोश, सोन अदब, तामीर, चमन,** और **काशुर समाचार** में साहित्य के आलोचनात्मक अध्ययन के सम्बन्ध में इनके लेख प्रकाशित हुए हैं। एक और ख्यातिप्राप्त लेखक-नाटककार श्री पुष्कर भान के सहयोग से श्री अख्तर द्वारा संपादित "दलील: (लोक-कथाएं) में इनके संपादकीय टिप्पणों को पढ़ कर यही कहना पड़ता है कि साहित्य-विवेचन क्षेत्र में अख्तर साहिब की प्रच्छन्न मेधा से हमारी आशाएं मूर्त हो सकती हैं। एक और साहित्य-समीक्षक हैं सूफ़ी गुलाम मुहम्मद (जन्म १९२८) जो एक अच्छी प्रतिष्ठा के काश्मीरी गद्य-लेखक भी हैं। सूफ़ी साहिब भी एक पुरस्कार-विजेता हैं। इन की कई विवेचनात्मक रचनायें **सोन अदब, तामीर,** और **गुलरेज़** में प्रकाशित हो चुकी हैं। इनकी शैली रूढ़िगत होते हुए भी फारसी-अरबी प्रणाली की ओर ही आनत दिखाई देती है। इसके पश्चात् बंसी निर्दोष (जन्म १९३०) का नाम आता है। निर्दोष जी ने पत्रकारिता से ही अपना जीवन आरम्भ किया था। आप काश्मीरी भाषा के एक अच्छे गद्यकार एवं कहानीकार हैं और कश्मीर कल्चरल अकादमी से पुरस्कृत हो चुके हैं। **सोन अदब, क्योंग पोश, तामीर चमन** और **काशुर समाचार** में साहित्य-समीक्षा सम्बन्धी आप के कई लेख एवं निबंध प्रकाशित हो चुके हैं। आपके ये समीक्षामूलक लेख अच्छी कोटि के हैं और परम्परावादी शैली में लिखे गये हैं। एक और ख्यातिनामा साहित्य-समीक्षक हैं श्री अवतार कृष्ण रहबर (जन्म १९३३) जिन्होंने दो खण्डों के ग्रंथ "कॉशिरि अदबच तॉरीख" (काश्मीरी साहित्य का इतिहास) का प्रणयन किया है। उनकी यह प्रशंसनीय रचना काश्मीरी साहित्य की अभिवृद्धि और विकास के सम्बन्ध में एक स्मारकीय एवं बृहद्काय शोध-प्रबन्ध है। रहबर साहिब काश्मीरी के एक प्रतिष्ठाप्राप्त गद्य-लेखक हैं और अच्छा अनुवाद भी करते हैं। उनकी अप्रतिम शैली में साहित्य-समीक्षा की पूर्वात्य एवं पाश्चात्य प्रणालियों का अद्भुत संश्लेषण देखने को मिलता है, और काश्मीरी साहित्य के इतिहासकार के रूप में साहित्य-समीक्षा विषयक इन का निरूपण बहुत ही भव्य एवं अनुकरणीय है। काश्मीरी कवियों एवं लेखकों की कृतियों को चित्रित करते समय रहबर साहिब ने पूरी

स्पष्टवादिता बरती है और बिना किसी पूर्वाग्रह के एवं पक्षपातरहित उनका आलोचनात्मक विश्लेषण किया है। इनके विवेचनात्मक निबन्ध **सोन अदब, शीराज़ा, तामीर और काशुर समाचार** में भी प्रकाशित हो चुके हैं। इनके पश्चात् एक और साहित्य-समीक्षक श्री गुलाम नबी 'ख़याल' (जन्म १९३६) का नाम आता है। इन्होंने काश्मीरी साप्ताहिक **वतन** का सम्पादन किया। काश्मीरी में सुन्दर गद्य लिखने के अतिरिक्त 'ख़याल' साहिब ने साहित्य-समीक्षा पर अनेक शोध लेख एवं निबन्ध लिखे हैं जो **शीराज़ा, तामीर सोन अदब** तथा **काशुर समाचार** में प्रकाशित हुए हैं। श्री अवतार कृष्ण रहबर के सहयोग से श्री 'खयाल' द्वारा संकलित एवं सपादित "**काशुर नसर**" (काश्मीरी गद्य) की भूमिका और उसके संपादकीय टिप्पणों को पढ़ कर पाठक यही कहने पर विवश होता है कि साहित्य-आलोचना के क्षेत्र में 'खयाल' साहिब वस्तुतः सक्षम है और उनकी मेधा बौद्धिक स्तर पर अनेक आकांक्षाओं को मूर्त रूप दे सकती है। अच्छी कोटि और प्रतिष्ठा के एक और साहित्य-समीक्षक है श्री मुहम्मद यूसुफ़ 'टेंग' (जन्म १९३८) जिन्होंने मुख्य रूप से केवल कुछ एक काश्मीरी प्रकाशनों का सकलन एवं संपादन किया है। उन प्रकाशनों के संपादकीय टिप्पणों, भूमिकाओं के अध्ययन से यही सिद्ध होता है कि 'टेंग' साहिब एक सक्षम समीक्षक है। आप का विवेचन प्रौढ़ एवं संतुलित है। आप **शीराजा** का संपादन करते रहे है, और उस के अंकों में आपके अनेक आलोचनात्मक निबन्ध भी प्रकाशित होते रहे हैं। आपके विवेचनात्मक निबंध **सोन अदब** में भी प्रकाशित हुए है। वली उल्लाह मत्तू की अमर कृति "हीमाल" तथा मक़बूल शाह क्रॉलवारी की भव्य कृति "गुलरेज़" पर आपके संपादकीय टिप्पणों एव भूमिका को देखकर मुक्तकण्ठ से यही कहा जा सकता है कि जहां 'टेंग' साहिब का निरूपण-विवेचन विद्वत्तापूर्ण है वहां उनकी शैली मार्मिक एवं प्राञ्जल है।

उपसंहार

इसमें कोई संदेह नहीं कि मानव की विदग्धता असीम है। वह बौद्धिक क्षेत्रों में नये-नये प्रयोग करता रहा है, और मानव-मन की नई गहराइयों की थाह लेता रहा है। स्वभावतः, काश्मीरी भाषा का लेखक भी और किसी से पीछे नहीं और गुण एवं परिमाण की दृष्टि से उसने साहित्य की अनेक शाखाओं-प्रशाखाओं को सजाया-संवारा है तथा खूब समृद्ध किया है। अपितु, यह कहना आवश्यक है कि साहित्य-समीक्षा के लिए पैनी विवेचक दृष्टि और प्रांजल शैली चाहिए, क्योंकि आलोचक को उद्देश्य के प्रति सच्चा और ईमानदार रह कर ही क्षीर को नीर से पृथक् करना पड़ता है। यही कारण है कि उसके मन और मस्तिष्क का तालमेल होना चाहिए और उसमें किसी भी प्रकार का पूर्वाग्रह अथवा पक्षपात नहीं होना चाहिए। निस्संदेह काश्मीरी साहित्य-जगत् में विवेकपूर्ण दृष्टि का अभाव नहीं किन्तु कटु सत्य यही है कि साहित्य-समीक्षा की दिशा में प्रगति नहीं हुई है जिसके परिणामस्वरूप इसका चित्र उतना उज्ज्वल नहीं। अतः काश्मीरी साहित्य में इस विधाविशेष समीक्षा को यथेष्ट स्थान दिलाने और आगे ले जाने के लिए काश्मीरी लेखक को पूरी तन्मयता से समीक्षोन्मुख प्रयोजनबद्ध अभ्यास करना होगा।

निदंक नियरे राखिये

• डॉ० संसार चन्द

निन्दा धर्म एक शाश्वत धर्म है और "निंदक नियरे राखिए" का उपदेश युग-युग का उपदेश है। जब भी निन्दा धर्म की ग्लानि हुई और अनिन्दा रूपी अधर्म ने पांव पसारे तब तब किसी महापुरुष अथवा नेता ने अवतार धारण करके इस धर्म की रक्षा की। इस सम्प्रदाय के महान् समर्थकों में महामुनि नारद का नाम लिया जाता है। आपने सारे संसार में घूम कर इस धर्म के झण्डे बुलन्द किये। कलियुग के प्रारंभ होने पर जब इस धर्म पर विपत्ति के घनघोर बादल घिर आये तो भगत कबीर सामने आ गये। भगत कबीर ने डफली बजा बजा कर इस धर्म का प्रचार किया। कबीर हिंदी के सबसे पहले कवि तथा समाज-सुधारक थे, जिन्हों ने निंदक को सर्व प्रथम साहित्यिक मच पर खड़ा किया। किस्मत का मारा निंदक जो सदियों से लोगों के पाप धोता चला आ रहा था कबीर-युग में पुनः इज्जत की जिंदगी बसर करने लगा। कबीर ने निंदक के प्रच्छन्न व्यक्तित्व को उभारने के लिए अपनी जगत् प्रसिद्ध रचना 'कबीर-ग्रन्थावली' में एक पूरा अध्याय जोड़ा। प्रत्येक नर-नारी से निन्दक को गले लगाने की पुरजोर अपील की। इनके समाज-सुधार के मैनीफेस्टो का पहला प्रोग्राम निन्दकोद्धार था जिसका उद्घाटन कबीर के ही शब्दों में इस प्रकार हुआ था :—

> निन्दक नियरे राखिये कंचन कुटी बनाय।
> बिन साबुन पानी बिना निरमल करे सुभाय॥

कबीर के निन्दक-उद्धार के अभियान के मूलमन्त्र की पहली क्लाज "निन्दक नियरे राखिये" यद्यपि ऊपर से तो सरल दिखाई देती है परन्तु इसपर अमल लोहे के चने चबाना है। दूसरी क्लाज 'कंचन कुटी बनाय' कोई बहुत बड़ी मुश्किल में नहीं डालती। भगवान् यदि तौफीक दें तो 'कंचन कुटी' का निर्माण करना कोई विशेष समस्या नहीं। इसके आगे तो पूरी तरह से लाइन क्लीयर हैं। न साबुन की फिकर और न पानी की, बस स्वभाव ऐसे निर्मल होगा जैसे गंगाजल। परन्तु यदि प्रथम ग्रास में ही मक्षिकापात हो गया तो गाड़ी वहीं लाइन से उतर जायेगी। परन्तु स्मरण रहे कि बिल्ली के गले में घन्टी बांधना कोई सहज काम नहीं। निन्दक को एकामोडेट करने के लिये गज-भर का कलेजा चाहिये। वस्तुतः निन्दक की तुलना बुजुर्ग की सीख और आंवले के स्वाद से की जा सकती है, जिस का पता बाद में चलता है। यह अलग बात है कि बहुत जल्दी लाभ उठाने के

लोभ में पड़कर ग्रांवलों की गुठलियां भी निगलनी पड़ती हैं ग्रौर ग्रांवलों को ग्रच्छी तरह चबाने की कोशिश में ग्रपनी जीभ भी काटनी पड़ती है। बुजुर्गों के ग्रयाचित उपदेश की मार से जान के लाले भी पड़ जाते हैं, तब कहीं कबीर के निन्दक पंथ में प्रवेश मिलता है।

कबीर ने निन्दा को एक धर्म माना है। इसीलिये इस महात्मा ने निन्दा के झण्डे इतने संपुष्ट धरातल पर गाड़े थे कि सभी मानसिक तथा दैहिक रोगों के लिये यही एक मात्र सर्वसिद्ध ग्रौषधि तसव्वर होती थी। इसका प्रयोग करते समय रोगी साबुन ग्रौर पानी से पूरी तरह बेन्याज हो जाता था। इस लिये कबीर युग में निन्दा ने साबुन के ग्रनेक कारखाने बन्द करवा दिये थे। इधर ग्राज कल जब से निन्दा की उपेक्षा होने लगी है, हम साबुन के बेदाम गुलाम होने लगे हैं। साबुन की प्रोडक्शन इस शिद्दत से बढ़ रही है कि ग्राज के युग को एक प्रकार से साबुन का युग कहना पड़ता है। स्मरण रहे कि हमारे नेता यदि शीघ्र ही इस सम्बन्ध में कोई ग्रारडेनेन्स पास करवा कर निन्दा का पुनुरुद्धार नहीं करते तो भारत की एकानोमी को भारी ग्राघात पहुंचने का ग्रंदेशा है। हमारी भोली भाली जनता बिना किसी ग्रपराध के रोटी, कपड़ा ग्रौर मकान से महरूम हो सकती है।

भारतीय इतिहास पर दृष्टि डालने से सिद्ध होगा कि निन्दा धर्म ने मानव समाज के ग्रसंख्य उपकार किये हैं। इस ने कमजोरी को शक्तिशाली ग्रौर कायरों को बहादुर बनाया है। ग्रनेक निकम्मे कर्मठ ग्रौर ग्रकवि कवि बन गए हैं। निन्दा धर्म के चमत्कार की ग्रनेक कहानियां प्रसिद्ध हैं।

मियां मुहम्मद पंजाबी एक बहुत ऊंचे पाए के शायर हो गुजरे हैं। ग्रापको बचपन से ही कविता लिखने में विशेष रुचि थी। युवावस्था तक पहुंचते पहुंचते ग्रापने ग्रनेक किस्से लिख डाले। मगर इतना परिश्रम करने पर भी उनको कवियों की बिरादरी में कोई सम्मान योग्य स्थान प्राप्त न हो सका। एक समय ऐसा ग्राया कि ग्रकस्मात ही वे एक निन्दक महापुरुष की दृष्टि के पात्र बन गए। ये महोदय भी उनके ही हमसफर एक शायर थे मगर निन्दा के फन में इनको कमाल हासिल था। उन्होंने मियां साहब को निन्दा के शूर्प में डाल कर ग्रनाज के दानों की तरह इस जोश में छटका कि मियां साहब को नानी याद ग्रा गई। जब छोटे मोटे निन्दापूर्ण भाषणों से उनकी तसल्ली न हुई तो वे कवि का मुकाबिला कविता से ही करने लगे ग्रौर ग्रन्त में मियां साहिब पर विष में बुझा जो काव्य-बाण उन्होंने छोड़ा वह इस प्रकार था :—

छपडियां बिच तर दिठी ग्रा नदी बिच पोखां।
या कडड जोर तबियत वाला या मुढ तायग हो खां।।

इस तीर का घाव बहुत गहरा था। चुनाचे मियां साहिब की किस्सा-रवानी

का तो जनाजा निकल गया । मगर जिस निर्भय कठोरता से इस मेहरबान निन्दक का वार हुआ था उसी दृढ़ता से मियां मुहम्मद ने भी चैलेंज को स्वीकार कर लिया । फिर क्या था छोटी मोटी छप्पडियों में तैरने वाला विशाल नदी में कूदने पर अमादा हो गया । उसके हृदय के सुप्त कलाकार ने अंगडाई ली और सैंफल बलकलूम नामक पजाबी के एक उच्चतम महाकाव्य का जन्म हुआ । यह एक निंदक महाराज के निःस्वार्थ प्रेम का ही परिणाम था कि मियां मुहम्मद का नाम चारों दिशाओं में गूंज उठा । मगर मियां कृतघ्न नहीं थे । वे जब तक जीवित रहे सैफलमलूक महाकाव्य की रचना का श्रेय केवल मात्र निन्दक को देते रहे ।

हिन्दी के महाकवि भूषण के नाम से प्रायः सभी परिचित हैं । उनके भाग्य परिवर्तन में भी निन्दा संजीवनी का बहुत बड़ा हाथ रहा । कहते हैं जवानी के दौर में भूषण बहुत मस्त, आवारा एवं निकम्मे थे । पिता का साया सिर से उठ चुका था । इसलिये बड़े भाई की सरपरस्ती में ही जीवन व्यतीत करते थे । बड़े भाई तो भूषण से बहुत प्यार करते थे परन्तु भावज उनसे सदा अप्रसन्न रहती थी । उसे भूषण का निठल्लापन एक आंख न भाता था । संयोगवश उसने निंदावला में भी उसने पूरी ट्रेनिंग ले रखी थी । इसलिये बिना साबुन और पानी के भूषण का स्वभाव निर्मल करने पर सदा तुली रहती थी । यह सिलसिला कई वर्ष चलता रहा परन्तु कोई सन्तोषजनक परिणाम न निकल सका । भूषण भी एक ऐसे पक्के घड़े थे जिस पर चित्रकारी करना संभव न था । आखिर भावज की निन्दासाधना चरमसीमा पर पहुंची । एक दिन भोजन करते हुए भूषण दाल तरकारी में निमक न होने की शिकायत कर बैठे । बस फिर क्या था भावज जो पहले से ही वक्त की तलाश में थी निन्दा का ब्रह्मास्त्र लेकर युद्धक्षेत्र में उतर आयी और कहने लगी कि—"मियां तूने कौन से अपने कमाई से निमक के गोदाम भर रखे हैं जो नुक्ते निकालते हो ।" भूषण तो चुप थे मगर भावज ने इस साहस से निन्दा की पिटारी खोली कि भूषण को वहां से बोरियां बिस्तर गोल करके सदा के लिये रफूचक्कर होना पड़ा । यह भावज के नाना प्रकार के निन्दा इन्जेक्शनों का ही प्रभाव था कि भूषण के निकम्मेपन का बुखार तुरन्त काफ़ूर हो गया और वह बहुत थोड़े समय में छत्रपति शिवाजी के दरबार के उच्च कोटि के कवि के रूप में प्रतिष्ठित हुए । कहते हैं कि एक एक छन्द पर कवि को शिवाजी से लाख लाख रुपया और हाथी मिलते थे । भूषण अपनी भावज की नेकियों को फरामोश नहीं कर सके । यहां तक कि उसको अपनी गुरु मानते रहे और गुरुदक्षिणा के रूप में नमक के लदे ऊंट भेजते रहे ।

हमारे प्राचीन शास्त्रों में भी निन्दा तथा निन्दक की विशेष चर्चा मिलती है । भारतीय काव्य शास्त्र के आदिम आचार्य भरत मुनि ने आठ रसों का वर्णन

किया परन्तु वह निन्दा रस जी उपेक्षा कर के भयानक भूल कर गए। उन्होंने श्रृंगार रस को रसराज सिद्ध करने में ही सारी शक्ति लगा दी परन्तु निन्दा रस जो श्रृंगार, वीर अद्भुत, रौद्र, करुण आदि रसों का प्राण तत्त्व था उस को छोड़ गये। एक सहृदय को जो अनुभूति निन्दा रस में प्राप्त होती है वह और किसी रस में नहीं होती। जो मनुष्य एक बार निन्दारस का आनन्द प्राप्त कर लेता है वह इसी रस-सागर में बारंबार डुबकी लगाने के लिये लालायित रहता है। महाकवि सूरदास की शब्दावली में अमृतफल का स्वाद लेने वाला व्यक्ति कभी करील फल नहीं खाता। भला काम धेनु को छोड़कर छेरी कौन दुहाता है।

निन्दा धर्म में दीक्षित मनुष्य सत्यवादी, निर्भीक तथा परोपकारपूर्ण होता है। निष्काम कर्म उसके जीवन का माटो होता है। वह अपनी तनिक भी परवाह न करके दूसरों की चिन्ता में शहर के काजी की तरह दुबला होता रहता है। एक शोध कर्ता विद्वान के रूप में भी निन्दक का कम महत्त्व नहीं है। वह प्रत्येक पराई वस्तु को हजार नेत्रों से देखता है, हजार कानों से सुनता है या हजार मुख से बयान करता है। कमाल तो यह है कि दूसरे के हजार दोषों को पलक झपकते ही भांप लेने वाला अपने लाखों दोषों की ओर आंख उठाकर भी नहीं देखता। वस्तुतः उसे स्वार्थ से भारी चिढ है और वह सदा परार्थ में ही लीन रहता है।

निष्कर्ष रूप में हम कह सकते है कि निंदक सचमुच गुणों की खान हैं। वे चाहें तो आपका घोड़ा सरपट भागेगा नहीं चाहेंगे तो वह चारा लेकर भी बेचारा मर जायेगा। चाहो तो इन से अपनों पर कैंची चलवा लो और चाहो तो इन से बेगानों को टांका लगवा लो। हथेली पर सरसों जमाना इनका खानदानीपेशा है। रातों रात "रोम" खड़ा करना आयें हाथ का खेल है। बिना तिल के ताड़ बनाना कोई इनसे सीखे और बिना राई, के पहाड़ बनाना कोई इनसे जाने। इसी लिये इनका महिमा गान मुक्त कंठ से हुआ है। इनकी कृपा से मेरी तमाम हसरतों की मुराद भर आई है। निंदकों के सदके हम ने कौन से दिन नहीं देखे। इन्हों ने हमें हर पर्व पर बिना साबुन और बिना पानी के शुद्ध स्नान करवाये हैं। मैं तो खुद को शीशे के समान निर्मलहुआ पाता हूं। देश की तमाम नगर पालिकाओं को मेरा सुझाव है कि वे अपनी तमाम सफाई का काम इसी सफाई पसंद तबके के सुपुर्द करें। फिर देकें शहर की गलियों और मुहल्लों का क्या रूप निरखता है। निंदक न केवल हमारी सांस्कृतिक वरासत ही है बल्कि आज के नाजुक दौर में हमारी राष्ट्रीय सम्पत्ति भी हैं। निंदक का पास बने रहना हर हालत में लाजमी है। 'निंदक नियरे राखिये'हमारा नारा होना चाहिये और हमारा प्रार्थना मन्त्र केवल "नमो निन्दकाय"।

काश्मीर शैव दर्शन और स्वच्छन्द तन्त्र

● डॉ० कौशल्या वल्ली

शिव सूत्रों के मूल लेखक और कश्मीर शैव दर्शन अथवा त्रिक दर्शन के प्रवर्तक वसु गुप्त हैं। त्रिक शब्द मुख्यतया पति, पशु और पाश से सम्बद्ध है।[1] पति ईश्वर है, पशु जीव है, और पाश जगत् है। शैव दर्शन का त्रिक रूप काश्मीर में नवमीं शताब्दी ईस्वी के प्रारम्भ में अथवा आठवीं शताब्दी ईस्वी के अन्त में उद्भूत हुआ। त्रिक साहित्य को विशाल रूप से तीन भागों में विभाजित किया जा सकता है :—

(१) आगम शास्त्र, (२) स्पन्द शास्त्र, (३) प्रत्यभिज्ञा शास्त्र,

आगम शास्त्र अतिमानव द्वारा लिखित माना जाता है। यह शास्त्र सिद्धान्तों और व्यावहारिक पक्ष से सम्बन्ध रखता है। यह सिद्धान्त और व्यवहार हमें शिष्य परम्परा से युगों से प्राप्त है। आगम शास्त्र में बहुत से तन्त्र आते हैं। स्वच्छन्द तन्त्र त्रिक दर्शन के आगम शास्त्र का एक मुख्त तन्त्र है।

यह तन्त्र शैव दर्शन के विशुद्ध एक देववाद के पक्ष को स्थापित करता है और शैव दीक्षा पर उत्कृष्ट ग्रन्थ माना जाता है। इसका मुख्य सार उपासना और क्रिया है। कश्मीर शैव दर्शन का सार स्वातन्त्र्य है। स्वच्छन्द तन्त्र के कुज पन्द्रह पटल हैं। कुछ पटल संक्षिप्त हैं जबकि दूसरे पटल पर्याप्त रूप मे लम्बे हैं पटलों के नाम इस प्रकार हैं—

(१) मन्त्रोद्धार: (२) अर्चाधिकार: (३) अधिवास: (४) दीक्षाभिषेक प्रकाशम् (५) तत्त्वदीक्षा प्रकाशम् (६) पञ्च प्रणवधिकार: (७) आभ्यन्तर–कालाधिकार: (८. अंशकनिर्णय: सम्बन्धषटक्निरूपणम् (९) अभीष्ट सिद्धि साधनम् (१०) भुवनादिदीक्षा निरूपणम् (११) तत्त्वाध्वसृष्ट्यादि निरूपणम् मतान्तरवादिनां तत्तत्व-स्थिति निरूपणम् (१२) धारणादि क्रमेण तत्त्वानां साक्षात्कार निरूपणम्-३२ अनुष्ठानभेदा: (१३) यागाराधनम् (१४) मुद्रालक्षणम् (१५) छुम्मानिरूपणम्

स्वच्छन्द तन्त्र मन्त्रशास्त्रों में उत्कृष्ट शास्त्र माना जाता है। इसको अन्य तन्त्रों में अद्वितीय स्थान प्राप्त है क्योंकि यह विशेषतया अद्वैत तत्त्व अथवा अध्यात्म की चरम सीमा को पहचानना ही अपना मुख्य उद्देश्य बतलाता है। अद्वैत की

परात्रिंशिका पिवृत्ति—
"नरशक्ति शिवात्मकं त्रिकम् ।।"

चरम सीमा विशुद्ध और पूर्ण आनन्द है । स्वच्छन्द तन्त्र देवी और भैरव के बीच संवाद के रूप में उपलब्ध है । इस समय स्वच्छन्द तन्त्र सम्बन्धी उद्योत नामक एक ही टीका हमें उपलब्ध है । व्याख्याकार प्रसिद्ध क्षेमराज है । यह टीका विशुद्ध एक देव-वाद के ही प्रकाश में तन्त्र की व्याख्या करती हैं । दूसरे संस्कृत विद्वानों की भांति क्षेमराज के कुल परिचय के सम्बन्ध में हमें कोई विशेष सूचना नहीं है । उनके नाम से अनेक कृतियाँ विख्यात हैं । 'भट्टनारायण' की कृति 'स्तवचिन्तामणि' की टीका मे यह स्पष्ट कहा गया है कि विजयेश्वर में रहते थे । विजयेश्वर का आधुनिक नाम बिजिबिहाड़ा है जो श्रीनगर से तीस मील की दूरी पर है । बिजबिहाड़ा में ही सूरादित्य के बेटे गुणादित्य ने क्षेमराज को स्तवचिन्तामणि की टीका लिखने की प्रार्थना की थी । 'कल्हण' ने अपनी राजतरंङ्गिणी में शूरादित्य के विषय में कुछ भी नहीं लिखा है सम्भवतया शूरादित्य ने ऐसा कोई काम नहीं किया होगा जिससे कल्हण का ध्यान आकृष्ट होता । 'क्षेमराज' के समय के विषय में हम लोगों को अन्धेरे में अधिक नहीं भटकना पड़ता है क्योंकि वह स्वयं को "अभिनवगुप्त" का शिष्य घोषित करते हैं । सर्वसम्मति से अभिनव गुप्त या तो दसवीं शती के उत्तरार्द्ध में या ग्यारहवीं शती के पूर्वार्द्ध में रहते थे । स्थान की कमी के कारण तन्त्र के विशेष सिद्धान्तों का ही यहाँ वर्णन किया जाएगा । एक यथार्थ गुरू के लक्षण क्या हैं ? एक वास्तविक गुरू को विवेक की प्रति मूर्ति होना चाहिए । विवेक शील गुरु दूसरे लक्षणों के न होते हुए भी गुरू कहने योग्य और अनुसरण करने योग्य है[2] ।

सच्चा शिष्य कहने का कौन अधिकारी है ? दुःखियों के प्रति करुणा-शील, धैर्यवान, शुद्ध हृदय से युक्त दर्प रहित, दृढ़संकल्पी, संयतेन्द्रिय और दृढ़ेच्छाशक्ति से ओत प्रोत, ऐसा जीव ही शिष्य बनाने योग्य है ।[3]

दूसरी ओर से दर्पपूर्ण, अशुद्ध हृदय वाला निर्दयी, झगड़ने वाला, कामी, लोभी भक्तिरहित और दोषदृष्टि वाला कभी भी मोक्ष-लाभ नहीं कर सकता है यद्यपि गुरु उसे अपनाए और दीक्षित भी करे[4] । स्वच्छन्द-तन्त्र में सच्चाई पर

---

२. 'स्वच्छन्द-तन्त्र', टीका १:१२ ३. 'स्वच्छन्द-तन्त्र', १:१४-१६

शिष्यो दयान्वितो धीरो दम्भमायाविवर्जितः ।।१८।।

देवाग्निगुरुभक्तश्च, शास्त्रभक्तो दृढ़व्रतः ।

गुरुशुश्रूषपरः सुशान्तेन्द्रियसंयुतः ।।१६।। ईदृशो वै भवेच्छिष्यः

४. 'स्वच्छन्दतन्त्र', १:२०-२१, "मायायान्वितः शठः क्रूरो निःसत्यः कलहप्रियः ।। कामी च लोभसम्पन्नः शिवभक्ति विवर्जितः ।। इषको गुरु शास्त्राणां दीक्षितोऽपि न मुक्तिभाक ।।

अत्यधिक ज़ोर दिया गया है। सत्य का अनुसरण नहीं करने वाला व्यक्ति अपनी युक्तियों में सफलता प्राप्त नहीं करता है[5]। परमशिव जगत् के रूप में प्रकट होता है और इसलिए सगुण है, लेकिन जगत् का स्रष्टा होते हुए भी वह जगत् से अतीत है अतएव निर्गुण है[6]। द्वितीय पटल प्रथम पटल से तीन गुणा बृहत् आकार का है। पहले पटल में सत्तासी श्लोक हैं और दूसरे पटल में दो सौ उन्यानवें श्लोक हैं। परम-शिव की कृपा-प्राप्ति के लिए हमने उन्हीं के गुणों का अपने में विकास करना होता है[7]। इसके अतिरिक्त इस पटल में पूजा की पद्धति को विशद रूप से बताया गया है। तीसरा पटल 'अधिवास-पटल' कहलाता है और और उसमें दो सौ-चौदह श्लोक हैं। चतुर्थ पटल में सात तत्त्वों का भी वर्णन मिलता है--पुरुष, नियति, काल, राग, विद्या, कला और माया[8]। क्षेमराज के अनुसार माया की शक्ति के कारण परमशिव सीमित हो जाता है, उसका स्वभाव आवृत्त हो जाता है और इसीलिए उसे पुरुष कहा जाता है। (जीवात्मा) माया से मोहित हुआ जीवात्मा गुणों और दोषों से घिरा हुआ है और आवागमन के चक्र में आबद्ध हो जाता है। यद्यपि जीवात्मा परमशिव से अभिन्न है तथापि इसकी मोहकता का प्रभाव परम-शिव पर नहीं पड़ता। विद्या के कारण परमशिव के साथ तादात्म्य लाभ करने से एकाकार हो जाता है तभी यह मोक्ष प्राप्त करता है और परमशिव के साथ एक हो जाता है।

शुभ और अशुभ कर्मों को नियमित करने का आधार 'नियति' है। 'नियति' के कारण ही विशेष कारण विशेष कार्यों ने सम्बद्ध हैं। इस प्रकार अपनी शक्ति में सीमित होने के कारण शिव जीवात्मा बनता है। भूत वर्तमान और भविष्य का कारण 'काल' है। जीवात्मा का किन्हीं विषयों के प्रति आसक्ति का कारण 'राग' है। 'विद्या' सीमित विद्या का कारण है। कला से लेकर पृथिवी तक एवं विभिन्न कञ्चुकों में अविवेक ही 'माया' है। यह जीवात्मा को मोहित करती है जिसके कारण विभिन्न कञ्चुकों के आधार पर जीवात्मा अपने को सीमित समझता है। मोह जीवात्मा को अपना वास्तविक स्वरूप अवगत नहीं कराता।

नियति, काल, राग, विद्या, कला और माया पुरुष के छः कञ्चुक हैं।

---

५. 'स्वच्छन्द-तन्त्र', १:२७ "मन्त्रास्तस्य न सिद्ध्यन्ति यः सत्यादिविवर्जितः।"

६. 'स्वच्छन्द-तन्त्र', १:६९ (टीका)

सगुणः सकलो ज्ञेयो निर्गुणो निष्कलः शिवः।

'स्वच्छन्द तन्त्र' स्वच्छन्दो निष्कलः स्मृतः।

७. २:३५ (टीका) शिवो भूत्वा शिवं यजेत्

८. 'स्वच्छन्द-तन्त्र', ४:१७२ (टीका)

सप्त तत्त्वानि (पुरुषनियतिकालरागविद्याकला-मायाख्यानि)।

ग्राबद्ध ग्रात्माग्रों का ग्रावरण ही कञ्चुक कहलाता है। परमशिव की सर्व-शक्तिमत्ता, पूर्णता, सातत्य ग्रौर सर्वव्यापकता संकुचित हो जाते हैं ग्रौर क्रमश: कला, विद्या राग, काल ग्रौर नियति में परिणत हो जाते हैं। परमशिव की शक्ति किसी के द्वारा भी संकुचिम नहीं होती। उसकी शक्ति उसकी ग्रपनी ही इच्छा के कारण संकुचित होती है। शिव की मुख्व शक्तियाँ ज्ञान-शक्ति ग्रौर क्रिया-शक्ति है। इसीलिए उन्हें 'सदाशिव' कहा जाना है। 'सदाशिव' विद्या तत्त्व से युक्त है। दूसरे शब्दों में सदाशिव बिना किसी व्यक्तिगत रङ्ग के है। प्रणव 'ग्रो३म्' की परिभाषा—'ग्र' ब्रह्म के लिए हैं, 'उ' विष्णु के लिए है ग्रौर 'म' रुद्र के लिए है[9]।

मन चञ्चल है। जिन वस्तुग्रों के पीछे दौड़ता है, उन से इस (मन) को विमुख करके, पुन: पुन: ग्रपने साध्य पर लाना है[10]। फलस्वरूप प्रत्येक श्वास परमशिव से ही ग्रोत प्रोत हो जाता है।

सद्विद्या ग्रथवा शुद्धविद्या ग्रनुभवकर्त्ता ग्रौर ग्रनुभव के विषय के मध्य मध्यस्थ का काम करती है, ग्रन्यथा यह समझना दुष्कर होता कि दोनों एक दूसरे को कैसे प्रभावित करते हैं ग्रौर ज्ञान ग्रौर ग्रनुभव में परिणत होते हैं।

स्वच्छन्द तन्त्र के नवें पटल में नौ तत्त्वों की गणना की गई है—प्रकृति, पुरुष, नियति, काल, माया, विद्या, ईश, सदाशिव ग्रौर शिव[11]।

क्षेमराज के ग्रनुसार ईशतत्त्व परमशिव में विद्यमान है। यह तत्त्व परम-शिव के पूर्ण "ग्रहम्" से प्रभावित है। इच्छा, ज्ञान ग्रौर क्रिया एवं पूर्ण ग्रानन्द वाले परम शिव को ही क्षेमराज ने शिवतत्त्व कहा है।

सदाशिव के मुख्य लक्षण शुद्धविद्या है। ज्ञान ग्रौर क्रिया की शक्ति ही विद्या है। सदाशिव ही सकल है[12]। वह स्वयं प्रकाशमान है[13]। निर्गुण निष्कल शिव सकल है।[14]

---

९ स्वच्छन्दतन्त्र ४.२६३ ग्रकारो ब्रह्मवाचक: उकारो विष्णुवाचक: मकारो रुद्रवाचक:

१०. स्वच्छन्दतन्त्र ४.३१३ यत्र यत्र मनो याति
ज्ञेयं तत्रैवचिन्तयेत् चलित्वा यास्सते कुत्र सर्वं शिवमयं यत:

११. स्वच्छन्दतन्त्र ८.११ प्रकृति: पुरुषश्चैव नियति कान्व च माया विद्या तथेशश्च सदाशिव शिवौ तथा ॥

१२. स्वच्छन्द तन्त्र ५.१४ विद्याख्यस्याप्युपकार:। सकलावधि: तज्त्रेयं
विद्या ज्ञानक्रियात्मा शक्ति: शुद्धविद्येश्वरसदा-शिवव्याप्तिका। सकल: सदा-शिव:।

१३। स्वच्छन्द तन्त्र ८.७८ –"देवदेव: सदाशिव:।"

१४. स्वच्छन्द तन्त्र ९.१७ सगुण: समलो ज्ञेयो निर्गुणो निष्कल: शिव: ॥७॥

स्वच्छन्द तन्त्र दस प्रकार के प्राणों को मान्यता देता है—१. प्राण २. अपान ३. समान ४. उदान ५. व्यान ६. नाग ७. कूर्म ८. कुकर ९. देवउत्त १०. धनञ्जय[15]। एक ही प्राण की विभिन्न क्रियाओं के परिणामस्वरूप उसे विभिन्न नाम दिये गए हैं। प्राण के दस प्रकार के अतिरिक्त तीन मुख्य प्रकार की नाड़ियाँ भी हैं :— १. बिन्दु २. नाद ३. और शक्ति[16] बिन्दु मुख्यतया ज्ञानशक्ति से युक्त है। उसे प्राण भी कहते हैं, इसी का नाम पिङ्गला नाड़ी है। नाद मुख्यतया क्रिया-शक्ति से युक्त है। इसे अपान भी कहते हैं और इड़ा भी। इन दो के मध्य जो शक्ति है वह सुषुम्ना नाम से प्रसिद्ध है[17]। दाहिनी नासिका में पिङ्गला नाड़ी है, बाईं नासिका में इड़ा नाड़ी, और दो नासिकाओं के मध्य में सुषुम्ना नाड़ी है[13]।

पिङ्गला नाड़ी देव मार्ग को ले जाती है। इड़ा नाड़ी पितृलोक को और सुषुम्ना उस परमशिव को ले जाती है जहाँ से कोई लौट के नहीं आता[19]।

स्वच्छन्दतन्त्र के अनुसार, शिव के भक्त ने ईर्ष्या, अहङ्कार से रहित, शिव के प्रति अनन्य आसक्ति, नाम और ध्यान के उच्चारण में सातन्य रुचि, कार्पण्य से रहित होना होता है ; उस से आत्मसंयमी, सही सिद्धान्तों से युक्त, स्वाध्यायी और आत्मदर्शनपरक होने की अपेक्षा की जाती है[20]।

इस प्रकार स्वच्छन्द तन्त्र विशेषतया संसार में व्यवहारिक जीवन व्यतीत करने का मार्ग विवेचित करता है। यह तन्त्र स्पष्टरूपेण इस भेद को हमारे समक्ष अनावृत करता है कि मानव यथार्थ में परमशिव है, यदि वह अपने में दिव्य गुणों का विकास करता है। यदि वह पाशविक वासनाओं का दास बनता है तो पशु से भी निकृष्ट प्रमाणित होता है।

---

१५. स्वच्छन्द तन्त्र ७.१७ प्राणोऽपानः समानश्च उदानो व्यान एव च नागः कूर्मोऽथ कुकरो देवदत्तो धनञ्जयः।

१६. स्वच्छन्द तन्त्र ७.१९ दिशानां तु परं देव नाडीत्तयमुदाहृतम् ॥१९॥ बिन्दुनादात्मके द्वे वै मध्ये शक्त्यात्मिका स्मृता।

१७. स्वच्छन्दतन्त्र ७.१९ (टीका)
बिन्दुः ज्ञानशक्ति प्रधानः प्राणस्तदात्मिका पिङ्गला दक्षनाड़ी। नादः क्रियाशक्तिप्रधानोऽपानस्तदात्मिका इड़ा वामनाड़ी। तयोर्मध्ये सुषुम्नाख्या परेच्छाशक्तिस्फुरतारूपा।

१८. स्वच्छन्दतन्त्र ७.१४८ दक्षनासापुटे चैव नाड़ी वै पिङ्गला स्मृता ॥१४८॥ इडा त्रैव तु वामेन सुषुम्ना मध्यतः स्थिता।

१९. स्वच्छन्द तन्त्र ७.१४९ दक्षिणे देवमार्गस्तु पितृमार्गस्थोत्तरे ॥१४९॥ मध्यमः शिवमार्गस्तु तत्र गत्वा न जायते ॥

२०. स्वच्छन्दतन्त्र १०।६१-६६

भक्त प्रवर परमानन्द की भाखा

• डॉ० जियालाल हण्डू
पी० ई० एस०

कश्मीर में हिन्दी का उद्‌भव कब से माना जाए, यह शोध का विषय है। इतना अवश्य है कि यहां के प्रसिद्ध कवि आनन्दवर्द्धनाचार्य ने दसवीं शताब्दी में 'ईश्वर शतक' नामक काव्य-रचना का प्रणयन किया। इस भक्ति-पूर्ण रचना के सौ श्लोकों में एक ऐसा श्लोक उपलब्ध है जिसके संबंध में कवि की निजी धारणा यह है कि "षड्‌भाषा मिश्रितोऽयं श्लोकः'। सिद्धान्ततः इससे यह बात स्पष्ट हो जाती है कि कवि ने इसमें संस्कृत के अतिरिक्त अन्य विशिष्ट एवं प्रचलित भाषाओं का भी संगुम्फन किया होगा। निष्कर्षस्वरूप यह कहना उपयुक्त है कि कश्मीर में बीसवीं शताब्दी से पूर्व यहां के कवि कश्मीरी के साथ-साथ हिन्दी अथवा अन्य प्रचलित भाषाओं में भी काव्य-रचना करते थे। यहां के भक्तप्रवर कवि परमानन्द को इस प्रकार की प्रचलित प्रवृत्ति का अपवाद मानना ठीक नहीं।

परमानन्द ने अपनी भावाभिव्यक्ति के लिए कश्मीरी एवं हिन्दी के पृथक्-पृथक् स्वरूप अथवा हिन्दी के साथ-साथ अन्य भाषा के मणि-कांचन संयोग को उसी रूप में उपयुक्त माना होगा जैसे समाज-नायक तुलसीदास ने अवधी के सग संस्कृत के मिश्रित प्रयोग को साहित्यिक-स्वीकृति का मानदण्ड माना होगा। परमानन्द ने विशुद्ध कश्मीरी में काव्य-रचना तो की है; किन्तु इसके अतिरिक्त उन्होंने जिस 'पंजाबी-हिन्दुस्तानी' भाषा का आश्रय लिया है, उसे उन्होंने स्वयं ही 'भाखा' की संज्ञा दी है।[1]

कविवर परमानन्द का जन्म मार्तण्ड तीर्थ (मटटन) में सन १७६१ में हुआ। वे अट्ठासी वर्ष जीवित रहे। मट्टन हिन्दुओं का एक प्रसिद्ध धार्मिक तीर्थ है। गया गंगा और कुरुक्षेत्र की भांति ही इसकी महिमा अपार हैं। अमरनाथ जाने वाली सड़क पर स्थित इस महातीर्थ पर साधु-महात्मा कुछ दिन विश्राम करते हैं। स्वाभाविक है कि भारत से आने वाले इन्हीं साधु-महात्माओं के सम्पर्क में आकर उन्होंने शास्त्रार्थ द्वारा तत्त्व-ज्ञान प्राप्त किया हो। यह भी संभव है कि वे 'गुरु ग्रन्थ साहिब' के पाठ और परिचर्चा से भी प्रभावित हुए हों।[2] संभव है

1. He managed to pick up a smattering of a sort of Punjabi-Hindustani which he himself called 'BAKHA'—
परमानन्द सूक्ति-सार, भाग १, संपादक मास्टर ज़िन्दा कौल, पृष्ठ ३०
2. It must be from these discourses & from recitations from the Granth Sahab.

परमानन्द सूक्ति-सार, भाग १ संपादक मास्टर ज़िन्दा कौल, पृष्ठ ३०

यही से उन्होंने पंजाबी के शब्दों की ग्राह्यता अपने काव्य में स्वीकार की हो।

कश्मीर भारत के भक्ति-आंदोलन से अछूता न रह सका। यह प्रदेश अधिकांश सिक्ख गुरुओं की अमरवाणी का केन्द्र रहा। 'ऐसा कहा जाता है कि गुरुनानक देव ने कश्मीर की यात्रा की।[1] उत्तर भारत की इस यात्रा में गुरुनानक देव जी कश्मीर में मानसरोवर तथा कैलाश-पर्वत तक पहुचे। कश्मीर घाटी में कुछ समय रहकर उन्होंने अपने प्रेम एवं सत्य का सुसन्देश दिया। उन्होंने यहां कर्म-सौंदर्य की उपासना पर बल दिया। बाह्याचार एव विधि-विधानों की निस्सारता प्रकट करके उन्होंने जन-सामान्य धर्म की स्थापना की। इसके अनन्तर एक संग की स्थापना करके वे यहां से उत्तर की ओर अग्रसर हुए।[2]

सिक्खों के छठे गुरु श्री हरगोबिन्द सिंह जी भी यहां सन् १६४५ में पधारे थे।[3] इस तरह कश्मीर में 'गृरु ग्रन्थ साहिब' के अध्ययन, मनन एवं चिन्तन के फलस्वरूप आध्यात्मिक आभा की पवित्र धारा प्रवाहित हुई। कश्मीर में पूर्व प्रचलित शैवमत, बौद्धमत, सूफीमत, निर्गुण भक्ति एवं राम-कृष्ण धारा के साथ एकात्मकता स्थापित होकर साधनात्मक भावनाओं को प्रश्रय मिला। कृष्ण-भक्त कवि परमानन्द पर गुरुओं की अमर वाणी का जो प्रभाव पड़ा, वही उसकी 'पंजबी-हिन्दुस्तानी' भाखा के माध्यम से प्रकट हुआ है।

परमानन्द के आराध्य श्रीकृष्ण थे। उनके ये श्रीकृष्ण अलख, अरूप, अव्यक्त होते हुए भी सगुण-साकार थे। उनके लिए वे विश्व-रूप एवं विश्व-शरीरी हैं। श्रीकृष्ण के इसी मूलभूत आदर्श के साथ-साथ उन्होंने 'गुरु ग्रन्थ-साहिब' में वर्णित सत्य की महिमा, कर्म-सौन्दर्य, मानवता की प्रतिष्ठा, समाज के अभ्युत्थान एवं साधना के सहजीकरण की भावना को संपृक्त किया है। परमानन्द की चार कृतियां उपलब्ध है :- सुदामा-चरित, शिवलग्न, स्मरण तथा राधा-स्वयम्बर। इनमें से राधा-स्वयंबर' में ही पंजाबी-मिश्रित हिन्दुस्तानी के सम्यक् दर्शन होते हैं।

परमानन्द का साध्य सृष्टि के आदिकर्ता हैं। वे भावातीत हैं। वे जगतपति, अन्तर्यापी और जगविधाता हैं। वे वेदाजीत हैं। उनका कथन है—

अन्तर्यामी स्वामी देखा,
× × ×
ना वेद आखा[4] सके ना भाषा।

१. कश्मीर जी० एम० डी० सूफी, पृष्ठ ७००,

२. द्रष्टव्य-हिस्ट्री आफ पंजाब, ३१० डॉ० गण्डा सिंह, पृ० ७०

३. कशीर—जी० एम० डी० सूफी, पृष्ठ ७०१

४. आख (पंजाबी)—कह (हिन्दी) परमानन्द सूक्ति-सार भाग १, पृ० ८३

यही अगोचर पूर्ण ब्रह्म अपनी लीला दिखाने के लिए पृथ्वी पर अवतरित हुआ है :—

वृन्दावन में रास रचायो नाम पयो[1] गोपाल,
योगी हो सब भोगां[2] भोगे, योगी हो निष्काम,

श्रीकृष्ण को प्रतीकात्मक रूप में दर्शाते हुए उनका कहना है--

देह द्वारका,[3] मन है कृष्ण जी,
भोग इच्छा अठ[4] पटरानी[5]
वख वख[6] लख[7] घर बिछावै।

ऐसे अविनाशी के दर्शन के लिए प्रेम एवं ज्ञान का समन्वयात्मक स्वरूप आवश्यक है—

प्रेम प्रकाश आकाश जानन[8] का
घाहयो देखन[9] सुदर्शन का
मन का दीवा[10] बाल[11]।

जन-सामान्य धर्म की संस्थापदा करते हुए उन्होंने कहा है—

न्हावो न आपन तीर्थन तन
सनकादिक यही आखा[12] जन का
सतसंग गंग[13] अपूना न[14] करे,

सतसंग ही सच्ची साधना है। इसी से जन्म-मृत्यु से मुक्ति होती है—

१. पयो (पं०)=पड़ गया (हि०) परमानन्द सूक्ति-सार, भाग २, पृ० १७-७३
२. भोगां (पं०)=भोग (हि०) वही पृ० १४
३. द्वारका (पं०)=द्वारिका (हि०) परमानन्द सूक्ति-सार, भाग २, पृ० १४
४. आठ (पं०)=आठ (हि०) वही
५. पटरानी (पं०)=पटरानियां (हि०) वही
६. वरक वरक (पं०) पृथक्-पृथक् (हि०) वही
७. लाख (पं०)=लाख (हि०) वही
८. जानन (पं०)=जानना (हि०) परमानन्द सूक्ति-सार भाग १, पृ० ८५
९. देखन (पं०)=देखना (हि०) वही पृ० ८४
१०. दीवा (पं०)=दीपक (हि०) वही
११. बाल (पं०)=जलाना (हि०) वही
१२. आखा (पं०)=कहा (हि०) वही पृ० ८५
१३. गंग (पं०)=गंगा (हि०) वही पृ० १४
१४. अस्नान (पं०)=स्नान (हि०) वही पृ० १४

ना आवन तीर्थ न तन नावे ।[15]

'गुरु-ग्रन्थ-साहिब' में कर्म-माहात्म्य पर बल डाला गया है। कविवर परमानन्द ने कहा है—

भज गोविन्द नाम, प्यारे भज गोविन्द नाम।
बार-बार ना कर नाकर के कर
कर्मों को ना छोड़।
पैर पसारो अखियां मीटो[1]
हाथ उठा के जोड़, संतो को प्रणाम।

× × ×

अपना कर ल्यो[2] त्याग
अपने प्राणों से भी आगे
होवेंगे धन भाग[3]।

× × ×

आखूंगा[4] मैं मिहनत[5] कर पर
मज़दूरी ना मांग।

कृष्ण एवं कंस का रूपक बाँधत हुए उन्होंने कहा है कि कंस रूपी दुर्बुद्धि को कृष्ण रूपी आत्म-शुद्धि के सात्त्विक भाव से हटाया जा सकता है—

मन कंसा[6] तन मथुरा होंदा[7]
कृष्ण आत्मा, हृदय गोकुल रहंदा[8]
नारद विवेक सच सनिया[9] देंदा[10]।

ब्रह्म के केलि विलास का वर्णन करके वह दोनों के पारस्परिक संबंध पर प्रकाश डालते हुए कहता है—

---

१५. नावे (पं०)=नहाए (हि०) वही पृ० १४
१. अखियां मीटो (पं०)=आंखें बन्द करो (हि०) परमानन्द सूक्ति-सार पृ० ८२-८३
२. ल्यो (पं०)=लो (हि०) वही
३. होवेंगे धन भाग (प०)=हो जाएँगे धन्य भाग (हि०) वही
४. आखूंगा (पं०)=कहूंगा (हि०) वही पृ० ८३
५. मिहनत (पं०)=मेहनत (हि०) वही
६. कंसा (पं०)=कंस (हि०) वही
७. हौंदा (पं०)=होता है (हि०) वही
८. रहंदा (पं०)=रहता है (हि०) वही
९. सनिया (पं०)=सन्देश (हि०) वही
१०. देंदा (पं०)=देता है (हि०) वही

ब्रह्म और माया दो नहीं भासता[1] ।
स्वप्न विषे[2] वरन है कोई भासता ।
क्यों रोंदा[3] किस कारण हासता[4] ।

उनका कथन है कि माया मृगतृष्णा है । वह प्राणि-मात्र को अपनी ओर लुभांती है—

जल में छाया पाया ब्रख[5] ने ।
उस पर पंछी बैठ न सकने ।
मूरख चाहता यह घर रखने ।

ईश्वर की यह अनन्त रूपा शक्ति बाज़ीगर की बाज़ीगरी की तरह व्याप्त है—

बाज़ीगर ने बाज़ी करके
जिगर हमारा पारा[6] लूको[7]
× × ×
श्याम कलेवर श्याम कलेजा
उसनूँ कद इंसाफ आंवदा है ।[8]

यह संपूर्ण जगत् उसकी विद्या-माया का प्रतीक है किन्तु यह सांसारिक बंधन ही उसकी अविद्या-माया है । सत्य एवं प्रेम की भावना से ही उस अव्यक्त एवं अविनासी को प्राप्त किया जा सकता है—

वेद पुराणों कुछ नाहीं जानूं ।
भासता[1] है जग वासना नाहीं ।
प्रेम कड़्या[2] हम को सबसे न्यारा ।

---

१. भासता (पं०)=दिखाई देता है (हि०) परमानन्द सूक्ति-सार, भाग १, पृ० ११३
२. विषे (पं०)=विषय में (हि०) वही
३. रोंदा (पं०)=रोता है (हि०) वही
४. हासता (पं०)=हँसता है (हि०) वही
५. ब्रख (पं०)=वृक्ष (हि०) वही, पृ० १२३
६. पारा (पं०क०)=फाड़ दिया हि०) वही, पृ० १२३
७. लूको (पं०-क १०)=लोगो (हि०) वही, पृ० १२३
८. उसनू कद इंसाफ आंवदा है (पं०)=उसको कब न्याय आता है (हि०) वही, पृ० १२४

१. भासता (पं०)=प्रकट (हि०) परमानन्द सूक्ति-सार, भाग १, पृ० १२४
२. कड़्या (पं०)=निकाला (हि०) वही

कृष्ण बिना वह असारा[3] लूको।

श्री कृष्ण को ही अपना अवलम्ब मानते हुए वह अपनी दीन-हीन दशा का वर्णन इस प्रकार करता है—

परमानन्द को भी ले चल साथ।
टुर[4] न सके तुम पकड़ो हाथ।

श्री कृष्ण के साथ अपना अनन्य संबंध जोड़ते हुए वह कहता है—

तुम कृष्ण असी[5] सुदामा।
मन में प्रीति पाया।
याचक त्वोह[6] आया।

× × ×

देखूँगा अब क्या करसे[7]

अपने हृदय की व्याकुलता को प्रकट करते हुए वह कहता है—

सदके[8] बुलाओ उसे सदके सदके[9]
क्या आना तदके[10] मर जाना जदके[11]

इस प्रकार परमानन्द ने जिस भाखा का प्रयोग किया है, उससे उसकी आत्मानुभूति का प्रकटीकरण होता है—

---

३. असारा (पं०)=असार (हि०) वही
४. टुर (पं०)=चल (हि०) वही, पृ० १४२
५. असी (पं०)=हम (हि०) वही, पृ० १४५
६. त्वाड़े (पं०)=तुम्हारे (हि०) वही
७. करसे (पं०)=करोगे (हि०) वही
८. सदके (पं०)=बुलाकर (हि०) परमानन्द सूक्ति-सार, भाग २, पृ० १५
९. सदके सदके (पं०)=कुर्बान होना (हि०) वही
१०. तदके (पं०)=तब (हि०) वही
११. जदके (पं०)=जब (हि०) वही

विकल्प संस्कार

• प्रो० नील कंठ गुरुटू

'............ स्वभावे पारमेश्वरे ।
प्रविविक्षुर्विकल्पस्य कुर्यात्तसंस्कार मञ्जसा' ।। तं० ४—२

आत्मिक उन्नति के मार्ग में पदार्पण करने के इच्छुक व्यक्तियों के लिये अपनी विकल्प पूर्ण भावनाओं का परिष्कार करना परम आवश्यक होता है। भावनाओं के परिष्कार को शैव शब्दों में 'विकल्प संस्कार' कहते हैं। शैव शास्त्रियों का कथन है कि विकल्प संस्कार ही अन्य प्राणायाम, मुद्राबन्ध अथवा अन्य कष्ट साध्य यौगिक प्रक्रियाओं से उत्कृष्ट एवं उपादेय उपाय होता है क्योंकि यह अत्यन्त सरल एवं सुखोपाय होता है। बार बार विरोधी दिशा में (द्वैत प्रथा की ओर) प्रवहमारी विकल्पों की परम्परा को निर्विकल्प आत्म स्वरूप की ओर लगाने से विकल्पों का संस्कार होता है। मानसिक विषय प्रति समय सांसारिक भेद प्रथा की ओर ही दौड़ते रहते हैं क्योंकि गुणादि रूपों में प्रवहमाण स्पन्द प्रवाहों का यही अचूक स्वभाव होता है कि वे आत्मा के वास्तविक चिन्मात्र रूप पर प्रति क्षण आवरण[1] डालते रहते हैं। परन्तु स्मरण रहे कि इन विशेष स्पन्दों की ऐसी स्व-स्थिति स्थगनात्मक क्रिया शीलता के इन्द्रजाल का प्रभाव अप्रबुद्ध व्यक्तियों पर ही काम कर सकता है। अस्तु, बुरे विकल्पों के संस्कार शक्त गुण बुरे ही विकल्पों का सर्जन करते रहते हैं और परिणामत: सांसारिक विषयोप भोगों की श्रृंखलायें इस प्रकार उलझ जाती हैं कि जन्म-जन्मान्तरों तक चित्त की स्थिरता प्राप्त करना स्वप्न बन जाता है। अत: प्रबुद्ध पुरुषों को खाते, पीते, सोते, जागते अर्थात् जीवन का प्रत्येक आदान-प्रदान करते करते ही, इन्द्रियों की सरणियों से बाहरी हेय विषयों की ओर प्रवहमाण विकल्प परम्पराओं को, अलंग्रास की युक्ति से ग्रस्त करके अर्थात् सद्विमर्श के बल से हठ पूर्वक बाह्य विषयों से निवृत्त करके, हृदय अर्थात् चित्प्रकाश रूप संविद्धाम में एकाग्र बनाने का निरन्तर प्रयत्न करते रहना चाहिये ताकि असद्विकल्प उदित होकर कहीं मन पर अपना असत्संस्कार डालने न पाये[1]। संस्कृत विकल्पों के संस्कार संस्कृत विकल्पों को ही जन्म देते हैं। निरन्तर अभ्यास के द्वारा विकल्प-सस्कार की उत्तरोत्तर वृद्धि होते होते संस्कृत विकल्प की—'अस्फुट,[2]

---

१ 'अप्रबुद्धधियत्वेत्ते स्वस्थितिस्थगनोद्यता:' स्पन्द कारिका १—२०

१ 'विकल्प: संस्कृत: सूते विकल्पं स्वात्म संस्कृतम् ।
स्वतुल्य सोऽपि सोऽप्यन्यं सोऽप्यन्य सदृशात्मकम् ।।' तं० ३—३

२ 'ऋतुर्ष्वेव विकल्पेष य: संस्कार: क्रमादसौ ।
अस्फुट: स्फुटता भावी प्रस्फुटन्स्फुटितात्मक: ।।' वही ३-४

स्फुटता के उन्मुख, स्फुटायमान, और पूर्ण प्रस्फुटित', ये चार अवस्थायें बन जाती हैं। अन्तिम अवस्था पूर्ण भावनात्मक विकास की अवस्था होती है। यहां तक पहुंचते पहुंचते संसार भाव की ओर उन्मुख संवित् की सारी हेय विकल्प कलनाओं का शमन हुआ होता है और फिर उनका सस्कार मात्र भी शेष न रहने के कारण वह (संवित्) स्वय ही निर्मल पारमार्थिक विकल्प के रूप में निखर[1] उठती है। संस्कृत-विकल्पों के सस्कारों के द्वारा आगे आगे जो संस्कृत-विकल्पों की परम्परा उद्भूत होकर चलने लगती है वह तो शुद्ध विद्या के ही अंश[2] होते हैं। इसी शुद्ध विद्या रूप सद्-ज्ञान या दूसरे शब्दों में सत्तर्क[3] के द्वारा शनैः शनै असद् ज्ञान की काई हटने से, विकल्प का ऐसा रूप विकसित हो जाता है कि जो कि संसार भाव का कारण बने हुये असद्विकल्प का शसक्त प्रतिद्वन्दी[4] बनकर, उसको मलियामेट कर देता है। फिर जो शेष सद्विकल्प बचता है उसको विशुद्ध पारमार्थिक-विकल्प कहते हैं। परन्तु विकल्प के इस रूप पर पहुंच जाने से ही साधक के प्रयत्नों की इतिश्री नहीं हो सकती है। विकल्प आखिरकार विकल्प (द्वैत प्रथा) ही होता है चाहे वह असद्विकल्प हो या सद्-विकल्प। किसी भी प्रकार का विकल्प संसार-भाव का ही रूप होता है, विशुद्ध चिन्मात्र आत्मा का नहीं। अतः[5] प्रबुद्ध पुरुष को मन में विशुद्ध पारमार्थिक विकल्प का उदय होने पर भी अहंमन्यता का शिकार नहीं बनना चाहिए। उसको सद्-विमर्श के द्वारा उस शुद्ध-विकल्प का भी तब तक संस्कार करते रहने की आवश्यकता होती है जब तक विशेष स्पन्दों का प्रवाह रूप चित्त सामान्य स्पन्दात्मक अभेद भूमिका में विश्रान्त होकर निर्विकल्प संवित्-रूप ही न बन जाये।

अब रहा प्रश्न इस बात का कि इस दिशा में आगे बढ़ने की क्षमता कैसे प्राप्त की जाये ? इस विषय में भगवान आशुतोष ने स्वयं ही निर्णय दिया है कि— 'गुरु रुपायः (शि० सू २-६') यह तो केवल साक्षात् ईश्वर स्वरूप गुरु ही होता है जो कि पात्र शिष्य को यथार्थ वस्तुस्थिति से परिचित करा सकता है जिससे वह

---

१ 'ततः स्फुटतमोदार ताद्रूप्यपरि बृंहिता।
संविदभ्येति विमलामवि कल्पस्वरूपताम् ॥' वही ३-६

२ 'इत्थं विचित्रैः शुद्धविद्यांशरूपैर्विकल्पैर् ॥' तं० सा० पृ० ४

३ 'न च अत्र सत्तर्कात् शुद्धविद्याप्रकाश रूपात्।
ऋते अन्यत् योगाङ्गं साक्षादुपायः ॥' तं० सा० पृ २३

४ 'अतः प्रतिद्वन्दि रूपो विकल्प उदितः संसार-
हेतुं विकल्पं दलयति इति अभ्युदयहेतुः' तं० सा० २१

५ 'परमार्थविकल्पेऽपि नावलीयेत पण्डितः।
को हि भेदो विकल्पस्य शुभ वाप्यप्यवाशुभ ॥' तं० ४-६ में उदाहृत

इस मार्ग में अटकाओं के बिना आगे बढ़ सकता है। यद्यपि शास्त्रों में परमेश्वर के दृढ शक्तिपात की बहुधा चर्चा की गई है परन्तु इस सम्बन्ध में उन्ही शास्त्रों का यह भी कथन है कि पारमेश्वर शक्तिपात गुरु के रूप में ही प्रकट होकर ऐसे व्यक्तियों का पथप्रदर्शक बन जाता है। पारमेश्वर शक्तिपात का किस समय से समझा जावे, इस विषय में भी भगवान ने स्वयं ही इस बात का स्पष्ट उल्लेख किया है कि जिस समय किसी व्यक्ति में ऐसी योग्यता[1] उत्पन्न हो जाती है अर्थात् उसमें, स्वयं अकस्मात् इस ओर प्रवृत्त होने के कारण विकल्प-संस्कार प्रक्रिया के द्वारा मानसिक प्रबुद्धि का आरम्भ होने लगता है, उसी समय से भगवान के अनुग्रह का आरम्भ समझना चाहिए। गुरुओं के सम्पर्क से ही शास्त्रों में वर्णित बातों की गुत्थियां खुल जाती हैं; शिष्य के मन में सत्तर्क का उदय होता है और सारी शंकाओं का समाधान स्वयं ही हो जाता है। पारमेश्वर शक्ति पात के अधिकारी प्रबुद्ध व्यक्ति ही, गुरुओं की कृपा और निरन्तर विकल्प-संस्कारात्मक अभ्यास-योग के द्वारा, सुप्रबुद्ध बनकर, सामान्य स्पन्दमयी शाक्त भूमिका (तुर्य भूमिका) में प्रवेश पाने के अधिकारी बन सकते हैं। योगीश्वर भगवान कृष्ण ने भी अपने मुखारबिन्द से इसी बात की स्पष्ट उद्घोषणा की है :—

'मय्यावेश्य मनो ये मां नित्ययुक्ता उपासते ।
श्रद्धया परयोपेतास्ते मे युक्ततमा मताः ॥
अथावेशयितुं चित्तं न शक्नोषि मयि स्थिरम् ।
अभ्यास योगेन ततो मामिच्छाप्तुं धनञ्जय !' (श्रीगीता)

---

१ 'एवमस्यात्मनः काले कस्मिंश्चिद्योग्यतावशात् ।
शैवी सम्बध्यते शक्ति शान्ता मुक्ति फल प्रदा ॥' मा० वि० १-४२

शारदा लिपि—एक सामान्य परिचय

• डॉ० भूषण कुमार डेम्बी

भारत में लेखन कला की प्राचीनता

भारत में लेखन कला कब आरम्भ हुई, इस विषय में निश्चय के साथ कुछ कहा नहीं जा सकता। इतना तो निश्चिय है कि चार हज़ार वर्ष ई० पू० में भारतीय निवासी सीरिया, मिस्र आदि देशों के लोगों की तरह लेखन कला से पूर्णतया परिचित थे। सन् १९२१ में हरप्पा तथा मोहन जोदड़ो में की गई खुदाई के बीच दो हज़ार से अधिक मुद्राएँ प्रकाश में आ गईं जिन पर कुछ अक्षर लिखे गए हैं। यद्यपि इन मुद्राओं की लिखित सामग्री का अभी निश्चित मूल्यांकन नहीं हो पाया है तथापि यह सामग्री भारतीय लेखन कला की प्राचीनता सिन्धु घाटी की सभ्यता के समकालीन अर्थात् ई० पू० चार हज़ार वर्ष के लगभग सिद्ध करती है।

आश्चर्य का विषय है सिन्धु घाटी की इन मुद्राओं के बाद लगभग साढ़े तीन हज़ार वर्ष तक भारत में कोई लिखित सामग्री उपलब्ध नहीं होती। इनके बाद जो शिलालेख उपलब्ध हुए हैं वे पांचवीं तथा चौथी शताब्दी ई० पू० के हैं। इनमें अजमेर के निकट बर्ली गांव पिप्रावा के स्तूप से प्राप्त पांचवीं शताब्दी के शिला लेख और चौथी शताब्दी ई० पू० में मौर्य वंशी अशोक के शिलालेख जो काश्मीर को छोड़कर प्राय: भारत के सभी प्रान्तों में उपलब्ध हुए हैं, उल्लेखनीय हैं। इसका यह कदापि अभिप्राय नहीं कि इस सुदीर्घ काल के बीच भारतीय लोग लिखने की कला ही भूल गए। पर्याप्त प्रमाण मौजूद हैं जिन से स्पष्ट सिद्ध होता है कि लिखने का क्रम कभी टूटा नहीं, बराबर जारी रहा यद्यपि हमारे यहाँ सदा से ही मुखस्थ तथा कंठस्थ विद्या को लिखित विद्या से अधिक महत्व दिया जाता रहा है। उदाहरण के तौर पर पाणिनीय व्याकरण में लिपि, लिबि और लिपिकर शब्दों का प्रयोग किया गया है जिनमें प्रथम दो लिखाई और तीसरा लिखने वाले के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है। पाणिनि ने यवनानी लिपि का भी प्रयोग किया है जिसका अर्थ अर्थ कात्यायन और पतंजलि ने 'यवनों की लिपि' किया है। इससे यह स्पष्ट है कि पाणिनि के समय में भारत के उत्तर–पश्चिम में स्थनीय लिपियों के अतिरिक्त यवण लिपि अर्थात् Greek Alphabet का भी प्रयोग होता था। भारत का यूनान के साथ सम्पर्क सिकन्दर के आक्रमण से बहुत पहले ही स्थापित हो चुका था। वाणिज्य सम्पर्क तो था ही, साथ ही भारत का गन्धार नामी भाग जो अब उत्तरी-पश्चिमी पाकिस्तान कहलाता है, यूनान के राजा Darius और उसके

सुपुत्र Xerces के राज्य में ई० पू० छट्टी तथा पांचवीं शताब्दी में सम्मिलित था। पाणिनि के अनन्तर जैनों के प्राचीन ग्रन्थ 'साम वयांग सूत्र' में अठारह लिपियों का वर्णन है जिनमें ब्राह्मी, खरोष्ठी के अतिरिक्त यवन लिपि और द्राविण लिपि का भी उल्लेख है। बौद्धों के प्राचीन ग्रन्थ 'ललित-विस्तर' में ६४ लिपियों का उल्लेख किया गया है जिनमें इन लिपियों के अतिरिक्त कई प्रदेशीय लिपियों जैसे मगध लिपि, वंग लिपि, द्राविड़ लिपि आदि का उल्लेख है। उपर्युक्त प्रमाण कतिपय पाश्चात्य विद्वानों की इन धारणा को असंगत प्रमाणित करते हैं कि भारतीय लोग लिखना ही भूल गए और उन्होंने पश्चिमी एशिया के लोगों से फिर से लिखना सीख लिया। यहाँ यह बात भी विचारणीय है कि अशोक के शिलालेखों में जिस लिपि का प्रलोग हुआ है, वह आरम्भिक अवस्था में नहीं है अपितु पूर्ण विकसित अवस्था में है और इस बात को स्पष्ट करती है कि उसके पीछे एक सुदीर्घ युग के विकास का इतिहास है।

उपर्युक्त ३५०० वर्षों के सुदीर्घ काल में हमें क्यों कोई लिखित सामग्री उपलब्ध नहीं हुई है, इसका कारण सम्भवतः यह है कि भारतीय जलवायु ही ऐसी है कि हस्तलिखित ग्रन्थ बहुत देर तक स्थिर नहीं रह सकते। दूसरा कारण यह भी हो सकता है कि इस युग की मुद्राएँ, सिक्के या शिलालेख अब भी भूमि के अन्दर दबे पड़े हैं और सम्भवतः कभी खुदाई के अनन्तर प्रकाश में आ जाएँ।

लेखन सामग्री :

लिखने के लिए प्राचीन भारत में दो पदार्थों का विशेष प्रयोग होता था। एक भोज पत्र और दूसरा ताड़ पत्र। भोज पत्र पर लिखित प्राचीनतम उपलब्ध हस्तलिखित ग्रन्थ खरोष्ठी लिपि में लिखित बौद्धिक ग्रन्थ धम्मपद का कुछ अंश है। यह खोतान से प्राप्त हुआ है और दूसरी या तीसरी शताब्दी ईश्वी का माना जाता है। ताड़ पत्र पर लिखित प्राचीनतम उपलब्ध पुस्तक एक संस्कृत नाटक का कुछ त्रुटित अंश है जो दूसरी शताब्दी ईस्वी के आस-पास का माना जाता है। इसका प्राप्ति स्थान मध्य एशिया है।

भोज पत्र और ताड़ पत्र के साथ-साथ कागज़ का प्रयोग भी प्राचीन है क्योंकि यूनानी विद्वान Curtius जो सिकन्दर के साथ ३२७ ई० पू० भारत आए थे, लिखते हैं कि भारतीय लोग रूई को कूट-कूट कर लिखने के वास्ते कागज बनाते थे। भारत के जलवायु में कागज़ बहुत अधिक काल तक नहीं रह सकता। भारत में कागज़ पर लिखी हुई सबसे पुराना हस्तलिखित ग्रन्थ तेरहवीं शताब्दी का बतलाया जाता है, परन्तु मध्य एशिया में यारकन्द के पास गुप्त-लिपि के चार हस्तलिखित ग्रन्थों के अवशेष Weber को मिले थे जिनका समय पांचवीं शताब्दी के आस-पास है।

इस तरह हम देखते हैं कि भोज पत्र, ताड़ पत्र और कागज़ पर लिखे गए प्राचीनतम ग्रन्थ भारत से बाहर मध्य एशिया में प्रायः उपलब्ध हुए हैं जहाँ वह सम्भवतः स्तूपों और रेत के नीचे दबे रहकर सुरक्षित रहे।

ब्राह्मी लिपि

उपर्युक्त वर्ली गांव और पिप्रावा के स्तूप से प्राप्त शिलालेखों तथा मौर्य वंशी अशोक के शिलालेखों में जिस लिपि का प्रयोग हुआ है उससे 'ब्राह्मी के नाम से अभिहित किया जाता है। इस लिपि का नाम ब्राह्मी कैसे पड़ा और क्यों पड़ा, इस विषय में निश्चय के साथ कुछ कहा नहीं जा सकता। इसका सर्वप्रथम उल्लेल उपर्युक्त प्राचीन जैन और बौद्ध ग्रन्थों में हुआ है। चीनी विश्वकोष Fa-Wan-Shu-lin में कहा गया हैं कि ब्राह्मी, खरोष्ठी और चीनी लिपियो का निर्माण तीन दैवी शक्तियों द्वारा हुआ। ब्रह्म द्वारा ब्रह्मी का, खरोष्ठ द्वारा खरोष्ठी का और कात्सम द्वारा चीनी लिपि का। यह बात भी कम विस्मय-जनक नहीं कि मध्य युग में ही भारतीय लोग ब्रह्मी लिपि का ज्ञान भूल चुके थे। १३५६ ईस्वी में जब फीरोज शाह तुगलक ने तोपरा (अम्बाला) और मेरठ से अशोक के स्तम्भ उखड़वा-कर दिल्ली लाए तो उसने सब विद्वानों को स्तम्भों पर उत्कीर्ण लेख पढ़ने के लिए एकत्रित किया पर कोई भी उन्हें पढ़ने नें समर्थ नहीं हुआ। कहा जाता है कि मुगल सम्राट अकबर ने भी इन लेखों की जानकारी प्राप्त करने की इच्छा प्रकट की थी पर तब भी कोई विद्वान इन्हें पढ़ने का श्रेय प्राप्त नहीं कर सका था। सन् १७८४ में एशियाटिक सोसाइटी आफ बङ्गाल के प्रतिष्ठापन के बाद कुछ विद्वानों ने कई वर्षों तक इस लिपि को पढ़ने का प्रयास किया और अन्त में वे सफल भी हुए। इन विद्वानों में प्रमुख जेम्स प्रिंसेप हैं जिनको ब्राह्मी लिपि का सर्वप्रथम विधि-वत मूल्यांकन करने का श्रेय दिया जाता है।

ईसा की पांचवीं तथा चौथी शताब्दी के पूर्व से लेकर ईसा की चौथी शताब्दी तक शिलालेखों में जिस लिपि का प्रयोग किया गया है उसे ब्राह्मी की संज्ञा दी गई है। कालान्तर में ब्राह्मी में अत्यधिक परिवर्तन हुआ है और विभिन्न क्षेत्रों में इसका विकास विभिन्न दिशाओं में हुआ। यही कारण है चौथी शताब्दी के बाद ब्राह्मी से विकसित लिपियों का नामकरण विभिन्न क्षेत्रों के आधार पर किया गया है जैसे : उत्तर पश्चिमी ब्राह्मी, उत्तरी ब्रह्मी, पूर्वी ब्रह्मी, दक्षिणी ब्रह्मी आदि। समय-समय पर हुए परिवर्तनों के कारण ब्राह्मी की उत्तरी-पश्चिमी, उत्तरी, पूर्वी तथा दक्षिणी शैलियों से निम्नलिखित आधुनिक लिपियाँ विकसित हुईं।

१. उत्तर-पश्चिमी ब्राह्मी से शारदा, गुरुमुखी, टाकरी आदि।
२. उत्तरी से नागरी।
३. पूर्वी से बंगला, नेपाली, मैथिली और उड़िया।

४. पश्चिमी से गुजराती, मराठी आदि।

५. दक्षिणी से तेलगू, कन्नडी, ग्रन्थ, मलयालम, तमिल आदि।

शारदा लिपि का सम्बन्ध उत्तरी-पश्चिमी क्षेत्र से है। अतः इस क्षेत्र में विभिन्न युगों के शिलालेखों सिक्कों तथा हस्तलिखत ग्रन्थों में प्रयुक्त लिपियों को आधार बनाकर शारदा लिपि के विकास का अध्ययन किया जा सकता है। इस लिखित सामग्री की सूची इस प्रकार है :—

तीसरी शताब्दी ई० पू०

१. कालसी (जिला देहरादून) में चट्टान पर खुदे हुए अशोक के लेख।

२. दिल्ली–तोपरा स्तम्भ पर खुदे हुए अशोक के लेख।

३. पथयार (जिला कांगडा) में चट्टान पर खुदा हुआ संक्षिप्त शिलालेख।

दूसरी प्रथम शताब्दी ई० पूर्व

१. यूनानी राजा Agatocles तथा Pantaleon के सिक्कों पर खुदे हुए अक्षर।

२. मथुरा से प्राप्त क्षत्रप राजा शोडास के शिलालेख।

३. कान्हयारा (जिला कांगडा) में चट्टान पर खुदा हुआ शिलालेख।

४. बछल (जम्मू) की गुफाओं के भीतर दीवारों पर उत्कीर्ण लेख।

ईसा की पहली, दूसरी तथा तीसरी शताब्दी

१. मथुरा से प्राप्त कुशानवंशी राजाओं कणिस्क, हुविष्क तथा वसुदेव के शिलालेख।

चौथी तथा पांचवीं शताब्दी

१. एबटाबाद (जिला पेशावर पाकिस्तान) से प्राप्त कदम्वे-पूवरदास का शिलालेख।

२. मथुरा से प्राप्त चन्द्रगुप्त द्वितीय का गुप्त संवत् ६१ का लेख।

३. लाहौर (पाकिस्तान) से प्राप्त ताम्बे की मुद्रा पर उत्कीर्ण महाराज महेश्वरनाग का अभिलेक।

४. तोसाम (जिला हिसार हरियाणा) में चट्टान पर खुदा हुआ शिलालेख।

५. बाबर हस्तलिखित ग्रन्थ (बाबर महोदय द्वारा मध्य एशिया से प्राप्त हस्तलिखित ग्रन्थ)

छठी तथा सातवीं शताब्दी

१. कयूडा (हरियाणा) से प्राप्त हूनवंशी राजा तोरमाण का शिला लेख।

२. सोनीपत (हरियाणा) से प्राप्त हर्षवर्धन की मुद्रा पर उत्कीर्ण लेख।

३. हातुन (गिलगित) से प्राप्त राजा पटोलदेव शाही का शिलालेख।

४. गिलगित से प्राप्त बौद्धों के प्रसिद्ध हस्तलिखित ग्रन्थ।

आठवीं शताब्दी का पूर्वार्द्ध

१. भरमौर तथा छत्राडी (जिला चम्बा) हिमाचल प्रदेश में मूर्तियों पर उत्कीर्ण राजा मेरुवर्मा के लेख।

२. कार्कोजि वंशीय ललितादित्य आदि राजाओं के सिक्कों पर उत्कीर्ण अक्षर।

इस संक्षिप्त लेख में शारदा लिपि का पूर्ण विकास क्रम दिखाना सम्भव नहीं। इस पर 'नीलजा' के अगले अंक में विचार किया जाएगा। इस लेख में हम शारदा लिपि से सम्बद्ध कतिपय महत्वपूर्ण विषयों पर ही विचार करेंगे।

शारदा लिपि

आठवीं शताब्दी के उतरार्द्ध में उत्तर-पश्चिमी भारत में एक नई लिपि का विकास दृष्टिगोचर होता है जो पूर्ववर्ती उत्तर पश्चिमी ब्राह्मी लिपि से साम्य रखते हुए भी कई अक्षरों की बनावट में उससे भिन्नता दिखाती है। यह नव-विकसित लिपि शारदा लिपि के नाम से प्रसिद्ध है। भारत की आधुनिक लिपियों में शारदा का महत्वपूर्ण स्थान है। यह काश्मीर की प्रमुख लिपि रही है और काश्मीर का सम्पूर्ण संस्कृत और प्राचीन साहित्य इसी लिपि में लिखा हुआ है। काश्मीर के अतिरिक्त अविभाजित भारत के सम्पूर्ण उत्तर-पश्चिमी क्षेत्र में अर्थात् गन्धार अथवा उत्तर-पश्चिमी पाकिस्तान, लद्दाख, जम्मू, हिमाचल प्रदेश, पंजाब, हरियाणा, दिल्ली में इसका व्यवहार कई शताब्दियों तक रहा। इन सभी क्षेत्रों से पंजाब को छोड़कर शारदा के शिलालेख मिले हैं। पंजाब में गुरुमुखी लिपि जो शारदा का ही विकसित रूप है, शारदा लिपि का प्रतिनिधित्व करती है। पेशावर के अजायबघर में डा० फोगल ने शारदा का एक शिलालेख देखा था जिसके बारे में बतलाया जाता था कि वह जलालाबाद से प्राप्त हुआ था। यदि यह सत्य हो तो शारदा का प्रचार अफगानिस्तान तक विस्तृत सिद्ध होता है।

अब तक प्राप्त शारदा का सर्वप्रथम शिलालेख हुण्ड (प्राचीन उद्भांडपुर जिला अटक पाकिस्तान) से उपलब्ध हुआ एक शिलालेख है जिसकी तिथि (हर्ष) सम्वत् १६८-६९ अर्थात् ७७४-७५ ई० है। इसके आधार पर कहा जा सकता है कि शारदा लिपि का विकास आठवीं शताब्दी के मध्य में हुआ। खेद का विषय है कि शारदा लिपि के प्रमुख केन्द्र काश्मीर और चम्बा (हिमाचल प्रदेश) से इस शिलालेख का समकालीन कोई लेख उपलब्ध नहीं हुआ है। इतना तो निश्चित है कि आठवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में काश्मीर में शारदा लिपि का विकास नहीं हो पाया था क्योंकि प्रसिद्ध कारकोट शासक ललितादित्य प्रतापादित्य के सिक्कों में जिस जिस लिपि का प्रयोग हुआ है वह शारदा न होकर शारदा की पूर्ववर्ती उत्तर-पश्चिमी ब्राह्मी है जिसको कुटिल अथवा सिद्ध-मातृका लिपि की भी संज्ञा दी जाती है।

काश्मीर में शारदा का प्रयोग कुछ सीमित क्षेत्र में अब भी होता है। शिलालेखों में इस का प्रयोग अठारहवीं शताब्दी के अन्त तक रहा जिसका प्रमाण कपाल मोचन (शोपयान) से मिला शिलालेख है जिसकी तिथि विक्रम सम्वत् १८४६ अर्थात् १७८६ ई० है।

हिमाचल और पंजाब में शारदा लिपि का प्रचलन तेरहवीं शताब्दी तक रहा जिसके बाद इससे पहले देवाशेष और तनन्तर गुरुमुखी टाकरी आदि लिपियों का विकास हुआ। गन्धार अर्थात् उत्तर-पश्चिमी पाकिस्तान में शारदा लिपि का प्रयोग कब तक रहा, इस विषय में निश्चय के साथ कुछ कहा नहीं जा सकता।

शिलालेखों में पन्द्रहवीं शताब्दी तक इसका प्रयोग पेशावर अजायबघर के एक शिलालेख से प्रमाणित होता है जिसकी तिथि (लौकिक) सम्वत् ५३८ अर्थात् १४६१ ई० है।

शारदा लिपि का नामकरण:

शारदा लिपि का नाम शारदा कब और कैसे पड़ा, इस विषय में निश्चित रूप से कुछ नहीं कहा जा सकता। लिपि के अर्थ में शारदा का प्रयोग प्राचीन संस्कृत साहित्य में नहीं मिलता। शारदा काश्मीर की प्रमुख देवी रही है। और उसी के नाम पर काश्मीर को शारदा मंडल, शारदापीठ की संज्ञा दी जाती रही है। शारदा मंडल में प्रधान रूप से व्यवहार में लायी जाने वाली लिपि का भी इसी देवी के नाम पर शारदा लिपि पड़ा, ऐसा जान पड़ता है।

शारदा लिपि का यह नाम अधिक प्राचीन नहीं है। ग्यारहवीं शताब्दी में भी यह नाम अभी व्यवहार में नहीं आने लगा था। सुप्रसिद्ध अरबी विद्वान अलबरूनी के कथनानुसार उनके समय में काश्मीर में जिस लिपि का प्रयोग होता था वह सिद्ध-मातृका लिपि कहलाती थी। अलबरूनी ने अपनी पुस्तक तहकीक-इ-हिन्दी में काश्मीर का अतीव विस्तृत एवम् यथार्थ विवरण दिया है और यह बात ध्यान देने योग्य है कि अलबरूनी जैसे विद्वान् कदापि इस नाम का उल्लेख करने से नहीं चूकते यदि यह उनके समय में व्यवहार में आया हुआ होता है। कलहण तथा उसके परवर्ती काश्मीरी संस्कृत इतिहासकारों ने कहीं पर भी शारदा का प्रयोग लिपि के अर्थ में नहीं किया है।

गुरुमुखी लिपि के अक्षरों की तरह शारदा लिपि के प्रत्येक अक्षर को काश्मीर में अपना निजी नाम दिया गया है जैसे, आदौ अ! इव इ; ईश्वर ई; उपल उ; ऊर्णा ऊ; खन ख; फेम फ; तेव त; आदि। स्पष्ट है यह नाम संस्कृत शब्दों के आदि अक्षरों के आधार पर दिए गए हैं। शारदा के अक्षरों के यह नाम भी अधिक प्राचीन नहीं और इन का व्यवहार काश्मीर तक ही सीमित है।

शारदा के शिला लेख :

शारदा लिपि के जो शिला लेख अब तक प्रकाश में आये हैं उनका संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है :—

उत्तर–पश्चिम पाकिस्तान में अभी तक शारदा के १० शिला लेख मिले हैं जिनमें अभी तक केवल ५ ही प्रकाशित हुए हैं और शेष लाहौर तथा पेशावर के अजायब घरों में पड़े हैं। प्रकाशित शिला लेखों में दो हिन्दूशाही वंशीय राजा भीपदेव और उसके सुपुत्र जयपाल देव के हैं।

कश्मीर में शारदा लिपि के दर्शन सर्वप्रथम नवीं शताब्दी के उत्पलवंशीय राजाओं के सिक्कों में होते हैं। इसके अनन्तर दिद्दारानी के राजत्व काल के दो शिला लेख मिले हैं जिनकी तिथि (लौकिक) सम्वत् ६५ तथा ६८ अर्थात् ९८९ तथा ९९४ ई० है। इनमें से एक श्रीनगर के अजायब घर में सुरक्षित बोधिसत्व पद्मपाणि की कांसे की एक मूर्ति पर खुदा हुआ है और दूसरा लाहौर के अजायबघर में सुरक्षित है। काश्मीर के अन्य महत्वपूर्ण शिला लेख आरिगाम (वड़गाम तहसील), कोटिहेर (जिला) अनन्तनाग भुवनेश्वरी (खोनमुह) तथा हारिपर्वत से प्राप्त हुए हैं।

काश्मीर से उपलब्ध शारदा शिला लेखों की कुल संख्या ३४ हैं जिनमें ऊपरलिखित शिलालेखों को छोड़कर शेष सभी टूटी-फूटी अवस्था में हैं। यह शिलालेख ऊपर लिखित स्थानों को छोड़कर श्रीनगर, अवन्तीपुर, बिजबिहारा, मारतंड, कपालमोचन, लोदन, वुलरहामा, परेवुर, लसिटयाल, सोगाम, तापर, उष्कुर, कोटिसर आदि स्थानों से प्राप्त हुए हैं। काश्मीर के शारदा शिलालेखों का महत्व इस बात में है कि इनमें कभी-कभी हमें कुछ ऐसे ऐतिहासिक तथा सांस्कृतिक तथ्य मिलते हैं जो राजतरंगिणी आदि ऐतिहासिक ग्रन्थों में नहीं मिलते। इनमें प्रायः विभिन्न राजाओं के नाम और उनके शासन काल के सम्वत् भी दिए गए हैं जिनसे कल्हण द्वारा दी गई Chranology की पड़ताल करने में सहायता मिलती है।

मध्य युग में काश्मीर में फारसी तथा शारदा दोनों लिपियों का प्रयोग समान रूप से होता था और मुसलमान भी इस लिपि का प्रयोग करते थे। मुसलमानों के कुछ प्राचीन क़ब्रों के Epitaph दोनों लिपियों (शारदा एवं फारसी) में लिखे हुए हैं, बल्कि कुछ क़ब्रों के Epitaph केवल शारदा में ही लिखे हुए हैं। काश्मीर के प्रसिद्ध मुसलमान सन्त मखदूम साहिब का वसीयतनामा दोनों फारसी तथा शारदा लिपियों में लिखा गया है। हारिपर्वत के महत्वपूर्ण शिला लेख भी फारसी और शारदा दोनों लिपियों का प्रयोग हुआ है। इस शिलालेख में सुलतान मुहम्मदशाह के समय सय्यदों और काश्मीरियों के बीच १४८४ ई० में हुई लड़ाई का उल्लेख है जिसमें सय्यद खान जो सय्यदों की ओर से लड़ रहे थे, वीरगति

को प्राप्त हुए। यह शिलालेख उन्ही की क़ब्र का Epitaph है। यद्यपि कल्हण ने अपनी राजतरंगिणी में लिखा है कि उन्होंने काश्मीर का प्राचीन इतिहास लिखने के लिए सभी प्रकार के शिलालेखों का उपयोग किया। पर अभी तक कोई भी ताम्बे पर उत्कीर्ण दानपत्र उपलब्ध नहीं हुआ है।

जम्मू में अभी तक छः शिलालेख मिले हैं जिनमें पाँच तो दछन, वडवन, भद्रवाह और किश्तवाड़ में है और एक बबोर के प्राचीन मन्दिर में। इनमें से अधिकांश के अक्षर तो अब कुछ एक को छोड़कर मिट चुके हैं। दछन के शिलालेख में उत्पलनरेश अनन्तवर्मा का उल्लेख है।

लद्दाख में केवल पाँच शिलालेख मिले हैं जो सभी बौद्ध धर्म सम्बन्धी है। पर अब अतीव जीर्ण अवस्था में हैं।

चम्बा में अब तक प्राप्त शारदा के शिलालेखों की कुल सख्या ३६ है। यह सभी प्रायः सुरक्षित अवस्था में हैं और अधिकांश काश्मीर के शिलालेखों की तरह संक्षिप्त न होकर विस्तृत हैं और कई शिलालेखों में उत्कृष्ट काव्य के दर्शन होते हैं। इनमें पांच दानपत्र भी सम्मिलित हैं। इतिहास के लिए दानपत्र विशेष महत्व रखते हैं क्योंकि इनमें भूमि का दान करने वाले राजाओं के जीवन की कतिपय ऐतिहासिक घटनाओं का उल्लेख किया जाता है। चम्बा के शिलालेखों से वहाँ के इतिहास और संस्कृति पर पर्याप्त प्रकाश पढ़ता है।

कांगड़ा में शारदा के तीन शिलालेख मिले हैं इनमें दो बैजनाथ के मन्दिर में और एक कांगड़े के मन्दिर में सुरक्षित हैं। बैजनाथ के लेख विवरणात्मक है इनमें बैजनाथ के मन्दिर के निर्माण का विस्तृत वर्णन है और यहां के स्थानीय राजाओं का इतिहास भी दिया गया है। बैजनाथ के शिलालेखों की तिथि शक सम्वत् ११२६ अर्थात् १२०४ ई० है। मन्दिर भी इसी समय का है यद्यपि हिमाचल पर्यटन विभाग के गाइडों में इसे हज़ार वर्ष पूर्व पाण्डवों के समय का बताया गया है।

दिल्ली के पास पालम में ग्यासुद्दीन बलबन के समय का एक शिलालेख मिला है जिसका अन्तिम भाग शारदा में है और शेष नागरी में इसमें एक व्यक्ति उद्धर द्वारा कुआँ खुदवाए जाने का वर्णन है। इसकी तिथि विक्रमी १३३७ अर्थात् १२८०-८१ ई० है। इस लेख से पता चलता है कि तेरहवीं शताब्दी में दिल्ली के आस पास दोनों नागरी और शारदा लिपियों का प्रयोग होता था।

शारदा लिपि में लिखित अब तक प्राप्त प्राचीनतम हस्तलिखित ग्रंथ Bakshal Manuscript है जो ज़िला पेशावर में वख्शाली नामक गांव के पास मिला है। यह ग्रंथ अशुद्ध संस्कृत में लिखा गया गणित का एक महत्वपूर्ण ग्रंथ है। इसमें कोई तिथि नहीं दी गई है पर लिपि के आधार पर इसे बारहवीं शताब्दी का माना जा सकता है। शारदा के अन्य प्राचीन हस्तलिखित ग्रन्थों का विवरण अगले लेख में दिया जाएगा।

कश्मीर इतिवृत्त— पिशाच कौन थे ?

• श्री मोतीलाल आडू
शास्त्री 'पुष्कर'

कश्मीर की भौगोलिक-स्थिति अनेकानेक सांस्कृतिक समुदायों के मध्य में है। चीन की सांस्कृतिक परम्परा, तिब्बत की धर्म परम्परा, मध्य एशिया क्षेत्र की संस्कृति, ईरान तथा अरब की संस्कृति के अतिरिक्त महान् भारतीय संस्कृति की विद्यमानता इस भौगोलिक पर्यावरण में समिलित हैं।

आद्यकाल से चला आया सांस्कृतिक प्रसार अब भी अक्षुण्ण ही है। जन-श्रुतियों तथा प्राचीन कश्मीर-विषयक-इतिहास ग्रन्थों से उपलब्ध होता है कि पिशाच भी इस भूभाग को आवास क्षेत्र बनाना चाहते थे। इनको कश्मीर में भारतीय आर्य्यों ने आगे बढ़ने से रोका तथा स्वसंस्कृति की छत्रछाया में पलने एवं सुसभ्य होने का अवसर प्रदान किया। भारतीयों ने इन्हें अपने मापदंड से तोलकर इन्हें अशुद्ध अथवा काफी मलिन रहने वाले पाकर पिशाच नाम दिया। दारुण दैत्य-सहायक, हिंसक इन शब्दों से आमन्त्रित किया। मांसाहार के कारण भी ये पिशाच कहलाये।

स्थायी बस्तियां बनाने से पूर्व इने गिने कुछ ही आर्य जन यहां वहां बसने लगे थे। इनको जलोद्भव जैसी विपत्तियों के कारण यहां से भागने पर मजबूर किया गया था। यह प्रक्रिया पिशाचों के कश्मीरागमन के कुछ पूर्व ही प्रारंभ हुई थी। कालान्तर में दोनों यहां बसने की फिकर में लगे थे।

इस आर्य्यवर्ग को नीलमत पुराण के रचनाकार ने मद्र शब्द से संवोधित किया है। इसका संबन्ध कृषि संबन्धी समृद्धि से है याने धन धान्यपूर्ण देश के निवासी। यह देश कश्यप-सागर के दक्षिणीय तट पर पश्चिम की ओर विद्यमान था। ऐतरेय ब्राह्मण में इसे उत्तरकुरु के नाम से अभिहित किया गया है। पुराणों के मतानुसार यह देश रावी और वितस्ता नदी के मध्य में था। अतः स्पष्ट है कि सप्तसिन्धु के लोग ही पहले पहल कश्मीर पधारे थे। सिन्धुनदी तथा गंगानदी के मध्यवर्ती भूभाग में आर्यों के विस्तार के साथ २ उपनिषदों तथा नवीन चिन्तना के अग्रदूत मुनियों की विचारधारा ने विस्तारवादी आर्य्यों को शान्त, सहिष्णु एवं गंभीर व धीर बना दिया था। यह प्रवेश पीर पांचाल (वीर पांचाल) को पार करके हुआ है। यहां से लगातार पांचाल वीरों के आने जाने का क्रम जारी था। परन्तु पिशाचों का प्रवेश कश्मीर की उत्तरीय सीमा से संभव हुआ है। इन पिशाचों के मूलदेश को "वालुकार्णव" याने रेत का सागर नाम दिया गया था। इनके

संपर्क में आर्य आये। आर्यों के अपने गुप्तचर विभाग द्वारा, युद्ध में पिशाचों के पकड़े लोगों के द्वारा, सांस्कृतिक दूतों के द्वारा प्रत्यक्ष या परोक्षरूप में सपर्क प्राप्त हुआ।

'पिशाच' नाम प्रदान करने का हेतु अनार्य व्यवहार व मांसभक्षण ही है। अनार्य शब्द प्रयोग करने का अर्थ यहां सिन्धु आर्यों की दृष्टि में मलिनता के व्यवहार एव सफाई की कमी का पिशाचों में होना ही है। दूसरे अपरिचित जनसमुदाय से ऐसा व्यवहार स्वाभाविक है। आर्य उष्णप्रदेश के निवासी थे अतः दैनिक स्नान, धुले वस्त्रों का प्रयोग, लिपाई-पुताई को वे महत्त्व देते थे। इधर पिशाच वर्ग के लोग शीत प्राय देशवासी थे अतः मलिन रहना, स्नान न करना, उनके लिए आम बात थी। मांस-भक्षण की बात को महत्व देने की आवश्यकता नहीं। आर्य भी तो मांसभोजी थे ही। आदिम मनुष्य का जीवन निर्वाह शिकार पर ही होता था। मांस-निषेध तो सभ्यता की उन्नति के साथ २ सर्वप्राणिरक्षा, जीवदया व अहिंसा पर जोर देने के काल में ही प्रचलित हुआ मलिनतावाली बात तो आज भी लद्दाख जैसे दूरस्थ क्षेत्रों में पाई जाती है। वहां जनवर्गीकरण दुर्गन्ध और सुगन्ध पर आज भी आधारित है। यहां तक कि शादी व्याह के सम्बन्ध भी इस दुर्गन्ध और सुगन्ध के आधार पर तय किये जाते हैं। कश्मीर से गये लोगों की दुर्गन्ध का नाम 'मीबरी' तिब्बत से प्रविष्ट लोगों की दुर्गन्ध के लिये 'चडरी' तथा दर्द देश से आये लोगों के लिये 'बललरी' नाम तय किये गये हैं। इसी प्रकार आर्य्यों ने इन अन्य लोगों के लिये 'पिशाच' मलिन आदि अर्थवाची शब्द का प्रयोग किया है। वास्तव में आर्यों को इन लोगों के बारे में विशेष ज्ञान तो था नहीं। ये लोग भी जाति (Race) की दृष्टि से आर्यवर्ग के साथ ही संबन्धित थे। इनका सबन्ध मध्य एशिया से हिन्दुकुश को लांघकर सप्त सिन्धु क्षेत्र में जमी हुई आर्य टोली से नहीं था। इनका संबन्ध उस आर्य्य श्रेणी से था जो पृथक रूप से आगे बढ़ती हुई मैदानो इलाके में न प्रवेश कर सीधे कश्मीर की उत्तरीय सीमा के अन्तिम छोर में स्थिति पहाड़ी घाटियों में बसने लगी। इसी अन्तिम छोर के साथ कश्मीर भूमि तिब्बत, अफ-निस्तान, रूस, के एशियाई क्षेत्र, ईरान आदि क्षेत्रों के साथ लगी है।

शीतप्राय इलाके के कारण, भौगोलिक प्रभाव के हेतु उनके रहन सहन में, भाषा में, दार्शनिक-चिन्तन में सैकड़ों वर्षों के बीत जाने पर उपरोक्त भद्र आर्यों से काफी भिन्नता प्रकट होने लगी थी।

कालन्तर में याने एक सहस्राब्दी के लगभग कालखंड में ये दोनों वर्ग फिर एक-दूसरे से मिल गये। किन्तु दोनों एक दूसरे के लिये अजनबी थे। दोनों की भाषा यद्यपि मूलस्थान से बिखरने से पूर्व एक ही थी किन्तु अब उसमें अन्तर आ गया था, इस अन्तर का कारण भौगोलिक प्रभाव था, पिशाच का क्षेत्र रेगिस्तानी,

पहाड़ी, अत्यन्तसर्द था तो आर्य्यों की भूमि अब मैदानी, सस्य श्यामला, उष्ण प्राय थी ।

कश्मीर घाटी के उत्तर में कराकुरम पर्वत श्रृंखला के उस पार दक्षिण में विद्यमान गोभी मरुस्थल के इस पार उत्तर पश्चिम की पहाड़ी घाटियों में रहने वाले इन लोगो की घुमन्तू प्रवृति ने तथा आजीविका के साधन पशुपालन के लिये घासने पिशाचों का पर्वत श्रृंखलाओं की गोदियों में स्थित घाटियों को क्रमश: (आबादी बढ़ने के साथ) पार करके कश्मीर पहुँचाया। यहाँ की अन्य-संपदा, श्यामला भूमि, पक्षी, पशु, फल, फूल सभी ने अपनी सुन्दरता से मोहकता से, मादकता से समृद्धि से आकृष्ट किया।

वर्तमान पैशाची बोली के क्षेत्र गुरेस, तिलेल से स्पष्ट है कि कालान्तर में पिशाच कश्मीर के काफी बड़े भू भाग पर जम गये थे, उनका प्रसार क्षेत्र सारी उत्तरीय कश्मीर की सीमा भूमि बन गया था, इन पिशाचों ने ही समरकंद, ताशकंद कराकुरम के उस पार दक्षिण क्षेत्र अधिकारी में किथे तथा इस पार कश्मीर, अस्कर्दू, करगिल, जसकार तिलेल, गुरेस में जम गये। इस सारे क्षेत्र को ही करा-कुरम के दोनों तरफ स्थित होने के कारण वानु कार्णव पड़ा।

आजकल अपने आदिम रूप तथा सभ्यता संस्कृति को धारण लिये हुए ये पिशाच करगिल (लद्दाख) के दाहनू क्षेत्र के गाँव में रह रहे हैं। इनकी भाषा, पहरावा, पशुपालन, घुमक्कड वृत्ति सब तो आर्यलक्षणोयेत है किन्तु अपनी विशेषता से आर्य्येत्तर ही कहे जा सकता है। इनको लद्दाखी भाषा में 'डोकपा' कहते हैं। डोकपा का सम्बन्ध पशुपालन से है। ये भेड बकरियाँ पालते हैं। गाय का सम्मान करते हैं। गौ रक्षक हैं। इनके साथ मिल बैठ कर पता चलता है कि ये सचमुच किसी विशाल परिवार के अंग हैं।

पिशाचों को दैत्य सहायक भी कहा गया है। यह एक ऐतिहासिक घटना है। इनकी आर्य शाखा का सबन्ध ईरानी-आर्यों से काफी रहा है। इसका सविस्तार उल्लेख आगे किया जा रहा है।

वास्तव में एक ही आर्य जाति स्थान विशेष के प्रभावों से अनेक नामों तथा गुणों को धारण करने लगी। जहां तक सांस्कृतिक श्रेष्ठता तथा गौरव का संबन्ध है पिशाच अभी उस उत्थान तक नहीं पहुँचे थे जो आर्यों ने प्राप्त किया था। वे हिंसा, लूटपाट की वृत्ति को भी छोड़ नहीं चुके थे। इस वृत्ति के कारण भी आर्यों की दृष्टि में पिशाच थे।

इन दोनों समुदायों का लड़ना भिड़ना काफी अवधि तक जारी रहा। इसी

लड़ने की प्रक्रिया में भी समझने की प्रक्रिया भी जारी रही। इसमें भाषा, उत्सव, पहरावा, नृत्य, गीत आदि का आदान-प्रदान प्रारंभ हुआ।

पिशाचों के अधिपति का नाम निकुम था। उसे कुबेर ने नियुक्त किया था। निःकुंम भी प्रदत्त नाम ही है। निकुंम का अर्थ है कुत्सित वृत्ति से उदर पूर्ण करने वाला। उनके जीवन निर्वाह के साधन आर्य्यों की दृष्टि में असभ्य समुदाय के साधन थे। कुबेर द्वारा नियुक्ति से अभिप्राय पिशाचों के उत्तर दिशा से कश्मीर प्रवेश से है। कुबेर संस्कृत साहित्य में उत्तर दिशा का स्वामी माना गया है। उसके अनुयायी यक्ष कहलाते हैं। अतः पिशाचों को यक्ष भी कहा जाने लगा। आर्य्यों ने पिशाचों की आने व वापिस जाने की दिशा को ध्यान में रखकर कुबेर की नियुक्ति की कल्पना की। पिशाच चैत्र के महीने में गर्मी का मौसम आरम्भ होने पर कश्मीर से वापिस लौटते थे। ग्रीष्म अवधि में आर्य्यों से टक्कर होती थी। वे पिशाच इन युद्धों में मरते थे, मारते भी थे। प्रतिस्पर्धा में दोनों ही डटे हुए थे। तीसरा तथा आदिम पक्ष नागों का था जो पिशाचों के साथ रहना नहीं चाहते थे। वे भी उनसे व्याकुल थे। नागों ने समझौता करके मनुष्यों के साथ रहना स्वीकार किया। मनुष्यों से अभिप्राय भावना और व्यवहार से है। आर्य्य निष्कारण किसी के साथ संग्राम करना नहीं चाहते थे। वे निःसन्देह पिशाचों से सभ्यता की दृष्टि से आगे थे। वे मानव मूल्यों को व्यक्तिगत तथा जागितमर्यादा को नष्ट करना नहीं चाहते थे। इसीलिये नागों ने उनके साथ रहना पसन्द किया। नाग यहां के मूल निवासी थे। पिशाच कश्मीर आकर निर्बल होते थे। इस निर्बलता का कारण भौगोलिकता थी। वे छिपकर लड़ने के अभ्यासी थे। योजनाबद्ध तरीके से कश्मीर को अधीन करने की योग्यता उनमें नहीं थी। उनकी संख्या भी कम ही थी। इसके विपरीत आर्य मैदानों में लड़ने में दक्ष, सुदृढ़ नेतृत्व के अधीन योजनाबद्ध ढंग से प्रविष्ट होकर काफी गणना में मैदान--जग में डट जाते थे। उनके लिये सहायता प्राप्त करना आसान था। नाग उनके सहायक थे। यहां की स्थिति का ज्ञान भी था।

अलवीर्या पिशाचाश्य भविष्यन्तीह सर्वदा।
वीर्योपेता गमिष्यन्ति षण्मासान् वालुकार्णवान् ॥ नी० पृ० २५३

कई शताब्दियों के पश्चात् दोनों का संपर्क बढ़ गया। दोनों एक दूसरे को निकट से देखने, समझने व मिलने जुलने के कारण मैत्री व निकटता का व्यवहार करने लगे थे। यह संपर्क दैनिकक्रम जैसा बनने लगा। इसमें पिशाचों की अब तक अनार्य समझी जाने वाली बातें आर्य्यों ने स्वीकार की।

पिशाचैः सह संपर्कः यदा तत्र नित्यं नृणाम्।
तदा तेषां मतिः पापात् सततं नापसर्पति ॥

इस संपर्क प्रक्रिया में दोनों सहयोगी थे। आर्य्य भी पहरावा, पशु व अन्य

सामग्री छोड़कर भाग जाते थे। वे इस उखड़ जाने से तंग थे। अब पिशाच भी यहां के वातावरण से परिचित तथा आर्य विरोध के कम अथवा शून्य हो जाने से संतुष्ट थे। वे भी अब यहां रहना चाहते थे। कश्मीर-स्थित भारतीय आर्यों के साथ संपर्क तो था ही किन्तु वे अब अन्य क्षेत्रों में भी जाते थे किन्तु उनके साथ सम्मान व समानता का व्यवहार अभी पूरी तरह नहीं होता था।

पिशाचों का अधिपति पिशाचों को मारता था। तथा नियन्त्रण में रखता था। पिशाच अपने अधिपति के साथ सदा आश्वन् की शुक्ल-पूर्णिमा को कश्मीर आता था। पुनः फाल्गुन की त्रयोदशी बलशाली निकुंभ अपने अनुयायियों सहित भगवान् शंकर की आराधना करता था। उस रात्रिपूजा के अवसर पर पिशाचों तथा उनके अधिपति को सन्तुष्ट करने के लिये भी बलि दी जाती थी। इस शंकर पूजन के विषय में यह कहना उपयुक्त है कि काफी प्राचीन समय से इस उपरि-निर्दिष्ट पिशाच क्षेत्र के बारे में एक मात्र प्रो० (व्याख्याता) रूस के Sh. Kuz-netski 'कुजनेस्की' के विचार ही प्राप्त होते में। उसके कथानुसार ईरान के जरथस्त्रुमत के अनुयायी काफी बड़ी संख्या में मध्य एशिया के समरकन्द तथा ताशकन्द क्षेत्रों में आकर बस गये थे। उनकी धार्मिक विचारधारा तथा परम्परा का प्रभाव तत्कालीन तिब्बत तथा मंगोलिया के वासियों तक पर पड़ा। उस जमाने में ईरान से तिब्बत जाने के लिये मार्ग गोभी मरुस्थल से होकर जाता था।

इन ईरानियों के धर्म का प्रचलन इस क्षेत्र याने गोभी मरुस्थल के दक्षिण पश्चिम तथा गोभी के उत्तर पूर्व में हुआ। इस धर्म के विषय में तिब्बत के धर्म-शास्त्रों व इतिहास ग्रन्थों से ज्ञात होता है कि इस धर्म का नाम 'बोन' था। बोन पुण्य का बिगडा रूप है। संस्कृत भाषा में स्वस्तिका चिन्ह पुण्य कहते हैं। स्वस्तिका चिन्ह इस धर्म में अत्यधिक प्रचलित है। इस धर्म के मानने वाले 'शिव' के पूजक थे, इस मत की पुष्टि Rock Hill अपनी पुस्तक "The Life of Buddha" में करते हैं।

"Dharma Publication California" America की पत्रिका "Crystal Mirror" के अनुमार मैथिव 'Mathew' याने ईरानी जरथस्त्रु लोगों का तथा गोभी मरुस्थल के उत्तर पूर्व तथा दक्षिण पश्चिम में स्थित मंगो-लिया व तिब्बत का व्यापार एवं सांस्कृतिक आदान-प्रदान का प्रमुख क्षेत्र एवं रणक्षेत्र समरकन्द रहा है। समरकन्द तो समरखंड ही है। समरखंड का अर्थ है लड़ाई का मैदान। इन दोनों ईरान आर्य व मंगोलों की संग्राम व संपर्क की कहानी यहीं घटी है।

इस बोन धर्म के अनुयायी भूत प्रेतों की शक्ति पर विश्वास करते थे। शक्ति का उपयोग बीमारी दूर करने, पशुओं की रक्षा, दैवी आपदाओं से मुक्ति,

सुख सम्पदा की प्राप्ति के लिये करते थे। इस बात का ज्ञान तिब्बत के महान् योगी प्रातः स्मरणीय श्री मिलारिया की जीवनगाथा से मालूम पड़ता है।

विद्वानों का विचार है कि हर स्थान की आदिम सभ्यता उषाकाल में मनुष्य की बुद्धि दैवी शक्ति की अतिमानवीयता को देखकर उसकी आराधना करने लगता है। उनके प्रतीक रूप पदार्थों को पूजने लगता है। इसमें मुर्दों भूतों-प्रेतों वृक्षों नदी नालों का समावेश है। इसके अतिरिक्त लिंगपूजा भी समिलत हैं।

हमें ऐसी आदिमकाल की उपासना-पद्धतियों का परिचय मैक्सिको में मायावी सभ्यता के रूप में प्राप्त होती है। इसी प्रकार कई एक क्षेत्रीय सभ्यताओं और उपासनाओ के दर्शन हमें विश्व में कई स्थानों पर प्राप्त होते हैं। पिशाचों की रात्रिपूजा तथा बलि प्रदान विधि भी इन्हीं में गिनी जा सकती है।

कई तिब्बत विशेषज्ञों का विचार है कि कश्मीरी शैवमत का भी अपरिष्कृत स्वरूप बोन धर्म में प्रतिबिम्बित है। इसके लिये जिज्ञासुओं के सतत परिश्रम की महती आवश्यकता है।

युगों के बीत जाने पर पिशाचों को सारे आर्य-परिवारों में श्रेष्ठ, सभ्य, आर्य्य तुल्य व आदरणीय समझकर अवशिष्ट भिन्नतायें भुलाकर समिलित किया गया। उनके साथ विवाह आदि संबन्ध होने लगे। वास्तव में वे भाषा आकार से उनसे पृथक् थे नहीं। भाषा की दृष्टि से अलग होते तो उनको "म्लेच्छ" शब्द से पुकारा जाता। कद व अन्य शारीरिक विलक्षणताओं (कमी ज्यादती) के कारण वामन या वानर सहायक कहा जाता। वे बातें थीं नहीं। यूनानवासियों को भारतीय भाषाओं विशेषकर संस्कृत उच्चारण की अशुद्धता व अस्पष्टता के लिये ही म्लेच्छ की संज्ञा दी गई। अब पिशाचों ने पशुओं की खाल ओढ़ना, स्नान न करना, यम-नियम की कमी सामाजिक संहिता की कमी को तिलांजलि दी थी। आज भी कश्मीरी फिरन का अन्दरूनी हलका सूती फिरन याने पोछ 'पोस्त' तो पशु खाल का ही पर्यायवाची है इसका सीधा सम्बन्ध पिशाचों से है। आर्यों से हो नहीं सकता क्योंकि वे गर्म देश से आये थे। उनका लिबास सूती या यहां पहुँचकर ऊनी रहा होगा। आजकल भी बालुकार्णव तथा उससे दूर-उत्तर तथा दूर पूर्व में पोस्त का प्रयोग वस्त्र के बदले होता है। यह केवल वहां के मौसम के लिये आवश्यक है।

अब प्रत्येक परिवार में पिशाच की मृत्तिका मूर्त्ति की पूजा करके उसको पुष्प इत्र, वस्त्र, अलंकार आहार, रोटियां, मांस, मदिरा, आयुध, छत्र, उपानह तथा दंड के अतिरिक्त सूखेफल समर्पण करके सम्मान दिया जाने लगा।

वास्तविक पिशाच अब मर गया था, वह अपना पृथक् अस्तित्व खो चुका था. वह अब अतीत की स्मृति मात्र रह गया था, अब उसकी पूजा करके केवल मात्र अतीत की घटना को ताजा रखने के लिये तथा सांस्कृतिक एकता को परिपुष्ट करते

के लिये ही अब उत्सव रचाये जाने लगे। पूजा होने लगी, इस वस्तु सूची में पिशाच प्रिय मदिरा, मांस, आयुध थे ही किन्तु आर्य जिस मलिनता के कारण उसे पिशाच कहते थे उसको दूर करके सभ्य रूप मोहकरूप की सामग्री याने इत्र (दुर्गन्ध शत्रु) जूता, वस्त्र, अलंकार (सभ्य समाज की साज सज्जा के सामान) सूखे फल (मूल स्थान संबधी फल) भी सम्मिलित किये गये, पुष्प तो वे धारण करते ही थे, आज भी इस परम्परा को धारण करने वाले अमुस्लिम पिशाच पुष्पों के गुच्छे सिर पर धारण करते हैं, इसका कारण घाटियों में से गुजर-गुजर कर उत्पन्न पुष्प मोह ही है।

आगे चलकर सांस्कृतिक ऐक्य के युग में कश्मीर के प्रसिद्ध स्थलों का नामकरण भी पिशाचों के नामों पर किया गया, इन में निकुंभ नाग, समर प्रिय, विकुंभ आदि उल्लेखनीय है।

क्षीरकुंभी, निकुंभश्च, विकुंभः समर प्रियः नी०पु० ९७० श्लो०

निकुंभ के साथ विकुंभ और समरप्रिय के जोड़ने से सिद्ध है कि निकुंभ समर प्रिय पिशाच अधिपति के नाम ही पर रखा नाग नाम है।

मनीषि-मानस-प्रसूता भारतीय संस्कृति की महानता यही है कि उसने शत्रु को भी मित्रवत् व्यवहार करके अपना बनाया। दैत्य में देवत्व की प्रतिष्ठा की, धर्म तथा चरित्र को महत्व दिया, घृणा को अन्ततोगत्वा उच्छेद करके अपनात्व की प्रतीष्ठा की, गीत, नृत्य, वाद्य के कार्यक्रमों में पिशाचों को सम्मिलित किया, आयुधों को पिशाच देव के चरनों में अर्पित करके उन्होंने आदिम मानवीय परम्परा के असभ्यताकाल को भी सम्भाव प्रदान किया, पिशाच जाति युद्ध प्रिय तथा शस्त्र-सिद्ध थी, इनका युद्ध प्रिय होना तो इनके आद्यकाल से चली आई ऐतिहासिक घटनाओं से शतप्रति शत सिद्ध है। इनका दैत्व याने ईरानी सभ्यता के प्रभाव क्षेत्र में अपना भी इतिहास सिद्ध है। अब कश्मीरी समाज के पंडितों ने राजाभिषेक के समय पिशाचों की पूजा का भी विधान निश्चित किया। उस पूजा विधान के साथ लोगों को बसाने की बात का स्पष्ट उल्लेख है। इसका सम्बन्ध पिशाचों को बसाने की प्रक्रिया से है। राजव्यवस्था होने के बाद एक राजनीतिक व्यवस्था के पश्चात् सभी वर्गों के हित की चिन्तना होने लगी। तब तक जितने भी पिशाच व आर्य सिन्धु आर्य-पिशाचार्य परिवार में सम्मिलित हो गये थे उनकी कोई समस्या नहीं थी। जो अभी तक उजडे थे उनकी व्यवस्था का प्रबन्ध अब होने लगा था। इसमें देशानुसार Tradition की महत्वपूर्ण बात भी दर्ज है, जिसका सम्बन्ध स्थानीय वातावरण अथवा नाग-आर्य-पिशाच परिवार में एक रूपता लाने से ही है। सभी के लिये परम्परा का अनुकरण करना तय हुआ। इस सांस्कृतिक आदान-प्रदान के युग में भी कई पिशाचों के टोले उजड़ गये क्योंकि उन्होंने देशानुकार परम्परा का अनुसरन नहीं किया।

पूज्याः पिशाचाश्च तथा बलिपूर्वेण कर्मणा।
देशानुकाराः कर्तव्याः जनाकार्या न्वधिष्ठिताः॥

परम्परा को ही एक जनसमुदाय जब अपनाता है तो उनमें स्वतः एक दूसरे के लिये सुख दुःख सहयोग की भावना, भूमि सम्बन्धी भक्ति एकत्व का प्रत्यक्षानुभव, अनुशासनबद्ध-जीवन पद्धति का निर्माण हो जाता है । आज के युग में एक राष्ट्र के लिये आवश्यक लक्षण समान इतिहास, परम्परा भूमि खंड, तदर्थ त्याग, जन समाज आदि का समावेश इस नई समाज ने अपनाकर परिपुष्ट किया। यह सारा भारतराष्ट्र का नवीन अध्याय ही था । ब्राह्मण, क्षत्रिय आदि चातुवर्ण्य की राज्याभिषेक के समय उपस्थिति आवश्यक व शास्त्र संमत थी ही किन्तु अन्यान्य दिशाओं से आये हुये लोगों की उपस्थिति भी आवश्यक थी। ऐसा निश्चित करने का मंतव्य था कि कश्मीरी समाज के सभी जनवर्गों को प्रतिनिधित्व प्राप्त हो। साथ ही बसाने का कार्यक्रम जारी था। इन बस्तियों को आश्रम के नाम से अभिहित किया जाता था। पुरातत्व विभाग ने ऐसी ही एक बस्ती की खुदाई करके तत्कालीन समाज के विषय में कुछ वास्तविक तथ्यों को सामने लाया है ।

इन बसतियों के साथ इस परम्परा का विशेष संबन्ध था। यहां संस्कार देने की योजना सुचारु रूप से चलती थी। इस संस्कार प्रदान की योजना का आधार व्यक्ति निर्माण के सहारे समाज कल्याण था। सारे समाजों की प्राथमिक इकाई व्यक्ति ही है। विचारने योग्य बात है कि किस दूर दृष्टि से अनुशासित तथा सुयोग्य नेतृत्व के अधीन यह कार्य संपन्न हुआ होगा। आज भी इसकी जडे सुव्यवस्थित है। आर्य और पिशाच यह जानते थे कि स्नेह तथा समानता की स्थापना के लिये घनिष्ठता एवं मित्रता का वातावरण आवश्यक है ।

कश्मीर दुर्गम होने के नाते अजेय है किन्तु परस्पर वैमनस्य के कारण नष्ट हो सकता है तथा पराधीन भी। यह सभ्यता दोनों ने पहचान ली थी। दोनों ने स्नेह संपन्न करने पर बल दिया। आर्यों ने पिशाचों के कुछ उत्सवों को सारे कश्मीरी समुदायों के लिये रचाने का निर्णय लिया। इनमें 'यक्ष अमावसी' भी समिलित है। यह उत्सव अभी भी पिशाचों के टोलों में उसी प्रकार मनाया जाता है जिस प्रकार कश्मीरी पंडित समाज में। उनमें दरअसल अपने रसोईघर में चूल्हे के पास एक पत्थर रखा होता है जिसके सामने अन्न रखा जाता है । पुष्प चढ़ाये जाते हैं। यक्ष-अमावसी के दिन रसोईघर में प्रयोग आने वाली कूटनी की ही पूजा होती है ।

प्रारम्भ में पिशाचों के कारण आर्यों को धर्मस्थलों तक पहुँचने के लिये कठिनाइयों का सामना करना पड़ता था। आगे मधुर संबन्ध स्थापित करने के लिये नये वातावरण को जन्म दिया गया। पैशाची भाषा को आर्यभाषा परिवार में संमिलित किया गया। संस्कृत नाटकों में इसका प्रयोग किया जाने लगा। इनकी भाषा में उच्चस्तरीय साहित्य भी लिखा जाने लगा। इस जाति भिन्नता की छाप एक समाज के स्वरूप धारण करने पर भी काफी काल तक व्यक्त थी किन्तु विशाल आर्य-परिवार में जैसे अन्यान्य जातियां, वर्ग व समूह विलीन हो गये। वैसी ही प्रक्रिया यहां पर भी दिखाई देती है। तब एक ही विशाल भारतीय राष्ट्र के महासमुद्र में यह सारी लघु एवं बृहत् धारायें सदा के लिये लीन होकर तत्स्वरूप हो गई। यह आर्यों के उद्‌घोष "कृण्वन्तु विश्वं आर्यम्" का प्रत्यक्ष तथा सफल उदाहरण है।

भारत में शिक्षा किस ओर

• श्री लाल चन्द कौल

स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात भारत में अध्यापकों, शिक्षा-विदों प्रशासकों एवं राजनीतिज्ञों के शिक्षा के विभिन्न पक्षों को लेकर ठोस एव वास्तविक विचारधारा पर प्रकाश डाला है। शिक्षा के उद्देश्यों के पक्ष पर भी बहुत विचार-विमर्श किया गया है। फलत: ऐसे साहित्य का निर्माण पर्याप्त मात्रा में हो गया है जिसमें शिक्षा के महत्वपूर्ण पक्षों पर चर्चा की गई है।

कई बार यह प्रश्न उठाया जाता है कि भारतीय जीवन दर्शन क्या है। अब तक भारतीय जीवनदर्शन के अनुरूप भारतीय शिक्षा को डालने के लिये क्या किया गया है। क्या हमारा अपना कोई शिक्षा दर्शन है अथवा क्या हमारी भारतीय शिक्षा का अपना कोई दर्शन है। यह कहना अनावश्यक है कि सभी देशों में राष्ट्रीय दर्शन का प्रत्यक्ष प्रभाव शिक्षा के सैद्धान्तिक एव व्यवहारिक पक्ष पर पड़ता है। केवल हमारे देश में ही शिक्षा का काम ऐसी स्थिति में आगे बढ़ रहा है जिस पर प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूप से भारतीय दर्शन का प्रभाव नहीं है। बदलते हुए युग ने शिक्षाविदों की विचारधारा को भी परिवर्तित किया है। बढ़ती हुई संसार की आलोचनात्मक स्थिति, वैज्ञानिक दृष्टिकोण, अन्वेषण, विश्लेषण, सांस्कृतिक जागरूकता तथा बदलती हुई रुचियों के कारण यह आवश्यक है कि पाठ्यक्रम का पुर्ननिर्माण कर शिक्षा प्रणाली को परवर्तित किया जाये।

किसी भी राष्ट्र की शिक्षा प्रणाली को केवल वहाँ की आर्थिक सामाजिक, धार्मिक, सांस्कृतिक एवं राजनैतिक गुणों का प्रतीक होना ही पर्याप्त नहीं अपितु उसे वहाँ के लोगों के जीवन उद्देश्यों का द्योतक भी होना अपेक्षित हैं। जीवन का मूल उद्देश्य है जीवित रहने के लिये संघर्ष। शिक्षा के उद्देश्यों को देश की आर्थिक स्थिति प्रभावित करती हैं। कदाचित इसी कारण शिक्षा आयोग ने अपनी रिपोर्ट (१९६४-६६) के आरम्भ में लिखा कि 'भारत के भाग्य का निर्माण इसके विद्यालयों में हो रहा है। विज्ञान और तकनीकी पर आधारित आधुनिक संसार में शिक्षा ही लोगों की समृद्धि, कल्याण और सुरक्षा को निर्धारित करती हैं। विद्यालयों और विश्व-विद्यालयों से निकलने वाले छात्र/छात्राओं की संख्या और स्तर पर ही हमारे

राष्ट्र का नव-निर्माण किया जा सकता है और तभी लोगों के जीवन स्तर को उन्नत किया जा सकेगा।' इस प्रसिद्ध रिपोर्ट ने अपनी विशेषताओं के कारण ही अपने लिये शिक्षा और राष्ट्रीय उन्नति का शीर्षक अर्जित कर लिया। इतना होने पर भी यह समस्त राष्ट्रीय जीवन को परिलक्षित नहीं करती। किसी भी देश के सांस्कृतिक एवं आध्यात्मिक मूल्य भी उस देश के निर्माण में सहायक होते हैं।

शिक्षण व्यवस्था, शैक्षिक दर्शन पर आधारित होनी चाहिये। अतः जब तक भारतीय शिक्षाविद, शिक्षा के आधार, ढांचे तथा नीति निर्धारण में, भारतीय दर्शन, साहित्य, मूल्यों तथा संस्कृति को ढालने का प्रयत्न नहीं करते, तब तक इस देश की शिक्षा दिशाविहीन तथा भारतीय स्थिति एव आवश्यकताओं के अनुरूप नहीं होगी।

शामस फकीर की कविता में दार्शनिक विचारधारा

• डॉ० कृष्णा रैणा

कश्मीर की जिस पुण्य भूमि ने कई महान् इतिहासकारों, साहित्यशास्त्रकारों और साहित्यकारों को जन्म दिया है उसी पुण्य भूमि की एक और महान सन्तान शमस फकीर हैं। इनका जन्म श्रीनगर के चिक्राल मुहल्ला में सन् १८४३ में शाल बनाने वाले एक परिवार में हुआ था। इनका वास्तविक नाम मुहम्मद सिद्दीक भट्ट था। उन्होंने किसी शिक्षालय में शिक्षा प्राप्त नहीं की थी अपितु अपने पिता के पास ही धार्मिक और माध्यमिक शिक्षा ग्रहण की थी, इनके घर के वातावरण को ही हम उनकी आध्यात्मिक रुचि का उत्तरदायी मान सकते हैं। दस-बारह वर्ष की आयु में ही शमस फकीर को 'शाल बाफी' के कारखाने में भेजा गया जहाँ शमस फकीर का परिचय कई सन्त महानुभावों से हुआ इसी कारखाने में 'न्यामसाहब' भी काम करते थे और वे भी चिक्राल मुहल्ला के ही निवासी थे। इन दोनों में घनिष्टता बढ़ गई और न्यामसाहब शमसफकीर से प्रेम करने लगे। न्यामसाहब की रुचि भी कविता और आध्यात्मिकता में थी, इसी वातावरण से शमस फकीर का कवि-हृदय प्रभावित हुआ। एक और कवि स्वच्छकाल से भी

इनका परिचय था। मुहम्मद जमालुद्दीन ने भी इनकी रुचि को परिष्कृत किया और इस प्रकार से श्रीनगर और श्रीनगर से बाहर कई कवियों, सन्तों और सूफी फकीरोंसे इनका परिचय बढ़ गया। श्री कमालुद्दीन ने शमसफकीर को सांसारिक जीवन की ओर आकृष्ट करना चाहा परन्तु यह प्रयत्न निष्फल हुआ। शमस फकीर के हृदय में आध्यात्मिक रंग इतना गहरा था कि उतरने का नाम भी नहीं लेता था। यह अमृतसर भी गये और श्री मजकूरा साहब के पास रहने लगे परन्तु कुछ समय ही पश्चात् वापस आये और श्रीनगर के पास ही अनन्तनाग में श्री अज़ीज भट्ट के निवास स्थान पर विश्राम करने लगे इन्हीं अज़ीज भट्ट की पुत्री 'आइशा' से इनका विवाह हुआ। फिर यह चिकाल मुहल्ला में ही रहने लगे परन्तु इनका मन नहीं लगा। अतः गुफा में रहने के लिए यह घर से निकल पड़े। शमस साहब छह महीने तक काज़ीबाग की एक गुफा में रहे और इस समय बड़गाम ग्राम के गुलाम गोरू इनके सेवक रहे। इनकी प्रसिद्धि फैली और सन्तों में इनकी गणना होने लगी। तब से इन्होंने बड़गाम में ही कलशीपोरा नामक स्थान अपने निवास के लिए उपयुक्त समझा।

शमस फकीर की वेशभूषा भी संतों की सी थी। वे ग्रीष्मऋतु में 'कश्मीर' नामक कपड़े और शीतकाल में 'पट्टू' का ,फिरन' अथवा लम्बा चोगा पहनते थे जिसे कश्मीरी में 'मुनुल' की संज्ञा दी जाती है। यह साधारण वेशभूषा इनके गम्भीर व्यक्तित्व का आभास देती है। इनके जीवन-काल में ही इनके शिष्यों की संख्या बढ़ती गई। आज भी इनके शिष्यों की संख्या श्रीनगर और बड़गाम में हैदर-पोरा स्थान में अत्यधिक है। सन् १९०४ में इनका देहान्त हुआ। इस महान् कवि की कविताएँ दो भागों में प्रकाशित हैं। प्रथम भाग में अट्ठाईस तथा द्वितीय भाग में बत्तीस गीत हैं। इन दोनों भागों में पदों की संख्या १०८२ मानी जाती है। स्वोन मोत नामक एक संत का कथन है कि शमस फकीर के जीवन-काल में ही इनकी रचनाएँ दो भागों में विभाजित की गई थीं : एक में इनकी संस्कृत शब्दावली से पूर्ण गीत थे और दूसरे में कश्मीरी गीत। यह दोनों भाग कलशीपोरा नामक स्थान में शमसफकीर की मृत्यु के पश्चात् भी उनके घर में थे।[1]

शमस फकीर की कविता उच्चकोटि की कविता है और आध्यात्मिक अनुभूति से पूर्ण है। बाह्याडम्बरों में उनका विश्वास नहीं था उनके अनुसार माला फेरने से वास्तविक मणियाँ खो जाती हैं और कृत्रिम मोती सुरक्षित रहते हैं। यह कहाँ की बुद्धिमानी है ? पवित्रता के लिए अपने मन को वश में करना उन्होंने स्वीकार किया है मन की सहस्रों इच्छाओं को कुचल डालने में ही जीवन की वास्तविकता

---

१. शमस फकीर, प्रो० शमसुद्दीन अहमद (उर्दू में) प्र० सं० १९५६, पृष्ठ ११

है। वे आध्यात्मिक प्रकाश में लय होना चाहते हैं इन्होंने गीतों की रचना की है। उनकी भावनाओं में एक प्रकार की मस्ती है, दीवानापन है परन्तु कहीं-कहीं विचारों में उलझन भी है। लोग इनकी कविताओं को सुन कर झूम उठते हैं।[2] इनकी कविता में विचारों की ऊँचाई है। जन्म-मरण के चक्र को मिटाकर वे मुक्तावस्था में विचरण करना चाहते हैं। इनके अनुसार प्रेम-मार्ग पर वही आगे बढ़ सकता है जो 'स्व' को मिटाइये। इनकी कविताओं में ओज और गति है, भावुकता और वास्तविकता है। कई कविताओं में सादगी और लय अधिक है इन्होंने संस्कृत और फ़ारसी शब्दों का भी प्रयोग किया है।

शमस फकीर की विचारधारा इनके काव्य में व्यक्त हुई है। इन्होंने ब्रह्म को चाहे रहीम हो, रमज़ान हो या कोई और, सर्वव्यापक और सर्वत्र माना है। ब्रह्माण्ड का कोई कण उसके अस्तित्व के बिना नहीं है—

म्ये वुछ हर शायि सु यार
छुनअ काँह मोयि ति खअली।[3]

वह अथाह है और अज्ञानी उसकी थाह नहीं पा सकते हैं। इस रहस्य को समझना सरल नहीं है, ज्ञानी ही इसको समझ सकते है। ब्रह्म सृष्टिकर्ता है। इस कुलाल रूपी ब्रह्मा ने विभिन्न रंगों के अनन्त पात्र रूपी जीवों का निर्माण किया है उनमें कई कच्चे (अज्ञानी) और कई पक्के (ज्ञानी) भी हैं। ब्रह्म एक है, उसका नाम क्या है उसके रहस्य को जीव नहीं जानता—

'अमि कालन बान' थुरि स्यठाह।
रंग रंग तथ अन्थ क्याह।
सअरिय छि पोख्त ब' द्रास ओम।
अमि कुनिरन क्याह द्युत जलाव।
तस कुनिसय क्याह छु नाव।[4]

वही बीज रूप में सब में व्याप्त है। कण-कण में वह समाया है, वह अन्धेरे और प्रकाश से मिला हुआ है ब्रह्म सत्य है उसी से संसार की उत्पत्ति हुई है, वह

---

२. कश्मीरी ज़बान और शायरी (उर्दू में) अब्दुल अहद आज़ाद, प्र० सं० १९६३, पृष्ठ ३४२,

३. शमस फकीर, शमसुद्दीन अहमद (उर्दू में) प्र० सं० १९५६, कविता १०, पृष्ठ ५२,

४. वही, कविता १४, पृष्ठ ५६,

वाणी से परे है। मस्त प्रेमी उस ब्रह्म के साथ सदैव रहते हैं। वह ब्रह्म यहाँ भी है और वहाँ भी

सत' निश दरियाव पैद गव,
तथ ला निहायतस छनअ ज्यव।
आ'रिफ छु तथ सूत्य दूर दमै,
येति सुय छुमै तति सुय छुमै।[5]

जो ब्राह्माडम्बर का पालन करते हैं वे इस आध्यात्मिक ज्ञान को नहीं जान सकते हैं। शेख मन्सूर ने ही ब्रह्म को पहचान लिया था उसने सूफियों की मारिफत अवस्था में पहुँचने से पूर्व ही 'अनलहक' (अहंब्रह्मास्मि) कहा था। ब्रह्म रूपी सूर्य के सामने जीव के मन का सन्देह रूपी अन्धकार नष्ट होता है और ब्रह्म का प्रकाश व्याप्त हो जाता है। हयात, ममात और जगत् नाम किसको दिया जाये, उसका न शरीर है और न ही रूप है। वह अकेला सत्य तत्व है, उसका उद्भव कहाँ से हुआ है और उसको कौन सी वस्तुएँ व्यक्त करती हैं यह हम नहीं कह सकते—

क्याह छु हयात क्याह छु ममात,
कथ चीज़स कर व' नाव जात।
छुस न जिस्म न जब हरै,
तिम गछ्रिथ छि तिहन्दे गरै।
आव वजूद शहूद पत्थर,
सर' गछि़थ तिहुन्द कुन्यर।[6]

जीव को यह ज्ञान प्राप्त करना चाहिए कि ब्रह्म के अतिरिक्त और कुछ नहीं है, इसी भाव से जीव का विषय विकारों से मैला मन रूपी दर्पण प्रकाश वाला बन जाता है—

लाइल्लाह इल्लाह सर चय करतन ....
लय कर खय चलि दिलि आईनस सपदख बीनादार।[7]

शमस फकीर जीव को ब्रह्म के साथ ही शून्यावस्था में वास करने वाल मानते हैं और जीव को ब्रह्म से अलग हुआ मानते हैं क्योंकि जीव संसार में अन्य

---

५. वही, कविता १३, पृष्ठ ४८,

६. वही, कविता २, पृष्ठ २४,

७. वही, कविता ३, पृष्ठ २४,

ः संख्य जीवी के साथ रहता है—

शिन्याह गछिथय ओस म्योन ओलुय,
अमि अशक नरना जोलुय ।
गनिरस त्रोवनम रोनि मंज़ोलुय,
ओन्य ओन्त बोज़नि चास ।[8]

जीव ब्रह्म का अंश है जैसे नदी से छोटे-छोटे झरने निकलते हैं और नदी जलकणों में व्याप्त रहती है वैसे ही ब्रह्म जीवों में व्याप्त है परन्तु अज्ञानी जीव इस रहस्य से अपरिचित है—

दरियावस छय जोयि नेरान
दरियाव कतरस मन्ज़ छु इरने
तमिची खबर कँह छय न आमन ।[9]

जीव की अलग से कोई सत्ता नहीं है । देव, दानव, मनुष्य और फरिश्ते में कोई अन्तर नहीं है—

बो छुस कँह नय खुद पानय,
बो कँह नय कस वनय पानय,
वुछुम ओरअ कँह न योर कँह नय,
न छुस मलक न छुस ज़िनयात,
न छुस इन्सान आदम ज़ात ।[10]

मैं ही शमस हूं और मैं ही सिकन्दर हूं । जो जीवन अपने 'स्व' और 'अहं' को मिटाकर ब्रह्म के सामने नतमस्तक होगा वही उसका साक्षात्कार कर सकता है उसी के लिए आध्यात्मिक द्वार खुल जाते हैं—

बो हा सिर शमस फकीर वनय
सर आव पत्थर दर मखमूर
सुय अचि यस तति बर मुचरनय
जो क्याह वनय यी गव ज़हूर ।[11]

ब्रह्म संसार की सीमा से परे है और जीव जन्म-मरण के चक्र में फँसा है । जीवों को शमस फकीर ने भिन्न कोटियों में विभाजित किया है । एक कोटि के जीव प्रेम में मस्त रहते हैं, दूसरी कोटि के धर्म के ब्राह्माडम्बरों में रत रहते हैं कुछ अज्ञानी होते हैं :—

कँचन पेमच् अशकन्य तबर,

---

८. काशिर शायरी, महीउद्दीन हाजिनी, सं० १९६०, पृष्ठ ३२,
९. शमस फकीर, कविता ६, पृष्ठ ३२,
१०. वही, कविता ७, पृष्ठ ३६,
११. वही, कविता ११, पृष्ठ ४४,

केंह वज़ाखान छी बेखबर,

पीर्यन खसिथ पर्य पर्यं किताब ।[12]

जो जीव जीवित ही अपने को मृतक समझते हैं, 'स्व' और 'अहं' का त्याग करते हैं वे स्वाभिमानी प्रेमी ब्रह्म को प्राप्त कर सकते हैं। जहाँ सत् के स्रोत से निर्मल अमृत निर्झरणी प्रवाहित होती है वहीं जीव की सत्ता ब्रह्म में लय हो जाती है। यह स्थान शून्य से परे है :—

सथ दरियाव द्राथ निर्मलो

... ...

शिन्या छु तति पायन तलो ।[13]

शमस फकीर के अनुसार संसार व्यर्थ है, झूठ है कौवों की बरात के समान है —'दुनिया छु काव येनिवोल' कह कर उन्होंने इसी भाव को व्यक्त किया है। सांसारिक बन्धन सभी व्यर्थ हैं, कठिनाई आने पर कोई साथ नहीं देता—

यार बोय अशिनाव नो छु काँह,

तिम छि सा'रिय बेवफा ।

अत: संसार से निवृत्त होकर अपनी इच्छाओं को वश में करना ही श्रेयस्कर है—

तरकि दुनिया कर दुनियदारो ।[14]

'चिन्ता' और 'ज़िकिरि' को वश में करने से इस संसार सागर को पार किया जा सकता है—

फिकिर त जिकिर दिल वस वस चोलुम

तार लोगुम दरियावसय ।[15]

परन्तु संसारी कायर जीव वहाँ तक नहीं पहुँच सकते हैं।

शमस फकीर की कविता में माया का संकेत बहुत कम मिलता है। उस संकेत से यही अभिव्यक्त होता है कि जीव माया के पाश से संसार में बंध जाता है—

दर्शन रायो मायो वोलहस,

बाग़ुन छु ज़िकिर इन्तिकाल ।[16]

शमसफकीर ब्रह्म-साक्षात्कार के लिए या आध्यात्मिक रहस्य जानने के लिए गुरू को आवश्यक मानते हैं। गुरू को सदैव साथ रखकर उससे सदैव पथ प्रदर्शन प्राप्त करना चाहिए क्योंकि जीव आध्यात्मिक सरिता का कोलाहल तो सुनता है परन्तु बिना ज्ञान के इसे पार नहीं कर सकता—

१२. वही, कविता ५, पृष्ठ ४६, १३. वही, कविता १२, पृष्ठ ४६,
१४, वही, कविता ३, पृष्ठ २६, १५. वही, कविता १, पृष्ठ १८,
१६. वही, कविता १, पृष्ठ १५

बोज़ दरियायि मसीतुक शोर,
बेय नो तरख अपोर,
सूत्य सूत्य ह्यन रह बरै ।[17]

ईश्वर का रहस्य गुरू ही बता सकता है । जीव को जब गुरू का मार्ग-प्रदर्शन प्राप्त होता है तो वह 'स्व' में ही परमात्मा का साक्षात्कार करने लगता है । गुरू जब आध्यात्मिक वास्तविकता का रहस्य जीव को बताता है तो जीव अपने श्वासों के ज़ीरो-बम (आरोह आवरोह) में हो उसे खोजता है ।

शमसफकीर ने मनुष्य को इच्छाओं का दास बताया है इच्छापूर्ति में उसे आनन्द आता है परन्तु वह आनन्द क्षणिक है सांसारिक है । वास्तव में इच्छा शक्ति ही मनुष्य को निचोड़ डालती है और अन्त में नष्ट करतो है । शमसफकीर बाह्याडम्बरों का त्याग, इन्द्रिय-निग्रह और विषय-विकारों के वशीकरण पर बल देते हैं । रात-दिन माला फेरना व्यर्थ है उससे वास्तविक मोती खो जाते हैं और जीव कृत्रति मोती के पीछे पड़ते हैं अर्थात् धर्म के वास्तविक रूप का पालन ही श्रेष्ठ है—

हा ज़ाहिद क्याह छुख करान,
राथ दोह गोय तसबिह फिरान,
मोरुत रावी फोतस रछिय गोम ।[18]

शमस फकीर के काव्य में यौगिक शब्दावली भी उपलब्ध होती है शमस फकीर कहते हैं छह द्वारों को बन्द कर शशिकल की ध्वनि का श्रवण करना ज्ञानियों का काम है—

शे पाश त्रोपरिथ शशिकल वुज़ुम
इशराह तमिकुय छुय हुशियारन ।[19]

ब्रह्म के साक्षातकार के लिए ज्ञान और हठयोग द्वारा अपने प्राणों को वश में करना आवश्यक है—

ज्ञानवन्य ज़ानकर प्रणस ज्ञानस,
ज़ान मिलनाव भगवानस सूत्य ।[20]

शमस फकीर ने आध्यात्मिक मिलन के लिए प्रेमतत्व को महत्वपूर्ण माना है और ब्रह्म को कहीं प्रेमी और कहीं प्रेमी, और प्रेमिका का रूप दिया है । प्रेमी के

१७. वही, कविता २, पृष्ठ २४
१८. वही, कविता ४, पृष्ठ २८,
१९. वही, कबिया ६ पृष्ठ ३२,
२०. वही, कविता १९, पृष्ठ ६८,

रूप में निम्न पंक्तियां देखी जा सकती हैं—

(क) बालपोश न्यूथमो दिलो। दोन लालन ह्यमथ क'मती ।
(ख) मन्जि मोत मान्ज़ ला'गिथ द्राव नमनय, कमनय कमनय हावि-
दीदार ।

प्रेमिका के रूप हैं भी उसे देखा जा सकता है—

अय माशोक नाज़नीन गाह त' बर मन बाज़ ब बीन ।

शमस फकीर मानते हैं कि प्रेम की स्निग्धता से सारे बन्धन टूट जाते हैं
और द्वार खुल जाते हैं। प्रेमी प्रेम की मदिरा पीकर मदिरालय में ही रहता है।
इस प्रेमाग्नि से शरीर तप्त होता है। प्रेमी मर कर भी अमर ही रहते हैं—

मरिथ मरतव ज़िन्दय रिन्दय ।

प्रेम में उन्होंने उत्कट लालसा का भी चित्रण किया गया है। कवि शारी-
रिक सौन्दर्य का भी वर्णन करता है। उन्होंने कविता संख्या नव और दस में ईश्वर
को नारी रूप में लेकर उसके शारीरिक सौंन्दर्य का निरूपण किया है जो उन पर
सूफीमत का प्रभाव है। प्रेम में तभी सफलता प्राप्त होती हैं जब ब्रह्म-स्मरण से
मन को स्वच्छ करके अपनी आत्मा में ही ब्रह्म का भास होता है, इस प्रेम मद में
ब्रह्म के दर्शन होते हैं और 'स्व' को समाप्त करना पड़ता है—

जि़किर हपतन सूत्य दरपन सपदुम,
हर छुम ना'ली नाल ।
जि़किरि हिन्दारस अशक दरबारस
दर्शन दारितल छुसय ।

शमस फकीर की कविताएँ मुक्तक हैं। हर गीत अपने आप में केन्द्रित हैं,
इनमें किसी भी प्रकार का पूर्वापर सम्बन्ध नहीं है। जन साधारण की भाषा में
शमसफकीर ने अपनी अमूल्य भावनाओं की अभिव्यक्ति की है। इनके यह गीत
संगीत के ताल और लय से पूर्ण है। अक्सर शमसफकीर के यह गीत गाये जाते
हैं। कश्मीरी भाषा के एक अमर कवि के रूप में शमस फकीर अपना महत्वपूर्ण
स्थान रखते हैं।

यज्ञोपव·· संस्कार सम्बंधी ोकगीत : एक विवेचन

• डॉ० जवाहर लाल हण्डू*

मुण्डन के पश्चात, एक हिन्दू बालक के जीवन में दूसरा महत्वपूर्ण संस्कार यज्ञोपवीत का होता है। प्राचीनकाल में यज्ञोपवीत को पृथक न मानकर 'उपनयन' संस्कार के अन्तर्गत ही एक महत्वपूर्ण स्थान दिया जाता था। 'उपनयन' संस्कार का मुख्य प्रयोजन, बालक को दीक्षित करना माना जाता था; जो प्राय: 'यज्ञोपवीत' के बिना अपूर्ण समझा जाता था। इस सस्कार के पश्चात बालक 'द्विज' कहलाता था। 'यज्ञोपवीत' अथवा 'उपवीत' धारण करना ही इस सस्कार का स्थूल-तत्व था[२]; जो काल-क्रम में एक स्वतत्र संस्कार के रूप में प्रचलित हुआ और शेष संस्कारिक कृत्यों का प्राय: लोप हो गया।

प्राचीनकाल में, विश्व की प्रत्येक जाति में, युवक तथा युवतियों को समाज अथवा समुदाय में प्रविष्ट करने से पहले सांस्कृतिक एवं सामाजिक दीक्षा दी जाती थी। कतिपय असभ्य जातियों में सहनशक्ति के परीक्षणोपरान्त समुदाय में दीक्षित किया जाता था।[3] कई जातियों में लड़कियों को अस्थायी एकान्तवास द्वारा दीक्षित किया जाता था और कईयों में तो किसी अंग विशेष को भंग करके, युवक को समुदाय में सम्मिलित किया जाता था[4]। मुसलमानों में इस प्रकार की दीक्षा अभी भी प्रचलित है। ईसाइयों का 'वेपट्ज्म (Baptism) तथा पारसियों का' नवजोत (Naujot); हिन्दुओं के 'उपनयन' (द्विज) संस्कार से, कृत्य एवं प्रयोजन की दृष्टि से, अत्यंत साम्य रखते हैं[5]।

उपनयन संस्कार की प्राचीनता अज्ञात है। जैसा कि कहा गया है, इससे मिलता–जुलता, समान प्रयोजन का, 'नवजोत' संस्कार पारसियों में प्रचलित है; अत: स्पष्ट है कि बालक को दीक्षित करने के इस संस्कार का उद्भव उसी युग में हुआ होगा, जब भारतीय आर्य और ईरानी लोग एक साथ रहते थे[6]। वैदिक कालीन साहित्य में 'ब्रह्मचार्य' शब्द का प्रयोग हुआ है। अथर्ववेद के एक मन्त्र में वैदिक-छात्र की प्रशंसा भी की गई है; जिसमें 'उपनयन' संस्कार की अनेक उत्तरवर्ती विधियों का मूल उपलब्ध होता है[7]। गृह्यसूत्रों के समय में, यह संस्कार पूर्णतया प्रतिष्ठित हो चुका था और इसकी अनिवार्यता भी स्वीकृत हो चुकी थी। कौन सी आयु में किस जाति के बालक का 'उपनयन' संस्कार किया जाना चाहिए; इसका स्पष्ट उल्लेख पारस्कर गृह्यसूत्र में मिलता है[8]।

* लोक साहित्य विभाग, भारतीय भाषा संस्थान, मैसूर (कर्नाटक)

कश्मीर में यज्ञोपवीत संस्कार का अत्यधिक महत्व है[9]। विवाह को छोड़, अन्य संस्कारों से अधिक महत्वपूर्ण तथा अपरिहार्य यज्ञोपवीत संस्कार ही माना जाता है। लोकचारों एवं अन्य विधिविधानों की दृष्टि से भी इसका महत्व सर्वोपरि है। भारत के कतिपय प्रदेशों में सामान्यत: जनेऊ विशिष्ट वर्गों में ही केवल प्रचलित है, परन्तु कश्मीर की समस्त हिन्दू जनता ब्राह्मण है[10], अत: जनेऊ पहनना सबके लिए अनिवार्य है। किसी बालक का 'जन्म' या 'मुण्डन' संस्कार भले ही न हुआ हो अथवा किसी व्यक्ति को विवाह का सौभाग्य न प्राप्त हुआ हो; परन्तु ऐसा कोई उदाहरण प्राप्त नहीं, जिस का यज्ञोपवीत संस्कार न हुआ हो।

कश्मीर प्राचीनकाल से एक विशिष्ट सांस्कृतिक विद्या-केन्द्र रहा है। भारत के प्रत्येक क्षेत्र से बालकों को शिक्षा-दीक्षा के लिए कश्मीर भेजा जाता था। आज भी कतिपय स्थानों पर, जनेऊ डालते समय, बालक का तीन पग उत्तर (कश्मीर) की ओर बढ़ाना, वस्तुत: इस बात का द्योतक है कि कश्मीर प्राचीनकाल में एक विशिष्ट शिक्षा केन्द्र रहा है[11]। संभव है कि इसी विशिष्टता अथवा आदर्श के कारण ही यज्ञोपवीत संस्कार, यहां शेष संस्कारों से अधिक महत्व प्राप्त कर चुका हो।

कर्मकाण्ड, जटिल विधि-विधान तथा गीतों की दृष्टि से यज्ञोपवीत की तुलना विवाह संस्कार से की जा सकती है। विवाह की भांति यह संस्कार भी प्राय: तीन दिन सम्पन्न होता है। विभिन्न कृत्यों के अनुरुप, तीनों दिन तक, समान रुप से निरन्तर गीत[12] गाये जाते हैं।[13]

अध्ययन की सुविधा के लिए यज्ञोपवीत संस्कार के गीतों का विभिन्न कृत्यों के अनुरुप, निम्नांकित विभाजन हो सकता है :—

१. "घरनावय" (लिपाई के गीत)। १·१ "दपुन" (न्योता या न्योतना)।

२. "मअज़्यरात" (रतजगा के गीत)। २.१ "क्रूल" (बैल)।
   २·२ मेंहदी के गीत।

३. "दिवगोन" (देवपूजन के गीत)। ३·१ "श्राण" (स्नान)।

४. "मेखला" (यज्ञोपवीत के गीत)। ४·१ "मंडप" (अग्नि कुण्ड)।
   ४·२ "वारिदान" (नेग)। ४·३ "हुम" (यज्ञ)। ४·४ "ट्योक-नअर्-वन" (तिलकादि)। ४·५ "अबीद" (भिक्षा)। ४·६ "कलश" (समापन)।

१. "घरनावय" : लिपाई के गीत।

शुभ संस्कारों पर प्राय: सभी हिन्दू जातियां घर का लीपन करती हैं। यज्ञोपवीत संस्कार पर भी ऐसा किया जाता है। किसी भी निश्चित शुभ दिन, संस्कार्य-बालक की बुआ घर का लीपन करती है। उसे नेग दिया जाता है।

संस्कार्य-व्यक्ति के माता-पिता इस अवसर पर नए वस्त्र पहनते हैं । इस अवसर पर भी "वअर"[14] पकाने की प्रथा है और संस्कार्य-व्यक्ति के माँ-बाप को बधाइयाँ दी जाती हैं ।[15] लिपाई के कृत्य को पूर्ण किए बिना "मात-न्योतों" पर नहीं जाया जा सकता है; ऐसी धारणा लोक में अब भी प्रचलित है । इस अवसर पर जिन गीतों को स्त्रियां गाती हैं, उनमें स्पष्टत: इस कृत्य की साँस्कृतिक महत्ता का परिचय मिलता है । विभिन्न देवताओं का आह्वान, गंगास्तुति तथा इस कृत्य की धार्मिक महत्ता; ऐसे गीतों के मुख्य वर्ण्य-विषय हैं । उदाहरणार्थ :—

शुक्ल करिथ वनवुन ह्योतुमय, शुभो-फल दितियि माजि भवाने ।।
वसुदीव राजन्यव वनुनुन ह्योतुय, शुभ-फल दितिय माजि शारिकाये ।।
व्यश-पादकमलव निश नअन्य द्राये, ज़टि हयच परमीश्वराये ।।
भगीरथने तप सअत्य आये, हरि गगाये नमस्कार ।।
आकाश प्यठ यलि गंगा द्राये, सअत्य छिस कारण तअ दीवता ।।
अछ़अ-रछ़अ वनवान पत-पतअ द्राये, हरि गंगाये नमस्कार ।।

अर्थात; 'शुकुल'[16] करके वासुदेव राजा के घर लीपन–कार्य हो रहा है। बृहस्पति देवता ने स्वयं नक्षत्रों का योग तथा शुभ फल देखकर इस दिन को निश्चित किया है भवानी स्वयं आशीर्वाद देने आई है । विष्णुपाद-गंगा, भगीरथ के तप एवं तपस्या से अवतरित हुई, परमेश्वर ने उसे अपनी जटा में धारण किया । देवी-देवता तथा अप्सराएं उसका मंगलगान गाने लगीं ।

१.१. "दपुन" : न्योता ।

लीपन के बाद न्योत्तने का कृत्य होता है । संस्कार-बालक, माता-पिता तथा अन्य बंधु–बांधवों सहित ननिहाल, "मात न्योत्तने" जाता है । वहाँ सहभोज आयोजित होता है बालक तथा उसकी माता को नए वस्त्र तथा नेगादि दिया जाता है ।

इस अवसर पर, संस्कार्य-व्यक्ति के घर एवं ननिहाल दोनों स्थानों पर गीत गाने की प्रथा है । इनमें बालक की माता ("यजमनबाय") का ही अधिक वर्णन रहता है । अत: उसी का आदर्शपूर्ण चित्रण गीतों में अधिक हुआ है । जैसे :—

देवकी माता के "मात न्योतने" के लिए रथ मंगवाये गये । शुभ नक्षत्रों का योग देखा गया । महाराजाधिराज का राजवाहन लाया गया और उसी की सोने की पालकी में कृष्ण (बालक) को बैठाया गया ।

दपुनस क्युथये रथ मंगनोवमय, नेछुतुर वुछुनोवमय ।
दीवकी माजि क्यूथ रथ मंगनोवमय, सोव नेछुतुर वुछुनोवमय ।
माहराज सअवुन होस मंगनोवमय, हस्तिस स्वन-साज़ करनोवमय ।
सव्य प्यठ कृष्ण-माहराज बेहनोवमय, [illegible] नेछुतुर वुछुनोवमय ।।

२. "मग्रज़यरात" : रतजगा के गीत :

यज्ञोपवीत संस्कार के तीन दिनों के समारोह का आरम्भ 'मग्रज़यरात' से होता है। 'मग्रज़यरात' के अवसर पर रतजगा भी होता है और दिन मेंकुछ आनुष्ठानिक कृत्य भी किये जाते हैं। इन में विशेष उल्लेखनीय 'क्रूल' तथा मेंहदी' के कृत्य हैं। प्रथम कृत्य, दिन में पूर्ण किया जाता है और द्वितीय रात में।

२.१. "क्रूल" बेल काढ़ना।

द्वार पर बेल बनाने को कश्मीरी में 'क्रूल' कहते हैं। इसे विवाह तथा यज्ञोपवीत; दोनों अवसरों पर बनाया जाता हैं। घर के मुख्य द्वार को पोथ कर, विविध रंगों से बेल काढ़ी जाती है। मेंहदी का रंग इनमें अग्रणीय रहता है। इस कार्य में भी बुआ का विशेष योग रहता है। 'वअर' पकाने की प्रथा का पालन इस अवसर पर भी किया जाता है।

लिपाई के गीतों के अनुरूप 'क्रूल' सम्बन्धी गीतों में भी देवी-देवताओं का आह्वान विशेष रूप से होता है। सुभद्रा, पार्वती, वासुदेव, देवकी; आदि पौराणिक पात्रों से, बालक, उसके माता-पिता, बुआ तथा परिवार के अन्य व्यक्तियों की तुलना करने से एक ऐसा दृश्य उपस्थित किया जाता है मानो देव-लोक ही संस्कार्य बालक के घर में उतरा हो और सभी देवी देवता कृत्य को सम्पन्न करने में सक्रिय सहयोग दे रहे हों। इसके अतिरिक्त बुआ क्योंकि इस कृत्य में अधिक सहयोग देती है, अत: उसके नेग आदि का अत्यन्त आदर्शपूर्ण वर्णन भी गीतों में हुआ है।

उदाहरणार्थ :—

क्रुलय ज़ंगे क्याह-क्याह पज़े, तुन, वरि तय मुहरा प्रास।
सुभद्रा माले क्याह-क्याह पज़े, वासुदीव राजुन मुहरा प्रास।
क्रूल खारनस ज़ंगि कुस आये, परमीशर तज पार्थव मअज।
सुभदा मालि ज़ंगि कुस आये, परमीशर तज पार्थव मअज॥

२.२. मेंहदी : कृत्य एवं गीत।

मेंहदी को प्राय: सभी स्थानों पर मंगल-प्रतीक तथा शुभसूचक माना गया है। स्त्रियों के सोलह श्रृंगारों में मेंहदी को एक विशिष्ट प्रसाधन माना गया है।[17] पाश्चात्य संस्कृतियों में इसे मांगल्य तथा प्रणय का प्रतीक माना गया है।[18] यहूदी तथा यूनानी संस्कृतियों में इसे देव-सौन्दर्य तथा अमर तत्व के रूप में स्वीकार किया गया है।।[19] इसी प्रकार इंलैंड में इसे सौभाग्य तथा मंगल का चिन्ह माना जाता है।[20] जर्मनी में, भारतीय लोक-परम्परा के अनुरूप, विवाह्य कन्या को मेंहदी का हार पहयाया जाता था।[21] वस्तुत: मेंहदी को भारत के अतिरिक्त अन्य देशों में भी पवित्र तथा मंगल-सूचक माना गया है। इसके अतिरिक्त लोक-कला की

संस्कार्य-व्यक्ति के माता-पिता इस अवसर पर नए वस्त्र पहनते हैं। इस अवसर पर भी "वअर"[14] पकाने की प्रथा है और संस्कार्य-व्यक्ति के माँ-बाप को बधाइयाँ दी जाती हैं।[15] लिपाई के कृत्य को पूर्ण किए बिना "मात-न्योतों" पर नहीं जाया जा सकता है; ऐसी धारणा लोक में अब भी प्रचलित है। इस अवसर पर जिन गीतों को स्त्रियां गाती हैं, उनमें स्पष्टत: इस कृत्य की साँस्कृतिक महत्ता का परिचय मिलता है। विभिन्न देवताओं का आह्वान, गंगास्तुति तथा इस कृत्य की धार्मिक महत्ता; ऐसे गीतों के मुख्य वर्ण्य-विषय हैं। उदाहरणार्थ :—

शुक्ल करिथ वनवुन ह्योतुमय, शुभो-फल दितियि माजि भवाने ।।
वसुदीव राजन्यव वनुवुन ह्योतुय, शुभ-फल दितिय माजि शारिकाये ।।
व्यरण-पादकमलव निश नअन्य द्राये, ज़टि ह्यच परमीश्वराये ।।
भगीरथने तप सअत्य आये, हरि गगाये नमस्कार ।।
आकाश प्यठ यलि गंगा द्राये, सअत्य छिस कारण तअ दीवता ।।
अछ्अ-रछअ वनवान पत-पतअ द्राये, हरि गंगाये नमस्कार ।।

अर्थात; 'शुकुल'[16] करके वासुदेव राजा के घर लीपन—कार्य हो रहा है। बृहस्पति देवता ने स्वयं नक्षत्रों का योग तथा शुभ फल देखकर इस दिन को निश्चित किया है भवानी स्वयं आशीर्वाद देने आई है। विष्णुपाद-गंगा, भगीरथ के तप एवं तपस्या से अवतरित हुई, परमेश्वर ने उसे अपनी जटा में धारण किया। देवी-देवता तथा अप्सराएं उसका मंगलगान गाने लगीं।

१.१. "दपुन" : न्योता।

लीपन के बाद न्योत्तने का कृत्य होता है। संस्कार-बालक, माता-पिता तथा अन्य बंधु—बांधवों सहित ननिहाल, "मात न्योत्तने" जाता है। वहाँ सहभोज आयोजित होता है बालक तथा उसकी माता को नए वस्त्र तथा नेगादि दिया जाता है।

इस अवसर पर, संस्कार्य-व्यक्ति के घर एवं ननिहाल दोनों स्थानों पर गीत गाने की प्रथा है। इनमें बालक की माता ("यजमनबाय") का ही अधिक वर्णन रहता है। अतः उसी का आदर्शपूर्ण चित्रण गीतों में अधिक हुआ है। जैसे :—

देवकी माता के "भात न्योतने" के लिए रथ मंगवाये गये। शुभ नक्षत्रों का योग देखा गया। महाराजाधिराज का राजवाहन लाया गया और उसी की सोने की पालकी में कृष्ण (बालक) को बैठाया गया।

दपुनस क्युथये रथ मंगनोवमय, नेछुतुर वुछुनोवमय।
दीवकी माजि क्यूथ रथ मंगनोवमय, सोव नेछुतुर वुछुनोवमय ।
माहराज सअबुन होस मंगनोवमय, हरिराश स्वन-साज़ करनोवमय ।
तथ्य प्यठ कृष्ण-माहराज बेहनोवमय, सोव नेछुतुर वुछुनोवमय ।।

२. "मग्रज्यरात" : रतजगा के गीत :

यज्ञोपवीत संस्कार के तीन दिनों के समारोह का आरम्भ 'मग्रज्यरात' से होता है। 'मग्रज्यरात' के अवसर पर रतजगा भी होता है और दिन में कुछ आनुष्ठानिक कृत्य भी किये जाते हैं। इन में विशेष उल्लेखनीय 'क्रूल' तथा मेंहदी' के कृत्य हैं। प्रथम कृत्य, दिन में पूर्ण किया जाता है और द्वितीय रात में।

२.१. "क्रूल" बेल काढ़ना।

द्वार पर बेल बनाने को कश्मीरी में 'क्रूल' कहते हैं। इसे विवाह तथा यज्ञोपवीत; दोनों अवसरों पर बनाया जाता हैं। घर के मुख्य द्वार को पोथ कर, विविध रंगों से बेल काढ़ी जाती है। मेंहदी का रंग इनमें अग्रणीय रहता है। इस कार्य में भी बुआ का विशेष योग रहता है। 'वअर' पकाने की प्रथा का पालन इस अवसर पर भी किया जाता है।

लिपाई के गीतों के अनुरूप 'क्रूल' सम्बन्धी गीतों में भी देवी-देवताओं का आह्वान विशेष रूप से होता है। सुभद्रा, पार्वती, वासुदेव, देवकी; आदि पौराणिक पात्रों से, बालक, उसके माता-पिता, बुआ तथा परिवार के अन्य व्यक्तियों की तुलना करने से एक ऐसा दृश्य उपस्थित किया जाता है मानो देव-लोक ही संस्कार्य बालक के घर में उतरा हो और सभी देवी देवता कृत्थ को सम्पन्न करने में सक्रिय सहयोग दे रहे हों। इसके अतिरिक्त बुआ क्योंकि इस कृत्य में अधिक सहयोग देती है, अतः उसके नेग आदि का अत्यन्त आदर्शपूर्ण वर्णन भी गीतों में हुआ है।

उदाहरणार्थ :—

क्रुलय ज़गे क्याह-क्याह पज़े, नुन, वरि तय मुहरा प्रास।
सुभद्रा माले क्याह-क्याह पज़े, वासुदीव राजुन मुहरा प्रास।
क्रूल खारनस ज़ंगि कुस आये, परमीशर तज पार्थव मग्रज।
सुभदा मालि ज़ंगि कुस ओये, परमीशर तज पार्थव मग्रज ॥

२.२. मेंहदी : कृत्य एवं गीत।

मेंहदी को प्रायः सभी स्थानों पर मंगल-प्रतीक तथा शुभसूचक माना गया है। स्त्रियों के सोलह शृंगारों में मेंहदी को एक विशिष्ट प्रसाधन माना गया है।[17] पाश्चात्य संस्कृतियों में इसे मांगल्य तथा प्रणय का प्रतीक माना गया है।[18] यहूदी तथा यूनानी संस्कृतियों में इसे देव-सौन्दर्य तथा अमर तत्व के रूप में स्वीकार किया गया है।।[19] इसी प्रकार इंलैंड में इसे सौभाग्य तथा मंगल का चिन्ह माना जाता है।[20] जर्मनी में, भारतीय लोक-परम्परा के अनुरूप, विवाह्य कन्या को मेंहदी का हार पहनाया जाता था।[21] वस्तुतः मेंहदी को भारत के अतिरिक्त अन्य देशों में भी पवित्र तथा मंगल-सूचक माना गया है। इसके अतिरिक्त लोक-कला की

दृष्टि से भी मेंहदी का विशेष महत्व है; स्त्रियां जिस नकाशी एवं कलात्मकता से हाथ-पैरों पर मेंहदी के बेल काढ़ती हैं, वे भारतीय लोक-कला की आंकिक अभिव्यक्ति के ज्वलंत उदाहरण हैं।

कश्मीर में भी मेंहदी का प्रयोग सभी शुभ संस्कारों पर किया जाता है। अन्य स्त्रियों के अतिरिक्त, संस्कार्य-व्यक्ति हाथ-पैरों पर भी मेंहदी लगाइ जाती है और यह कार्य भी बुआ ही करती है। विवाह तथा यज्ञोपवीत के अवसर पर, इस उपलक्ष में प्रायः समान गीत गाये जाते हैं; जिन में भारतीय संस्कृति के उसी रूप को उभारा गया है जिस का ऊल्लेख हम ऊपर कर चुके हैं। देव-आह्वान, सुख-समृद्धि की कामना आदि इन में भी की गई है। उदाहरण के लिए एक गीत में कहा गया है कि, "मेंहदी लगाने की शुभ घड़ी पर सारे व्यक्ति एकत्र हुए हैं। कृष्ण-समान बालक को मेंहदी लगाने के लिए, वासुदेव राजा के घर, गंगा, जमुना, एवं सरस्वती भी आ गई हैं।···मेंहदी का पुष्प "तुलमुल" (क्षीर भवानी)[22] के उद्यान में स्थित प्रसिद्ध एवं पवित्र कुण्ड से उदित हुआ है :—

मअज़े रअचय सोम्बुरिथ बअचय, बअचय, गंग, जमना, सरस्वत।
वसुदीव राजन्यन सोम्बुरिथ बअचय, कृष्णअनि मअज्यरअचय किथ्य।
तुलअमुलि अन्दरय रअज़ण्या वअचय, बअचय, गंग जमना, सरस्वत।
पाथछा बागस, तुलअमुलि नागस, त्रागस मज़ खोत मअंज़े पोश॥

उपर्युक्त गीत में, पवित्र उद्यान में स्थित कुण्ड से मेंहदी के उदित होने का जो उल्लेख हुआ है, ठीक वैसे ही विश्व की अन्य संस्कृतियों में, भी इस की उत्पत्ति की पवित्रता का उल्लेख हुआ है। पाश्चात्य किंवदंतियों में, मेंहदी को आदम के उद्यान का मात्र सुबासित वृक्ष बतलाया जाता है।[23] इसी प्रकार अन्य स्थानों पर भी इसे स्वर्ग आदि का उपहार माना जाता है।[24] वस्तुतः मेंहदी के मांगल्य एवं पवित्रता की भावना के अनुरुप ही, इसकी उत्पत्ति के विषय में अत्यंत उदात्त और पवित्र परिकल्पनाएं प्रायः सर्वत्र प्रचलित हैं। कश्मीरी लोक-कवि ने, उक्त गीत में मेंहदी को 'तुलमुल' के कुण्ड से व्युत्पुत घोषित कर, निःसंदेह मेंहदी की पवित्रता का उच्चतम उदाहरण प्रस्तुत किया है।

एक गीत में मेंहदी को स्वर्ग से प्राप्त उपहार कहा गया है। मेंहदी को लाहौर[25] से डिब्बों से मंगवाया जाता है; इत्यादि। गीत इस प्रकार है :—

मअज आयि स्वर्गअ तअ मअज आयि पानय,
मअज़य कअर मेहरब अनिये।
लोहूरय मअज सय तति लअज काबन,
यतिकय्न बावन छि मअज रोल।

संस्कार्य-बालक की मेंहदी लगाते समय उपर्युक्त मंद लय के गीतों के

अतिरिक्त 'छकरि-बअथ' गाने की प्रथा भी कश्मीर में है। इन गीतों को स्त्रियां प्रायः द्रुत लय में गाती हैं। विषय की दृष्टि से इनमें 'वनवुन' जैसा भाव-गाम्भीर्य, रोचकता तथा साँस्कृतिकता नहीं होती, परन्तु लय एवं संगीत का आकर्षण इनमें अवश्य रहता है। इनमें अभिव्यक्त भाव किसी भी प्रकार के हो सकते हैं; विषय-वस्तु तथा शैली का प्रतिबंध इनमें नितान्त नहीं रहता, केवल उस प्रसंग का तीव्र टेक दिया जाता है, जिसके उपलक्ष्य में गीत गाया जाता हो; ऐसा करते समय भी मात्र लय पर बल दिया जाता है और भाव स्वछन्द रुप से प्रायः खण्डित ही अभिव्यक्त होते हैं।

३. ''दिवगोन'' : देवपूजन के गीत।

'मअज़्वरात' के बाद दूसरा प्रमुख कृत्य, जो यज्ञोपवीत तथा विवाह संस्कार पर समान रुप से किया जाता है; 'दिवगोन' का होता है। इस कृत्य का मुख्य प्रयोजन, सस्कार्य-व्यक्ति को 'मेखला' तथा अन्य यज्ञिय कृत्यों के लिये, स्नान एवं देव-आह्वान द्वारा शुद्ध करना है प्रकृति के अवयवों में शक्तिशाली तत्त्वों की परि-कल्पना करके, उनमें देवत्व की प्रतिष्ठा तदुपरान्त उनका आह् वान करने से ही प्रायः देवपूजा का आरभ माना जाता है।[26] जीवन की प्रत्येक विशेष घटना पर, आदिम-मानव का परिकल्पित शक्तियों का पूजन करता था। हर्ष तथा उल्लास की घटना पर भी वह देवस्तुति करता था और दुःख तथा विपाद के समय भी देवानुगृह के लिए वह सर्वदा प्रार्थना करता था। वस्तुतः इसी कारण संस्कार, रीति-रिवाज तथा अन्य अवसरों पर भी; ज़िनकी सामाजिक महत्ता एवं विशेषता स्पष्ट थी; देव आह् वान एवं पूजा-पाठ प्रासगिक रुप में होने लगे।[27] इस प्रवृत्ति को विश्व की प्रायः सभी जातियों में अब भी देखा जा सकता है। हमारे यहाँ संस्कारों पर देव-पूजन का विशेष महत्व वैदिकालीन संस्थाओं में भी रहा है।[28]

यज्ञोपवीत तथा विवाह सस्कार के अवसर पर, देव-पूजन की उक्त प्रवृत्ति, शास्त्रीय कर्मकाण्ड एवं लोक गीतों, दोनों में प्रायः सामान रुप से विद्यमान है।

''दिवगौन'' के आनुष्ठानिक-कृत्य पर छोटा सा यज्ञ किया जाता है। भिन्नि पर 'दिवतअ मून' (एक थापा-सा) बना दिया जाता है; जिस को देवता का प्रतीक मान कर पूजा जाता है।[29] इसके अतिरिक्त ':दिवतअमूल्य'[30] भी इसी अवसर पर पूजे जाते हैं और सम्मानपूर्वक नदी में प्रवाहित किए जाते हैं।

इस अवसर पर, जैसा कि स्पष्ट है, देव-आह् वान के विविध गीत गाये जाते हैं; जिन में राम, कृष्ण, वासुदेव, सूर्य, लक्ष्मण, सीता, शंकर, भवानी आदि देवी-देवताओं की आराधना विशेष रुप से हुई है। उदाहरण के लिए; निम्न पंक्तियों में सूर्य की वंदना की गई है। सीता, राम तथा लक्ष्मण के गुणों का वर्णन हुआ है। उनके वन-गमन तथा अनेक कष्टों के उल्लेख के अतिरिक्त संस्कार्य

बालक को वासुदेव-पुत्र, धर्मात्मा तथा कबूतर के समान[31] सुन्दर कहा गया है :—

पूरे खोतुखो सिर्यायिशो, दूरे करयौ नमस्कार ।
चम्रति छुख सारिनी प्राणाव्रेशो, स्वरिव तपरेवो सदाशव ।
सीतायि ओसुम स्वनसून्द कीशो, खअरिथ तअ नियिहम दण्डकवन ।
रामचन्दर तअ लखिमन सअत्य तस डेशो । स्वरिव० ।।
वासुदीव राज़नि धर्म-पोरोशो, जायि-जायि लद्थम देवानखान ।
सोठकुक धोय तय करु बोल-बोशो, कोतुर छुहोम च दिवगोनस प्यठ ।।

एक अन्य गीत में इसी प्रकार, बारहमासा शैली में देवपूजन का एक उत्कृष्ण उदाहरण प्रस्तुत हुआ है :—

चित्री फोलुहम यीरिवयेम पोशो, गोशस रटअथम जंगलन जाय ।
सोंतस तअ नवरेहस चअति छुख खोशो, स्वरिव तपरेषो सदाशव ।
आदन फोलुहम वादाम पोशो, गोशस रटअथम पर्वत जाय ।
जीठी फोलुहम गुलाब पोशो, गोशुस रटअथम थरि प्यठ जाय ।
हअरी फोलुहम चअति पम्पोश, गोशस रटअथम सरस मंज जाय ।
चम्रति छुख रग्रज़ण्यायि, वूतीश्वरस खोशो । स्वरिव ।।
श्रावन्य फोलुहम दततरी पोशो, गोशस रटअथम छोटस प्यठ जाय ।
चअति छुख सदाशवस खोशो । स्वरिव० ।।
बअदरिप्यत्य फोलुहम कपसे पोशो ।
कातिकय फोलुहम चअति कोंगुपोशो, गोशस रटअथम पोम्पुर जाय ।
जअति छुख ठोकुर सअबस खोशो । स्वरिव० ।।

(चैत्र मास में 'यिरिवयेम' (पुष्प-विशेष) जंगलों में खिलते हैं और बसन्त में 'बादाम' 'कौंस' तथा 'कनेर' के फूल, इन को शालिग्राम के अर्पित किया जाता है। ज्येष्ट तथा आषाढ में गुलाब तथा कमल खिलते हैं, इन्हें 'राज्ञिण्या' (भवानी) के मस्तक पर चढ़ाया जाता है। सावन में 'धतूरे' के पुष्प खिलते हैं, इन्हें शिव को अर्पित किया जाता है। इसी प्रकार भाद्रपद में 'कपास' की सुषमा दर्शनीय रहती है, यह इहलोक तथा परलोक दोनों के आवरण का कार्य करता है। इसके पश्चात् आश्विन में 'गेंदा' तथा कार्तिक में 'कुम-कुम' सुषमा भी देवानुकम्पा के ही प्रतीक हैं)।

साधारणतः कश्मीरी लोक-काव्य में बारहमासा-गीतों का अभाव है। उपर्युक्त गीत में बारहमासा शैली का जो सफल प्रयोग हुआ है, वह वास्तव में नूतनता का परिचायक है। बारहमासा में ऋतु-क्रम से प्रायः विरह-वर्णन ही मुख्य रहता है, पर यहाँ विभिन्न मासों में विकसित होने वाले रंगारंग फूलों द्वारा देवताओं की आराधना की गई है।

३·१· "श्राण" : स्नान ।

संस्कार्य-व्यक्ति के शुद्धिकरण के लिए प्राय: सभी अवसरों पर पहले स्नान किया जाता है। इस कृत्य से सम्बद्ध लोकाचार तथा गीत भी प्राय: विविध संस्कारों के समान ही होते हैं। संस्कार्य-व्यक्ति को घर के सम्मथ[32] ("वग्रज") में, चौकी पर बैठाया जाता है। चार छोटी बालिकाएं उसके ऊपर क्षीण कपड़ा पकड़ा देती हैं।[33] तब संस्कार्य-बालक का फूफा अथवा वंश का वयोवृद्ध व्यक्ति बालक को नहलाता है। इस कृत्य को 'गोड़-द्युन' भी कहते हैं। इस समय यह गीत गाया जाता है :—

वोशग्र नारि थविमय पोशग्र वज़ग्र लतिये,
मीखिल माहराज़स छु कन्य-श्राण ।
प्रभावती मामीन थवुय पोशग्र वग्रज़ लिविथ,
कृष्ण माहराज़स छु कन्य-श्राण ।
पीरि तल थवग्रमय मरेंद रग्रखये,
हकग्र ग्राई भवग्रनी ज़ापल ह्यथ ।।

अर्थात्; कृष्ण महाराज का स्नान हो रहा है। सारा सम्पथ पुष्पावृत है। मेखला संस्कार के लिए बालक को शुद्ध किया जा रहा है। बालक की मामी ने सम्पथ को सजाया है। परमेश्वर तथा भवानी बालक को आशीर्वाद देने के लिए स्वयं आये हैं।

४· "मेखला" : यज्ञोपवीत के गीत ।

'मेखला'[34] के यज्ञिय-कृत्यों को पूर्ण करने से पहले संस्कार्य-बालक गेरुए कपड़े धारण करता है। कटि के चारों ओर मेखला बांधता है। कौपनीय (स्नान-पट) धारण कर लेता हैं तथा 'अजिन'[35] (मृग-चर्म) भी पहनता है। मुण्डन संस्कार की भांति इस अवसर पर भी बालक का केशांत किया जाता है; तदुपराँत यज्ञ प्रज्जवलित होता है, उसमें घृत एवं विभिन्न सामग्री होम करके, निश्चित समय पर, शास्त्रीय पद्धति के अनुसार, बालक को गुरु एवं माता-पिता उपवीत-सूत्र पहनाते हैं। इस समय संस्कार का सबसे महत्वपूर्ण कृत्य तथा स्थूल-तत्व यही माना गया है। इसके पश्चात्, गुरु के इस उपकार के बदले, बालक भिक्षा मांगकर, उसकी दक्षिणा चुकाता है। पात्र लेकर वह सभी बंधु-बान्धवों तथा मित्रों से भिक्षा माँगकर, गुरु को अर्पित करता है।

"मेखला" का यज्ञ प्रज्जवलित करने ले लेकर, सांय यज्ञांत तक विभिन्न यज्ञिय-कृत्य किए जाते हैं, जिनके अनुरुप गीत भी गाये जाते हैं। अतः इन सब प्रकार के गीतों का, कृत्यानुकूल विवेचन करना यहां आवश्यक हो जाता है।

४·१· "अग्तग्र कोण्ड" : मंडप ।

यज्ञिय अग्नि प्रज्जवलिय करने के लिये मंडप सजाया जाता है, जिसे गोबर से पोथा जाता है। यह कार्य भी प्रायः बुग्रा ही करती है। तब यह गीत गाया जाता है। गीत का भावार्थ इस प्रकार है :—

अग्नि-मण्डप स्वर्ण ईटों से बनाया गया। अमृत और कुमकुम से इसे पोथा गया तथा 'भवानी' ने स्वयं आकर इसे पुष्पों से सजाकर पवित्र किया।

क्यसरि कनि कौंग तय, पानि कनि अमर्यथ,
सोम्बरअविथ खोरमय अग्नयकुोण्ड।
अग्नय कुोण्डस स्वनसंज़ग्र सेरे, ज़ोरे-ज़ोरे खोरमय अग्नयकुोण्ड।
अग्नय कुोण्डस न्यशतुर सोदुय, भवअन्य आब पोशलोव ह्यथ।

४·२· "वारिदान" : नेग।

"वारिदान"[36] का कृत्य बुग्रा के लिए विशेष होता है। उसको इस अवसर पर उचित नेग प्राप्त होता है। एक विशेष प्रकार के चूल्हे पर चावल पकाकर उनको मन्त्रोच्चारण के साथ होम किया जाता है। इस कृत्य को बुग्रा के अतिरिक्त किसी और से कराना वर्जित है।[37]

"वारिदान" से सम्बद्ध निम्न गीत में बुग्रा की प्रतिष्ठा का वर्णन करते हुए कहा गया है कि, "सुभद्रा बुग्रा ने 'सुलेमान'[38] की पवित्र मिट्टी तथा गंगाजल से 'वारिदान' बनाया। अर्जुन-भार्या के पवित्र हाथों द्वारा बना 'वारिदान' अत्यन्त पवित्र तथा उचित लगता है" :—

सुलेमान म्यच तय गंगय वाने, सुभद्रायि कोर वारेदान।
म्यचि तम्र पम्रनिस खम्रच खम्भीरय, गम्भीर खोर म्रसि वारेदान।
म्रसि कोर वारिदान सुभद्राये, अर्जुनदीवनि भार्याये।।

४·३· "हुम" : यज्ञ।

यज्ञिय अग्नि प्रज्जवलित करना यज्ञोपवीत संस्कार का विशेष कृत्य होता है। इसकी परम्परा अत्यन्त प्राचीन है। "अग्नि जीवन तथा प्रकाश का प्रतीक था, जिसकी प्राप्ति के लिए विद्यार्थी प्रयत्नशील था। यह भारत की विशेष धार्मिक गतिविधियों का केन्द्र भी रहा है।"[39] इसके अतिरिक्त, अग्नि को पावन भी माना गया है, अतः संस्कारों पर इसको अत्यन्त प्राचीनकाल से ही अधिक महत्व दिया जाने लगा।

'मेखला' संस्कार के लगभग सभी कृत्य अग्नि के समक्ष ही पूर्ण किए जाते हैं। आहुतियाँ होम करते समय जिन मन्त्रों का उच्चारण होता है, उनका शैक्षिक महत्व सर्वोपरि है। गीतों की दृष्टि से भी 'हुम' अत्यंत महत्वपूर्ण है। विभिन्न कृत्यों के परिचय के अतिरिक्त इन में सांस्कृतिक परम्पराओं, धार्मिक अनुष्ठानों एवं सामाजिक शिष्टाचार आदि पर भी प्रकाश पड़ता है।

जैसा कि ऊपर कहा गया, यज्ञ अथवा 'हुम' का दिन ही समग्र यज्ञोपवीत संस्कार का केन्द्र बिन्दु होता है। अतः उपवीत धारण करने का महत्वपूर्ण कृत्य भी इसी दिन पूर्ण होता है जनेऊ की अनिवार्यता तथा इसके महत्व की अभिव्यक्ति, गीतों में भी अत्यन्त मार्मिकता से हुई है। उपवीत के तीन सूत्र बनाने का भी अत्यन्त सुन्दर वर्णन हुआ है। ऐसे एक गीत में कहा गया है कि कृष्ण भगवान (संस्कार्य-बालक) के लिये वासुदेव के खेतों में कपास बोयी गई। ओस के बून्दों से वह फूटने लगी। ग्रामीण स्त्रियों ने सहर्ष उसकी गुड़ाई की और एक ही रात में वह उग कर काट ली गई, ओट ली गई और उसका उपवीत भी बना दिया गया।

सुमन कपसा ववनय आई, कृष्णजूने यछायि।
वासुदीव राज़न्यन डारन द्रायि, छूर दिनि ग्रीस-बायि आई।
रातस मन्ज़ स्वय तुलनय आई, कृष्णजूने यछायि।
वासुदीव राज़नि ज़िछि-ज़िछि कपसे, दपसे करसे योनेह् न।

कपास को हाथों-हाथ तैयार करके कातना आरंभ किया गया; 'देवकी' 'शारिका' (देवी), 'ब्रह्मा', 'नारायण' तथा अन्य देवी-देवता उसे कातने तथा उपवीत बनाने में जुट गए :—

रथ्य वुथ, तोसअ तअ अथ्य व्यछनोवुम, तथ्य करनोवमय योनह् न।
दिवकी व्यछुनुय कनिकि कतुय, योनि लदुयो नारअनी।
शारिकायि भगवती सथअर कतुय, योनि लदुयो नारअनी।।

जनेऊ पहनाने के विशेष कृत्य के समय, स्त्रियां मुक्त-कण्ठ से गीत गाती हैं। देव-आह्वान की गूंज अधिक तीव्र हो जाती है। "लक्ष्मी अग्नि-मंडप से उदित हो जाती हैं। गायत्री सुमीर से प्रकट होती है। अष्टादशभुजादुर्गा पर्वत से निकल कर पावन अग्नि में आहुतियां डालती है तथा तीन सूत्रों का मर्म भी बताती हैं" :---

अग्नय कुण्ड मन्ज़ लखमी द्राये, त्रयलड़ आये जन्म ह्यथ।
सुमेर अन्द्रय गायत्री द्राये, लोल पुतिस ह्यथ आये।
पर्वत अन्द्रय शारिका द्राये, कृष्ण माहराज़स गायत्री ह्यथ।
अर्दाहव नर्यव कस्नम स्वाहाये, लोल, पुतिस ह्यथ आये।

इसी प्रकार 'हुम' के अन्य गीतों में भी, संस्कार्य-बालक, उसके माता-पिता एवं ब्राह्मणों की मंगल कामना; कुल का मर्यादित परन्तु अतिरंजित वर्णन तथा यज्ञिय कर्म-काण्ड एवं लोकाचारों के अतिरिक्त, विभिन्न देवी-देवताओं का उल्लेख भी मार्मिकता से हुआ है। संस्कार्य-बालक की दीक्षा के लिये कभी गणेश उपस्थित होते हैं, कभी राम अथवा कृष्ण आकाश से पुष्प-वर्षा करते हैं और कभी यज्ञ-मण्डप से अग्नि देवता अवतरित होकर वातावरण को पवित्र करते हैं।

४.४. "ट्योक तय नअरिवन" : तिलक तथा मौली।

"तिलक" को यज्ञोपवीत के विधिविधानों में महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त है। इसे दीक्षा का प्रतीक माना जाता है। गीतों में तिलक का उल्लेख बार-बार आया है। कहीं नारायण, कृष्ण (बालक) को दीक्षा देते हुए विचित्र हुए हैं। और कहीं वासुदेव के घर के विद्वान् पंडित इस कार्य में सम्मिलित होते हैं :—

पूज़य व्यूठहम नारायण।
बड़ि आस बोल तय, कृष्णजूने लोलय।
शोलय दिवान ट्योकुय लाग।
वासुदीव राज़निस, गुर गण्ड आगस।
बड़ि ब्रह्मण कर दातस ट्योक ॥

'नअरिवन' (मौली) का कृत्य भी मेखला संस्कार पर किया जाता है। स्त्रियाँ[40] कानों में आभूषणों की भांति मौली को पहन लेती हैं। मौली को 'मेखला' संस्कार के मांगलिक अवसर का चिह्न समझा जाता है।[41] इसे डालते समय स्त्रियां अत्यंत भावपूर्ण गीत गाती हैं। इन में प्रायः इस मंगल एवं सौभाग्य चिन्ह का सांस्कृतिक वर्णन विशेष रूप से हुआ है। निम्न गीत में, बालक की माता को 'मौली' डालने पर बधाइयाँ दी जा रही हैं और उसे 'दण्डक-वन'[42] की तपस्विनी; राजा दशरथ की सुपुत्री; भीष्म-कन्या एवं सौभाग्यवती आदि कहा गया है :—

वासुदीव राज़न्य आन्तन मअली, दान्तन सअत्य सार नअर्यवन।
वासुदीव राज़न्य वान्यद कुरी, कानीय प्यठ सार नअर्यवन।
शाबास तस माजि यस याजि जाख, जायख तअ सअरिथ नअर्यवन।
विशमक राज़ान्य गाटिज कुरी, पअटिव खअर्यथय नअर्यवन ॥

४.५. "अबीद" : भिक्षा।

"भिक्षा" भी यज्ञोपवीत संस्कार का एक विशेष कृत्य होता है। गुरु के हृदय-स्पर्श एवं आशीर्वाद से बालक जनेऊ धारण कर, समाज में प्रविष्ट होने के योग्य हो जाता है। इस उपकार के लिये बालक, गुरु दक्षिणा चुकाने का व्रत लेता है। अतः भिक्षा मांगकर इस ऋण से उऋण होने का प्रयत्न भी करता है। भिक्षा के इस कृत्य को "अबीद" कहते हैं। बालक को सामाजिक दायित्व के प्रति जागरुक बनाने तथा समाज में प्रविष्ट होने से पूर्व व्रतपालन, शिष्टाचार तथा अनुशासित जीवन व्यतीत करने का, एक प्रकार का, पूर्वाभ्यास इस कृत्य में निहित है। यहां तक कि व्यक्ति के अनुकूल भाषा प्रयुक्त करने का पूर्वबोध भी बालक को इसी कृत्य द्वारा कराया जाता है। गृहस्वामिनी के लिये "भवति" शब्द का प्रयोग इसी तथ्य का परिचायक है।

"अबीद" के गीतों में भी प्रायः अन्य गीतों की भांति काल्पनिक सौन्दर्यपूर्ण अतिरंजित वर्णन द्रष्टव्य है। माता-पिता, बहिन, भाई, बुआ, मौसी, मामा आदि

इस अवसर पर सोने की अंगूठियां, असंख्य मोहरें तथा स्वर्ण मुद्रायें, भिक्षा-पात्र में डालते हुए चित्रित किए गए हैं।

अथन छिन्यमय स्वनसन्ज़ वअ्रजी, माजि ति गोहोम अबीदे।
दोहस फुयूरहोम आनय ड़बन, बबन ति गोहोम अबीदे ।।

४·६· "कलश" : समापन गीत।

"कलश" बादाम, अखरोट तथा जल से भरा जाता है; यज्ञारंभ के समापन तक इस का पूजन होता है। यज्ञिय अग्नि की समाप्ति पर इसका पवित्र जल उपस्थिति व्यक्तियों पर छिड़का जाता है और बादाम तथा अखरोट प्रसाद के रूप में बांटे जाते हैं। तब यह गीत गाया जाता है :—

कलश पूज कर वतुमि नरो, कृष्णजू तअ् हलदरो।
कलशस पूज कर दवेंतुल्ये, टापट कुलि वासुदीव राज़ान्यो ।।

"कलश" पूजने तथा प्रसाद बांटने के पश्चात् संस्कार्य-बालक के सिर पर सफेद पगड़ी बांधी जाती है। पगड़ी प्रष्टव्यता का प्रतीक है। अत: बालक को इससे विभूषित करने का अभिप्राय उसे उत्तरदायित्वपूर्ण सामाजिक जीवन के प्रति जागरुक बनाने का है। पगड़ी बांधने के पश्चात् बालक को मामा कन्धे पर उठा कर नदी तीर तक ले जाता है। स्त्रियाँ इस समय गोलाकार में घूम-घूम कर एक विशेष प्रकार का नृत्य करती हैं। इसे "अरनि-सेथ"[43] कहा जाता है। इसी के साथ गीत भी गाया जाता है। गीत में प्राय: विशेष टेक की आवृत्ति की जाती है, जिसमें संस्कार्य-बालक की माता के गुण, शीलता, सौन्दर्य तथा उसके आभूषणों का वर्णन प्रमुख होता है।

अस्य करव अरनि सेथ बेयि वनवुनगे।
हअ्र द्रायि नचनि तअ् सअ्र स्वनसन्ज़ये। अस्य० ।।
हारि गछ्यम डेजिहोर सुति स्वनसुन्दये। अस्य० ।।
हारि गछमय अटअ्होर सुति स्वनसुन्दये। अस्य० ।।

कभी कभी ऐसे अवसरों पर, टेकपूर्ण निम्न पंक्तियां भी गायी जाती हैं। इन में संस्कार्य-बालक को ही विभिन्न प्यारे नामों—मेरा तोता; मेरा भैया; मेरा प्यारा; आदि—से संबोधित किया गया है और इसी के टेक जोड़ दिए गए हैं। संगीत की दृष्टि से गीत अत्यंत मधुर एवं लयप्रधान है।

हम वथुम तअ् वेगि खतुम,
तोतअ् वथुम यारबल ।।
हुम वथुम तअ् वेगि खतुम,
राजअ् वथुम यारबल ।।
हुम वथुम तअ् वेगि खतुम

बोय वथुम यारबल ।।
हुम वथुम तथ्र नेगि खतुम,
टाठीय वथुम यारबल ।।

नदी तीर से लौटने पर सहभोज का आयोजन होता है । भोज में शाकाहारी भोजन परोसा जाता है । इसके बाद दूसरे दिन "कोशल होम" (समापन समारोह) मनाया जाता है । इस अवसर पर सामिष भोजन होता है और स्त्रियों में नेग बांटा जाता है । इसी के साथ ही यज्ञोपवीत सस्कार समाप्त होता है ।

टिप्पणियाँ—

१. "जन्मना जायते शुद्रः संकरात् द्विज उच्यते" ।। — मनुस्मृति

2. "..... the material element in this (Upnayan) cermony is the investment of sacred thread or **Yajnu, pavita.**" —Dr. N. Mackichend : **Encyclopeadia of Religion and Ethics**; (London, 1959) . Vol. II; p. 407.

3. Frazer : **Golden Bough**; (abridged) : "Chilhood of Man" (New York, 1969) II. Ed.; Vol. III; P. 422.

4. डा० राजबली पाण्डेय : हिन्दू संस्कार; (वाराणसी, १९६०); पृ० १४४.

5. "......a certain act of religion marks the second birth (Dvij); presents a parallel to the christian idea of "Baptism"...similar is the "Naujot" of Zorostrain religion." —**Encyclopeadia of Religion and Ethics**; Vol. II; p. 407.

6. हिन्दू संस्कार; पृ० १४५. ७. हिन्दू संस्कार; पृ० १४६.

8. "अष्टमेवर्षे ब्राह्मण मुपुनयते गमाष्टमेवा ।
एकादशे क्षत्रियन् । द्ववादमे वैश्यम" ।।

— पारस्कार गृह्यसूत्र; २/३

9. "The 'Yagnupavi' or sacred thread cermony is one of most important cermmonies in the life of a Kashmiri Pandit." —**Keys to Kashmir**; (Srinagar, 1950); p. 77.

10. वर्तमान कश्मीरी हिन्दू-समाज में सिवाय ब्राह्मणों के और कोई अन्य जाति नहीं । प्राचीन काल में सभी जातियाँ रही होंगी क्योंकि कल्हण की "राजतरंगिणी" में कई जातियों का उल्लेख मिलता है । ग्यारहवीं-बारसवीं शताब्दी के बाद कश्मीर में मुसलमानों के आगमन के साथ, साथ, यहाँ की निम्न जातियों में धर्म परिवर्तन की प्रक्रिया आरम्भ हुई लगती है जो वस्तुतः उन्नीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ तक जारी रही

जब कश्मीर पुनः हिन्दू राज (सिक्खों का) स्थापित हुआ। इस दीर्घ-काल में केवल ब्राह्मण-वर्ग ही धर्म परिवर्तन से बचा रहा। जैनुल्लाब-दीन (बड़शाह) के समय राज्य की भाषा फारसी हो गई, अतः कई ब्राह्मणों ने इस को ग्रहण कर राज्य-सेवाओं में सक्रियता से भाग लेना आरम्भ किया; जबकि एक कट्टर वर्ग संस्कृत एवं अन्य प्राचीन धार्मिक भाषाओं के साथ ही चिपका रहा। यह वर्ग भाषा-वर्ग (बाछअ बट्टअ) और पहला वर्ग 'कारकुन' कहलाया। आज भी समग्र ब्राह्मण-वर्ग उसी प्रकार विभाजित है। अधिक जानकारी के लिए देखिए :—

(क) डा० जवाहर लाल हण्डू। कश्मीरी और हिन्दी के लोकगीत : एक तुलनात्मक अध्यय; विशाल (कुरुक्षेत्र, १९७१).

(ख) Dr. T. N. Madan : **Kinship and Family A Study of the Rural Pandits of Kashmir**; (Delhi, 1965).

11. देखिए :—

(क) डा० कृष्णदेव उपाध्याय : लोकसाहित्य की भूमिका : (इलाहाबाद, १९५७); पृ० ५८. (ख) हिन्दू संस्कार; पृ० १७९.

(ग) डा० चिन्तामणि उपाध्याय। मालवी लोकगीत एक विवेचनात्मक अध्ययन; पृ० १४१.

12. इन गीतों को 'वनवुन' कहा जाता है। 'वनवुन' विशेषतः किसी भी शुभ संस्कार सम्बन्धी गीत को कहा जाता है। लोकमानस में यह शब्द अब रूढ़ हो गया है और प्रायः मंद लय के किसी भी लोकगीत, चाहे वह प्रणय सम्बन्धी हो अथवा अन्य विषयक, के लिये भी प्रयुक्त होता है।

13. Lawarance, A. : **The Valley of Kashmir**; (London, 1895); p. 260.

14. 'वअर' एक विशेष प्रकार की नमकीन खीर-सी होती है। इसमें प्रायः मांस भी डाला जाता है। अन्त्येष्टि को छोड़कर, शेष सभी संस्कारों पर इसे बनाकर निकट सम्बन्धियों में बांटा जाता है। 'वअर' पकाना मगल-सूचक माना गया है।

15. कश्मीर में ऐसे अवसरों पर 'इस्बन्द' जलाकर बधाइयां दी जाती हैं। 'इस्बन्द' विशेष प्रकार के तिल के दाने जैसे होते हैं; जिन्हें अग्नि में डालते ही सुगन्ध फैल जाती है। 'इस्बन्द' के दानों को, शरीर के किसी भी अंग से छूकर, अग्नि में जलाया जाता है, बधाइयां देने का यही रूप कश्मीर में प्रचलित होता है। इसमें दुष्प्रभावों से मुक्त करने की शक्ति भी मानी जाती है।

16. शुभ संस्कारों से सम्बद्ध अधिकांश कश्मीरी लोकगीत प्राय: 'शुकुल' शब्द से आरम्भ होते हैं। ऐसा लगता है कि यह शब्द मूलत: विष्णु के निम्न प्रसिद्ध श्लोक से उद्धृत है :—

शुक्लाम्बरधरं विष्णुं शशिवर्णं चतुर्भुजम्।
प्रसन्नवदनं ध्यायेत् सर्वविघ्नोपशान्तये ।।

दे० :—सूक्तिसुधाकर; पृ० १५; (गोरखपुर, सं० २००७)

अर्थात्;

"शुक्ल वस्त्रधारी, चन्द्रमा जैसे वर्ण वाले, चतुर्भुज, प्रसन्नमुख विष्णु का, सब विघ्नों की शान्ति के लिए ध्यान करना चाहिए।"

व्यावहारिक जीवन में भी प्राय: कश्मीर में सभी शुभ कार्यों का श्रीगणेश इसी श्लोक से किया जाता है। ऐसा प्राय: सर्वसिद्धि के अभिप्राय से किया जाता है। यद्यपि भारतीय देवमाला के अनुसार 'गणपति' सिद्धि का देवता है। अत: इसीलिए प्रत्येक कार्य के शुभ समापन एवं सिद्धि के लिए उसी का आह्वान किया जाता है। परन्तु यह एक बिडम्बना है कि यहाँ इस कार्य के लिए विष्णु को चुना गया है। जो भी हो यह श्लोक कश्मीरी जनमानस में अधिक प्रचलित है और संभव है कि पहले गीतों में भी सम्पूर्ण श्लोक जोड़ा जाता हो और कालान्तर में प्रक्षिप्त होकर मात्र 'शुक्लं' शब्द चिह्न-रूप में रह गया हो; जो वस्तुत: आज भी दृष्टिगत है।

17. हर्षनन्दिनी भाटिया : "सौभाग्य का चिह्न : सिन्दूर की मांग"; धर्मयुग; नवम्बर २५, १९६२।

18. "The Myrtle was held sacred to Venus and is used as an emblem of love."
—**The Oxford English Dictionary**; Vol. VII; P. 813.

19. "To the Jews myrtle signifies and beauty of God......In Greece its evergreen quality signifies immortality."
—**A Standard Dictionary of Folklore; Mythology and legend**; Editor, M. Leach; (New York) Vol. II, p. 776

20. "In England it is considered lucky to have myrtle growing around." —**Ibid.**

21. "Medieval German brides wore myrtle wreaths to their weddings." —**Ibid.** p. 777.

२२. कश्मीर का एक पवित्र कुण्ड, जिसकी पवित्रता एवं महिमा को लोकमानस में सर्वोपरि माना जाता है। यहां कुण्ड में स्थित 'रग्नज्ञण्या' देवी का मंदिर भी है। जेष्ट अष्टमी के दिन यहाँ मेला भी लगता है।

23. "One of the many origin stories of myrtle (henna) says that it was the chief scented tree in the Garden of Eden, and Adam was, therefore allowed to take it with him."
—A Standard Dictionary of Folklore, Mythology and Legend: Vol. II, p. 776.

24. **Ibid**

२५. विभाजन के पश्चात् इस स्थान पर अब 'दिल्ली' शब्द प्रयुक्त होने लगा है, जो स्वाभाविक ही है। प्रायः देखा गया है कि गीतों में कई ऐसे विशेष स्थानों के नाम आते हैं, जिन का गीत के विषय से कोई संबंध नहीं होता; परन्तु एक आदर्श अथवा अतिरंजना की व्यंजना के लिए उनको उद्धृत किया जाता है। जैसे उक्त गीत में एक अच्छे शहर की मेंहदी को 'लाहौर' शब्द से व्यक्त किया गया है। खड़ीबोली के कई गीतों में भी इसी प्रकार 'जयपुर' 'दिल्ली' आदि शहरों के नाम आये हैं। कारण सम्भवतः यह हो सकता है कि लोक-कवि की कल्पना भी एक विशेष दायरे में ही सीमित रहती है। कश्मीर के लोक-कवि के लिए संसार का उच्चतम शहर 'लाहौर' (और विभाजन के बाद 'दिल्ली) हो सकता था और खड़ीबोली-प्रदेश के कवि के लिए 'जयपुर' अथवा 'दिल्ली'।

26. A. F. Alfered, Hillebrandit : "Hindu worship" :
—Encyclopeadia of Religion and Ethics; Vol. III, p. 795.

27. "......many rites having obvious social values, Marriage rite etc. are connected with worship incidently."
—Ibid, p. 1754.

२८. हिन्दू संस्कार : पृ० २६६।

२९. धार्मिक पूजा का, इस प्रकार का प्रतिकात्मक रुप विश्वव्यापी है और सभ्य एवं असभ्य सभी तरह की जातियों में देखा जा सकता है। भारत की बहुरंगी विविध संस्कृतियों में पूजा का यह रुप अधिक पनप गया है, जिसका मूलाधार हमारे यहाँ की धार्मिक विचारधाराएं रही हैं।

३०. आटे की बनी छोटी आकृतियाँ, जो विभिन्न देवी-देवताओं के प्रतीक-रुप में पूजी जाती है। यहाँ भी धार्मिक पूजा का वही प्रतीकात्मक रुप निखर उठा है, जिस का हम ऊपर उल्लेख कर चुके हैं। इस सम्बन्ध में निम्न पंक्तियाँ भी उद्धरणीय हैं :—

"Symbolism is a universal method of religion."

—**Encyclopeadia of Religion and Ethics; Vol. p. 26.**

३१. कश्मीरी साहित्य, विशेषकर लोकसाहित्य में, 'कबूतर' सौन्दर्य एव ओज का प्रतीक माना गया है। पुल्लिग सौन्दर्य के लिए 'कबूतर' तथा स्त्रिलिग सौन्दर्य की अभिव्यक्ति के लिए 'कबूतरी' का प्रयोग लोक गीतों में कई स्थलों पर हुआ है। संयुक्त रुप से, विशेषकर विवाह सम्बन्धी गीतों में वर एवं वधु की सुन्दर जोड़ी के अद्वितीय सौन्दर्य की अभिव्यक्ति 'कबूतरों के जोड़े,' की साधारण ग्रामीण उक्ति द्वारा किया गया है। पशुपक्षियों के माध्यम से मानवीय सौन्दर्य की इस प्रकार की अभिव्यक्ति के अनेक उदाहरण हमें अन्य जनपदीय लोक गीतों में भी मिलते हैं। इन में विशेष उल्लेखनीय हैं; 'मैना', 'तोता', 'सुग्रा', 'बुलबुल', 'शेर,; ग्रादि।

३२. कश्मीरी हिन्दू प्रायः सभी संस्कारों पर स्नान (अर्थात्-शुद्धि करण) का कृत्य घर के सम्पथ ('वग्रज्ञ') में ही करते हैं।

३३. इन चार कन्याओं के कारण ही इस कृत्य का नामकरण "कन्य-श्राण" (कन्याओं द्वारा स्नान) हुआ जान पड़ता है। कन्याओं का यह कार्य अत्यन्त पवित्र माना जाता है।

३४. यज्ञोपवीत संस्कार के लिए कश्मीर में 'मेखला' शब्द सर्वाधिक प्रचलित है। इसके अतिरिक्त "यज्ञन्योपवीत"; "योनि"; "अरनि-सेथ"; भी इसी के पर्यायवाची शब्द हैं।

३५. "अजिन" शब्द का अर्थ, मृग अथवा बकरे आदि के चर्म से है। इसे ब्रह्मचार्य के वैदिक तथा आध्यात्मिक सर्वोच्चता का प्रतीक माना जाता है।
दो:—हिन्दू संस्कार; पृ० १७६।

३६. "वारिदान" एक विशेष प्रकार का वहणीय (Portable) चूल्हा होता है। इस पर रीतिपालन हेतु बुआ चावल पकाती है। इस कृत्य का प्रयोजन नेग प्राप्ति होता है।

३७. यदि सस्कार्य-बालक की बुआ न हो अथवा उसकी मृत्यु हुई हो, तो किसी भी स्त्री को नाम मात्र के लिए अस्थाई बुआ बनाकर, कृत्य पूरा किया जाता है। नेग भी उसी को मिलता है।

३८. श्रीनगर स्थित शंकराचार्य पहाड़ी के के लिए मुस्लिम-समाज में प्रचलित शब्द। हिन्दुओं में इस शब्द का प्रचलन, स्पष्टतः मुस्लिम प्रभाव को परिलक्षित करता है।

39. हिन्दू संस्कार; पृ० १७८.

40. इसे केवल संस्कार्य-व्यक्ति के कुल की स्त्रियां ही करती हैं। जैसे; माता, चाची, बुआ, भाभी आदि।

41. जिस विवाहित स्त्री को, जितनी शीघ्रता से जीवन में 'नअरयवन' डालने का सुअवसर प्राप्त होता है, उसे उतनी ही शीघ्रता से संतान-सुख भी प्राप्त होता है, लोकमानस में ऐसा विश्वास प्रचलित है।

42. "दण्डक-वन" को यहाँ पर कश्मीर का "चित्रकूट-वन" समझ लेना चाहिए। जिस प्रकार देवी-देवताओं के तप-त्याग एवं तपस्या के लिए रामायण एवं भारतीय लोक-काव्य के कई स्थलों पर "चित्रकूट-वन" का चित्रण हुआ है; उसी प्रकार कश्मीरी रामायण तथा लोकसाहित्य में "दण्डक-वन" (जो स्थायीय वन है) का चित्रांकन हुआ है। साहित्य स्थानीय प्रभाव का यह एक ज्वलंत उदाहरण है।

43. "अरनि-सेथ"; मूलत: सस्कृत के "अरुण-व्रत" का अपभ्रंश प्रतीत होता है अत: "अरुण" स्पष्टत: सूर्य उपासवा अथवा सूर्य-व्रत का परिचायक है। कश्मीर में यज्ञोपवीत सस्कार के लिए 'मेखला'; 'योनि' तथा 'यज्ञन्योपवीत' के अतिरिक्त, 'अरनि-सेथ शब्द भी बहु-प्रचलित है। बहुधा देखा गया है कि यज्ञ-मण्डप पर भी विभिन्न रंगों का सूर्य-मंडल ("सोर-चक्र") बनाया जाता है, जिसे निरन्तर पूजा जाता है। वस्तुत: सूर्य-उपासना इस संस्कार का विशेष कृत्य है और "अरनि-सेथ" (अरुण-व्रत) इसी का द्योतक है। इसके अतिरिक्त जिस स्थान पर स्त्रियाँ यह नृत्य करती हैं, वहाँ भी सूर्य की एक गोलाकार आकृति (व्यूग) बनी रहती है। "अरनिसेथ" कश्मीरी हिन्दू-समाज में प्रचलित मात्र लोक-नृत्त है इसमें लोक-नृत्य के पर्याप्त आदिम तत्व अन्तर्निहित हैं। बिना किसी कला-कौशल के, जिस साधारण ढंग से स्त्रियाँ यह नृत्य करती हैं; उसमें निःसन्देह नृत्य-कला सम्बन्धी आदिम तत्वों की उपलब्धि होती है। विवाह तथा यज्ञोपवीन के अवसर पर यह नृत्य समान रूप से किया जाता है।

जम्मू के पर्वतीय प्रदेश में प्रचलित शिव सम्बन्धी अनुष्ठान

डॉ० शिवनाथ कृष्ण कौल

अभीष्ट फल की कामना और देव तुष्टि के हेतु किए गए कर्म काण्ड पूर्ण कृत्यों को अनुष्ठान कहा जा सकता है। अनुष्ठानों के अन्तर्गत आने वाले उत्सवों में, पर्वों और त्योहारों की अपेक्षा, सामूहिक आनन्दोत्सव की अभिव्यक्ति के स्थान पर लोक देवों, पितरों आदि के प्रति निष्ठा की अभिव्यक्ति रहती है। अथवा इस का स्थान अनिष्ठ से रक्षा और भविष्य की मंगल कामना ने ले लिया है।

पर्वतीय अनुष्ठानों को मनाने में समय अथवा स्थान की किसी नियमित प्रणाली का प्रचलन नहीं। उनको मनाने का क्रम अनियमित है। वह एक ही वर्ष में कई बार और कई वर्षों के अन्तर से भी मनाए जा सकते हैं।

इन अनुष्ठानों का सम्बन्ध देवी देवताओं से पशुओं अथवा अनिष्ठ निवारण से हो सकता है। अनेक प्रकार के पर्वतीय लोक देवों में से शिव पर्वतीय लोक जीवन में सर्वाधिक पूज्य देव लोक हैं। उन्हें लोक में शामी (शमन करने वाले, घूड़ (धूल रमाए हुए), भोले (शीघ्र प्रसन्न होने वाले) अथवा शिब (शिव) नाम से जाना जाता है। वह गड़रयों (गद्दी जाति के लोगों के) अपने देवता हैं। इसी कारण देवताओं से सम्बन्धित अनुष्ठानों में हमें शिव से सम्बन्धित अनुष्टान ही सर्वाधिक रूप से उपलब्ध होते हैं। इन सब का विवरण इस प्रकार हैं।

१. पट्‌ल पूजा:–शिव सम्बन्धी यह अनुष्ठान एक दिन में मनाया जाता है। शिव के उपासक अथवा पुजारी जिस लोक में भण्डारी अथवा जोगीके नाम से जाना जाता है) के पास ताम्र का बना एक बड़े आकार का पात्र रहता है जिसे "पट्‌ल" के नाम से पुकारा जाता है। किसी मनौती के पूर्ण होने पर अथवा उसके पूर्ण होने की अभिलाशा में यह अनुष्ठान मनाकर इसी विशेष पात्र की पूजा की जाती है। पूजा के समय "पट्‌ल" को अन्न, रोट्ट घी तथा गुड़ मिला कर पकाई गेहू की मोटी रोटी) इत्यादि से भर कर शिव पूजारी को भेंट किया जाता है। और इस के उपरान्त आमन्त्रित जनों को भोज दिया जाता है।

२. खडाह :—खडाह दो दिन तक चलने वाला शिव यज्ञ है। जब मनौती अपेक्षा कृत कुछ बड़ी हो तो इसे मनाया जाता है। कभी कभी इसे पितरों से सम्बन्धित कर के भी मनाया जाता है। खडाह रात्री में भी चलने वाला अनुष्ठान है। इस में एक मट्ट (मट्टी से बना एक बड़ा मटका) कलश के रूप में पूजा जाता है। इस में कोडलों (कोदों-पहाडी अन्न विशेष) का, घेसू और जल डाला जाता

है। "पट्ल" भी भरा जाता है और दोनों की पूजा की जाती है । मट्ट के ऊपर
"छट्टमाला" (छत्र से युक्त माला) लटका दी जाती है और इस की भी पूजा होती
है। इस के उपरान्त भोज दिया जाता है।

उपर्युक्त पर्वतीय प्रदेश के भलेस क्षेत्र में खडाह के अनुष्ठान हेतु कोई न्योता
नहीं दिया जाता । अनुष्ठान के प्रति निष्ठा के अनुसार जिस किसी व्यक्ति के
कान में यह ध्वनि पड़ जाय कि अमुक स्थान पर अमुक परिवार ने इसे मनाने का
निश्चय किया है, उस के लिए उस में सम्मिलत होना अनिवार्य हो जाता है । पूजा
से पहले के भोज में तो ब्राह्मण भी सम्मिलित होते हैं, पर रात्री पूजन और इस
से आगे के अनुष्ठान में वे भाग नहीं लेते । भोज के समय को वृन्दा अथवा गृहनी,
पांत में बैठे हुए लोगों की थालियों में एक बार आरम्भ की हुई घी की धारा उस
समय तक निरन्तर उढेलती रहती है जब तक कि पांत में बैठे प्रत्येक व्यक्ति को
घी परोसा न जाय । इस कार्य में वह अपनी किसी सहयोगिनी की सहायता भी
लेती है ताकि घी की यह धारा अन्त तक निर्बाध रूप से परोसी जाती रहे । (बदली
हुई परिस्थितयों में अब ऐसा प्रचलन समाप्त हो गया है)

३. प्याला :—(शिव से सम्बन्धित सब प्रकार के अनुष्ठानों में 'प्याला'
सबसे बड़ा अनुष्ठान है, जो दो या तीन दिन तक मनाया जाता है । अन्य अनुष्ठानो
के समान ही इसे भी किसी मनौती के पूर्ण होने पर मनाया जाता है भण्डारी द्वारा
पट्ल भरा जाता है और मट्ट की स्थापना की जाती है । इस में कोदों का आटा
तथा भंग और धतूरे के कुछ बीज डाल दिए जाते हैं । मट्ट की स्थापना करने पर
एंज्ञालियां (भक्तिगीत) गाई जाती हैं मट्ट की स्थापना की पूर्व सन्ध्या को एक सार्व-
जनिक भोज दिया जाता है । दूसरे दिन भी शिव की पूजा चलती है और भोज का
आयोजन रहता है रोट्ट पकाए जाते हैं । तीसरे दिन मट्ट का पेय सब को नैवेद्य रूप
में दिया जाता है । अनुष्ठान की समाप्ति पर एक बड़ा भेड़ मारा जाता है ।
भण्डारी इसे पकाते हैं और खाते हैं ।

४. नवाला :—गद्दी लोगों का शिव सम्बन्धी अनुष्ठान है । इसे रात में
मनाया जाता है । इस में मट्ट नहीं भरा जाता परन्तु ऊन अथवा रुई के धागे से
बनी अट्लमाला की पूजा की जाती है । नैवेध के रूप में एक प्रकार के पेय (जो के
आटे का घोल) का उपयोग किया जाता है ।
शिव के धन्यवाद प्रदर्शन

५. गुसेतन :—किसी इष्ट सिद्धि के उपरान्त शिव के धन्यवाद प्रदर्शन
हेतु किया जाने वाला शिव अनुष्ठान है । कार्यविधि नियमित है ।

६. बगनी :—डुग्गर के इस सामूहिक शिवयज्ञ के अनुरुप ही इसे उपर्युक्त
पर्वतीय क्षेत्र में भी मनाया जाता है । सामूहिक भोज, शिवपूजा और पेय के रुप में
किसी अन्न के आटे का "प्याले" जैसा घोल, अनुष्ठान की विशेषता है ।

७. घणचक्क :—निश्चित तिथि पर सब सम्बन्धियों और मित्रों को रात्री का भोजन कराया जाता है। इसके पश्चात नए सिरे से रसोई बनाकर शिव पूजा प्रारम्भ की जाती है। धरती पर अन्न की एक ढेरी रख दी जाती है और उस पर अन्न सर भर कर एक कलश रख दिया जाता है। अब कलश के ऊपर "छट्‌ल-माला" लटका कर उसकी पूजा प्रारम्भ की जाती है। आटे से छोटे-छोटे पूए पकाए जाते हैं और कुछ रोटी भी। कुछ देर की पूजा के बाद जिठोतर (पूजा पर बैठा वयोवृद्ध) कलश से अन्न निकाल कर उसमें पूए इत्यादि भर देता है और उसे पहले स्थान पर रख देता है। फिर सारी रात पूजा होती रहती है और जोगी द्वारा एंजलिया गाई जाती हैं। प्रातः अनुष्ठार निमित लाया भेड़ू मारा जाता है और उस के सिर तथा एक खुर को कलश के सम्मुख रख दिया जाता है। अब आतों को भून कर इसे पूए आदि के साथ थोड़ा-थोड़ा, शिव प्रसाद के रुप में सब में बांट दिया जाता है। इसके उपरान्त शेष मांस पकाकर पहले भण्डारी को, फिर जोगियों को भोजन कराकर सभी आमन्त्रि अपने-अपने घरों को चले जाते हैं।

८. शंख ढाल :—एक विशेष प्रकार का अनुष्ठान है जिसे उपर्युक्त प्रदेश के कुड़धार तथा देसा आदि क्षेत्र में मनाने का प्रचलन है। लोक विश्वास के अनुसार अनुष्ठान का कार्यक्रम किसी अन्य को बताना वर्जित है। केवल वे लोग ही इसके उपक्रम को जानते हैं जिनके परिवार में इसे मनाने का प्रचलन हो अथवा जो इसमें सम्मिलित होते हों। फिर भी अनुमान है कि इस अनुष्ठान को सम्बद्ध परिवार कुछ वर्षों के अन्तर से मनाते हैं।

अनुष्ठान के दिन घर के सभी किवाड़ादि बन्द कर दिए जाते हैं और घर के भीतर किसी भेड़ बकरी की बलि दी जाती है और उसका माँस पका लिया जाता है। पशु बलि का आयोजन न रहने पर कोई मिष्टान्न ही बना लिया जाता है। पकाए हुए पदार्थ को सभी सदस्यों तथा आमन्त्रित व्यक्तियों में परोसा जाता है। इस प्रकार प्रत्येक व्यवित को जो कुछ मिले उसे पूर्ण अंश में खा लेना, अनुष्ठान में भाग लेने वाले सदस्य के लिए, अनिवार्य होता है। पशु की पूंछ, हड्डियां इत्यादि घर के भीतर ही कहीं दबा दी जाती है। अनुष्ठान समाप्त होने पर ही लोक घर से बाहर निकलते हैं।

राष्ट्रीय कवि—
अब्दुल अहद 'आजाद'

डॉ० अमर नाथ 'प्रशान्त'

राष्ट्र के अन्तर्गत भौगोलिक, सीमा, जनशक्ति, तथा जन संस्कृति की रक्षा की भावना को ही राष्ट्रीयता के सौरभ से सुगन्धित किया जाता है। जब कोई कवि राष्ट्र की संस्कृति को लेकर, राष्ट्र के विचार राष्ट्र की भाषा में प्रकट करके, किसी काव्य का प्रणयन करता है तो वही काव्य-कृति राष्ट्रीय काव्य कहलाती है। इस प्रकार जिस काव्य में भूमि, जन और जन संस्कृति की रक्षा एवं उन्नति की भावना पुंजीभूत हो, उसे राष्ट्रीय काव्य कहा जाता है।

उपयोगिता की दृष्टि से काव्य में राष्ट्रीयता का स्थान विशेष महत्व का अधिकारी है। कविता वही सफल एवं उच्च कोटि की समझी जाती है जो पाठक पर अपना प्रभाव डाल सकती है। काव्य पाठ करते समय यदि पाठक के हृदय के तार झंकृत न हों उठें तो उस कविता का कोई प्रयोजन ही नहीं। इस प्रकार कविता में उद्देश्य एवं उपयोगिता का गुण आवश्यक माना गया हैं। कवि लोग नाना उद्देश्यों एवं भावनाओं को लेकर काव्य रचना करते हैं और पाठक को इनसे आनन्दित करने का सफल प्रयास करते हैं। पाठक भी इन श्रेष्ठ कृतियों के प्रति सहज ही प्रभावित हो उठते हैं और प्रेरणा ग्रहण करते हैं। राष्ट्रीय कविता के माध्यम से कवि का यही प्रयोजन रहता है कि वह सुप्त तथा शोषित जनता में चेतना का संचार कर सके। वह पीडित जनता के मन में अपनी वाणी से वर्तमान अन्याय के प्रति असंतोष उत्पन्न करता है और साथ ही अतीत के गौरव की स्मृति दिलाकर उनमें आत्म गौरव तथा अहं को जाग्रत करता है। कवि अन्याय का निवारण करने के लिये क्रान्ति का मार्ग दिखाता है और साथ ही भविष्य के राष्ट्र निर्माण की भी प्रेरणा देता है। वास्तव में राष्ट्रीय कविता जन कल्याण के मार्ग पर पथ-प्रदर्शक का काम करती है।

राष्ट्रीयता की दृष्टि से कश्मीरी साहित्य का प्राचीन रूप अधिक महत्वपूर्ण नहीं है। वीर वंदना एवं वीर गायन को हम राष्ट्रीय काव्य का एक अंग मानते हैं, इस प्रकार कश्मीरी साहित्य में हमें राष्ट्रीय भावना का रूप इसी वीर वंदना में मिलता है। दार्शनिक आध्यात्मिक तथा रहस्यवादी काव्य-भार ने वीर कविता को पनपने का अवसर ही नहीं दिया, परन्तु फिर भी किसी न किसी रूप में कश्मीरी साहित्य क्षेत्र में उस काव्य कुसुम का बीजारोपण होता रहा। प्राचीन लोक गीतों में भी उसका रूप सुरक्षित रहा है। 'बाणासुर वध' १५ वीं शताब्दी का

एक प्रेमाख्यानक काव्य है, जो वीर तथा शौर्य पराक्रम की भावना से ओत-प्रोत है। उसके अतिरिक्त पण्डित प्रकाश भट्ट का रामायण 'रामावतार चरित' के पृष्ठ भी वीरता के जयघोष से गूंज उठे हैं। ये दोनों ही कृतियाँ पौराणिक भाव भूमि पर आधारित हैं तथा प्राचीन कश्मीरी साहित्य के रूप में इनका विशेष महत्व है। १९ वीं शती के मध्य तक फारसी के कई वीरगाथा काव्यों का कश्मीरी अनुवाद किया गया जिनमें अब्दुल वहाब परे का 'शाहनामा' और 'अकबर नामा', अज़ीज़ उल्लाह हक्कानी का 'मुहम्मद गज़नवी' तथा असद परे का 'सिकन्दर नामा' उल्लेखनीय हैं। परन्तु ये सभी काव्य राष्ट्रीय कविता की केवल आंशिक मात्र ही पुष्टि कर पाते हैं, क्योंकि ये मुख्य रूप से वैयक्तिक और एकांकी ही हैं। इनमें राष्ट्रीयता के महान आदर्शों का सम्यक परिपाक नहीं हो पाया है।

बीसवीं शताब्दी तक आते-आते कश्मीरी कविता अपनी शैशवावस्था को त्याग कर प्रौढ़ावस्था को प्राप्त हुई। कवियों ने अपने संकुचित तथा वैयक्तिक दृष्टिकोण को विदा करके विस्तृत एव सामूहिक दृष्टिकोण को अपनाया। देश की सुरक्षा तथा जन कल्याण की भावना अब कविता का विषय बना। देश के स्वतन्त्रता आन्दोलन का गर्जन कश्मीर की भूमि में भी सुनाई पड़ा। और परिणाम स्वरूप यहाँ की जनता भी स्वतन्त्रता के लिये संघर्ष करने लगी। कविता के क्षेत्र में आमूल परिवर्तन हुआ। काव्य प्रवृतियों में राष्ट्रीयता अधिक बल पकड़ने लगी। कवि लोग अपनी प्रभावपूर्ण वाणी से स्वतन्त्रता आन्दोलन की जड़ें सशक्त करने लगे और जनजागरण का पुणीत कार्य-भार अपने हाथों में ले लिया। इन कवियों में स्वर्गीय गुलाम अहमद 'महजूर' श्री अब्दुल अहद 'आज़ाद', गुलाम हसन वेग 'आरिफ' तथा दीनानाथ नादिम' के नाम उल्लेखनीय हैं और महत्व की दृष्टि से 'आज़ाद' का नाम अपने इन समकालीन राष्ट्रीय कवियों में सर्वप्रथम लिया जा सकता है।[1]

कश्मीरी काव्याकाश में स्वर्गीय अब्दुल अहद 'आज़ाद' की भाव रश्मियों से इस प्रदेश का कण-कण दीप्तिमान हो रहा है। काव्य क्षेत्र में वे असाधारण महत्व के अधिकारी तो हैं ही पर राष्ट्रीयता की दृष्टि से वे कश्मीरी काव्य गगन के दिनकर हैं। वे अपनी सशक्त लेखनी से सदा कश्मीरियों का पथ प्रशस्त करते रहे। शोषण के प्रति विद्रोह की भावना को जगाने के लिये उन्होंने अपनी लेखनी का सशक्त सम्बल अपनाया और एक राजनीतिक योद्धा के समान जन कल्याण का कार्य करते रहे। जनता के दु:ख-सुख में अपना दु:ख-सुख अनुभव करने वाले, मानवता के पुजारी 'आज़ाद' ने मानव मात्र के लिए ही अपनी साहित्यिक सेवायें

१. दि ग्रेटेस्ट पोइट ऑफ मॉडर्न कश्मीर इज़ अब्दुल अहद आज़ाद। ही डिजर्वज़ टु बी काल्ड अ रेवोल्युशनरी एण्ड मास्टर ऑफ कल्चरल रेमासाँ"
'कश्मीर में स्वतन्त्रता आन्दोलन' श्री प्रेम नाथ बज़ाज पृ० २९९

अर्पित की। उनका समस्त काव्य राष्ट्रीयता के जयघोष से गूंज उठा है।

देश प्रेम की भावना कवि की रचनाओं में कूट-कूट भरी हुई है। वे अपनी स्वर्ग तुल्य घाटी के सौन्दर्य पर झूम उठते हैं और उसके लिए अपना सर्वस्व न्योछावर करने को तैयार हैं। प्रकृति के इस भूखण्ड पर जन्म पाकर वे अपने को धन्य समझते हैं और इसके असीम सौन्दर्य को निहारते हुए परम आनन्द का अनुभव करते हैं :

"मेरा देश कितना सुन्दर है ? इसे देखते-देखते मेरा तन-मन खिल उठता है। इसकी राहों पर मेरा यह मन तथा प्राण न्योछावर हो और मेरे देश को बधाई हो।[1]

जिस स्वर्ग लोक का हमने नाम सुना है उसके अस्तित्व पर कवि को सन्देह है, क्योंकि उसे कोई देख नहीं पाता है। उसकी मात्र कल्पना की जाती है। इस के विपरीत कवि का अपना देश ही स्वर्ग है, उस से बढ़कर स्वर्ग में और क्या हो सकता है ? कवि स्पष्ट शब्दों में कहता है :

"मैं स्पष्ट कहूँगा क्योंकि स्पष्ट कहने में कोई दोष नहीं। यह स्वर्ग तो आँखों देखा है और वह केवल कानों से ही सुना है। यह हमारा देश अत्यन्त सुन्दर है।"[2]

मातृ भूमि के कण-कण से प्यार करने वाला कवि देश के प्राकृतिक पदार्थों पर मुग्ध हो उठा है। यहाँ की स्वच्छ तथा मधुर जल से युक्त शैवलिनियों की तुलना में कवि को स्वर्ग लोक में बहने वाली क्षीर की नदियाँ तुच्छ प्रतीत होती हैं। वह ललकार कर कह उठता है :

"स्वर्ग में दूध की नदियाँ बहती हैं—इस बात को जानते और मानते हुए भी मेरा हृदय अपने देश में बहने वाली सिंधु, रम्भी अरा, वितस्ता, गंगा

---

१. नुन्दबोन क्याह वतन म्योन
वुछि-वुछि फोलान बदन म्योन।
कोरबान यि जुव तॅ मन म्योन
अमिच्यन वतन मुबारख॥
'कुल्लियाते आज़ाद'— (मेरा देश)— डॉ० पद्म नाथ गंजू पृ० १८३

२. वनै साफ क्याह साफ वनसस छु ऑब
यि जन्नत छु दीदन सु जन्नत छु गॉब।
यि जन्नत अछन तल गु गोमुत कनन
यि सोनुइ वतन नुन्दहबोनुइ वतन॥
'कुल्लियाते आज़ाद'— (हमारा देश)— डॉ० गंजू, पृष्ठ १७६

तथा जमुना जैसी नदियों को भूल नहीं सकता।"[1]

वर्तमान की भयावह स्थिति देखकर कवि को स्वर्णिम अतीत का स्मरण हो आता है। जिस भूखण्ड पर प्राचीन काल में वैभव की वर्षा होती थी वही आज अकाल में ग्रस्त है। चारों ओर से हाहाकार सुनकर कवि विह्वल हो उठता है :

"बड़शाह जैसे पुत्र को जिस (मातृभूमि) ने अपनी गोद में पाला है, क्या उसी का कुटुम्ब आज राहों पर भूख से मर रहा है ? कल्हण, गनी और सर्फी ने जिस जल का पान किया क्या वही जल आज हमारे लिए बिष होगा ?"[2]

'आज़ाद' का जीवन ग्रामों में ही व्यतीत हुआ, इस प्रकार उन्हें कृषक एवं श्रमिक वर्ग को निकट से देखने का सुअवसर प्राप्त हुआ। इसके अतिरिक्त वे स्वयं भी कृषक परिवार से सम्बन्धित थे। अतः उनके काव्य में इस दलित वर्ग की करुण चीत्कार स्वतः ही गूंज उठी है। कृषक जो कि हमारे समाज का एक अत्यन्त महत्व पूर्ण अंग है, की हृदय विदारक स्थिति का चित्रण करना 'आज़ाद' जैसे मानवतावादी कवि के लिए स्वाभाविक था। भारतीय कृषक अत्यन्त सरल तथा साधु प्रकृति का रहा है जिसके परिणाम स्वरूप उसे अनेक संकटों एवं कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है। वर्ष भर श्रम वारि बहाने के उपरान्त परिवार के लिए दो जून रोटी जुटाना भी उनके भाग्य में नहीं बदा होता। इससे बढ़कर और क्या बिडम्बना हो सकती है ? ठीक यही स्थिति राष्ट्र के इस दीर्घ प्रदेश की भी रही है। यहाँ भी जागीरदारी प्रथा का बोलबाला रहा है और कृषक वर्ग उस आखेटक के जाल में फंसा रहा। इस अन्याय को देखकर 'आज़ाद' जैसे प्रतिभाशाली कवि की वाणी कैसे मूक रह सकती थी ? वह सदा कृषक वर्ग के इन करुण

१. सोरगॅचि दोघह कोल मॉनिय तॅ जॉनिथ
वोन्दह म्योन छुनें मेशरावान् ।
स्यन्दि, रॅम्ब्य आरस, व्यथि वरनागस
गंगायि तॅ जमनाये ।।
'कुल्लियाति आज़ाद' — डॉ० गंजू, पृ० ३८८

२. अवलाद बड़शहस ह्यू रोदमुत छु येमि कोछे मंज
बोछि सूति मरान वतन प्यठ तेहन्दुय अयाल आस्या ।
कलहन गनी तॅ सरफी सोराब केरि येमि आबन
सुय आब सानि बापथ ज़हरे हिलाल आस्या ।।
"कुल्लियाति आज़ाद" डॉ० गंजू, पृ० १८७

चित्रों को वाणी प्रदान करता रहा। कृषकों की इस निस्सहाय अवस्था का मार्मिक चित्रण कवि ने निम्न पंक्तियों में किया है :

"ग्रीष्म में धूप से उनका तन गलता है और शीत काल में शीत से उनका शरीर ठिठुर जाता है। बेचारे क्या सह सकेंगे और किससे कह सकेंगे ? न उनका कोई हित चिंतक है और न कोई उनके दुःख को हलका करने वाला है।"[1]

जागीरदार और ज़मीदार की लूट खसोट देखकर सहृदय कवि के नेत्र सजल हो उठते हैं। कृषक अनाज बोते समय ही कल्पना के सुनहले महल खड़ा कर देता है और लहलहाती खेती को देखकर उसकी अपार आशायें बँध जाती हैं। परन्तु आशा आशा ही रह जाती है और जमींदार के कारन्दे आकर उसकी खेती काट जाते हैं। ये निर्दयी उस अनाथ कृषक को समूल ही नष्ट करना चाहते हैं, परन्तु यह भूल जाते हैं कि उनकी कृत्रिम ठाठ और सजधज उसी अनाथ पर निर्भर है। यह सब भूलकर वे उस दीन किसान की प्रत्येक अभिलाषा और माँग को सगर्व ठुकराते रहते हैं :

शहनशाही और राजसी ठाठ मेरे रक्त और मांस से बनती है और मेरी विनती तथा करुण पुकारें आकाश में उड़ने वाली धूल बन जाती है"[1]

कवि इस बात पर और भी क्षोभ प्रकट करता है कि इस असहनीय निर्दयता और अत्याचार को यह दलित और प्रताडित वर्ग मूक रूप से सहन करता है और शोषण की असि के सामने नतमस्तक हो जाता है :

"हे न रूठने वाले ! तुम्हारे घावों से रक्त की धार बह रही है। तुम फिर भी इस तलवार के सामने अपना वक्ष खोल बैठे हो"[2]

श्रमिक वर्ग की स्थिति और भी भयावह हो चुकी थी। न उसके पास रोटी न तन ढाँपने को कपड़ा और न ही रहने के लिए झोंपड़ी ही थी। कृषक की भाँति

---

१. गलान रयतकालि तार छुख तन
दज़ान छुख वन्दह तूरि हन हन।
शिहिथ ह्यकन क्याह वॅनिथ ह्ययकन कस
न छुख रफीकाह, न गम गुसाराह ॥
'कुल्लियाति आज़ाद' — डॉ० गंजू, पृ० २८०।

१. शहनशाही त सुलतानी बनान म्यॉनिसरतस माज़स बना छम दरदह फरया-दन त नादन गरदिह असमानी। 'कुल्लियाति आज़ाद'—पृ० ३३६

२. हा कीन रसियो छुई चत्र ज़खमन दारि पकान खून ब्यय सीन दॉरिथ छुख च अथ तलवारि मुजूरो 'कुल्लियाति आज़ाद'—पृ० ३२८

ही वह भी शोषण की चक्की में पिसा जा रहा था। चोटी का पसीना एड़ी तक आने पर भी उसे रोटी की समस्या का समाधान नहीं हो पाता है। वह भी उच्च वर्ग की सेवा सुश्रूषा में ही अपना रक्त बहाता है :

"तुम्हारा रक्त शाही वेशभूषा में रत्न जड़ता है। हे नंगे पैर चलने वाले श्रमिक ! तुम्हारा ब्रह्माण्ड धूल से भुनस गया है।"[3]

'आज़ाद' के राष्ट्रीय काव्य में उनका युग साकार हो उठा है। राजनीतिक दासता का करुण क्रन्दन उनकी वाणी से फूट पड़ा है। विदेशी नरेशों के अत्याचारों से जनता क्षुब्ध हो उठी थी और चारों ओर निराशा का अन्धकार छाया हुआ था। परन्तु इस राजनीतिक सत्ता के प्रति असंतोष की भावना 'आज़ाद' जैसे ओजस्वी कवि की नस-नस से फूट पड़ी। आरम्भ से ही वे अपनी लेखनी के शस्त्र से 'रेजीडेंट-शाही' पर वार करते रहे। ब्रिटिश साम्राजियों ने समस्त भारत को अपनी कूट नीति से अधीन बना दिया और देश के सम्पूर्ण धन-वैभव को लूट लिया। व्यापार के बहाने वे देश में घुस पडे और छल कपट के माध्यम से शासन को अपने हाथों में ले लिया। इस विचार मात्र से ही कवि के नेत्र रक्तिम हो उठे। उनके अनुसार वे यहाँ की जनता का ही व्यापार करते रहे :

"व्यापारी आ गये और दूकानों पर बैठ गये। वे हमारे शरीरों का ही व्यापार करते रहे।"[1]

कवि को इस बात में कोई आस्था नहीं कि भगवान एक है और उसके सामने सभी मानव एक समान हैं। यदि ऐसा होता तो एक मानव दूसरे को अपना आहार नहीं बनाता :

"गरीबों का दिल और जिगर ये (अमीर) क्यों लोहे के सलाखों पर भूनते हैं ? यदि अमीरों के ही भगवान ने उन्हें भी जन्म दिया था।"[2]

---

३. शाहान रखतन खूनि जरान खूनि जिगर चोन
चोनि ताल देज़मेच ताप सूति ननिवारि मजूरो।
'कुल्लियाति आज़ाद'—पृ० ३२८

१. आय वापोरि वीठ्य दुकानन
रूदि करान सान्यन पानन
सूद बापार सोदागॅरिये।
'कुल्लियाति आज़ाद'—पृ० २०२

२. गरीबन हुन्द जिगर तै दिल बुज़ान यिम क्याज़ि यिम क्याज़ि सीखन प्यठ
अमीरय हन्दय खोदायन तिमति केरिमेति मॉलि मॉलि पादा।
'कुल्लियाति आज़ाद'—पृ० ३८३

धर्म का प्रचलित रूप भी सामाजिक उन्नति में घुन का काम कर रहा था। धर्म के इस संकुचित दृष्टिकोण ने मानव समाज को अंधा बना दिया था। चारों ओर द्वेष की आग भड़क रही थी जिसमें मानव कल्याण के सभी साधन भस्म हो रहे थे। कवि के अनुसार धर्म की यह सैकड़ों साल पुरानी कहानियाँ सामाजिक उन्नति के लिए ही बाधक नहीं वरन् वास्तविक मूल तत्व को जानने में भी अड़चन डालती हैं। धर्म के ठेकेदार धर्म की आड़ में खुलकर शोषण कर रहे है। निर्धन तथा पीडित जनता की रही सही कसर निकालने में ये तनिक भी नहीं सकुचाते। धर्म के जाल में फंसा हुआ व्यक्ति सदा इसी चिन्ता में रहता है कि कैसे वह धार्मिक कर चुकाने में समर्थ हो। यह चिन्ता उसे अन्दर ही अन्दर गीली लकड़ी के समान जलाती रहती है। वह अपने अबोध बच्चों का पेट-तन काटकर इस कर से मुक्ति पाता है क्योंकि उसे पूरा विश्वास है कि प्रलय के दिन उसका मौलवी अवश्य उसकी सहायता करेगा :

"कल मौलवी को दक्षिणा देनी है। वह मेरे प्रायश्चित को ध्यान पूर्वक सुनेगा और कयामत (प्रलय) के दिन मुझ पर कृपा करेगा।"[1]

जन जागरण की प्रबल तरंगों से 'आज़ाद' की कविया परिपूर्ण है और यही वास्तव में उनकी कविता का प्राण है। 'आज़ाद' जैसे उद्यमी और साहसी कवि ने जनता के मन में आशा की नवीन रश्मियाँ भर दीं। कवि ने परोक्ष रूप से लोगों का नेतृत्व सम्हाला; उन्हें सूचित किया कि यह देश तुम्हारा हीं है और तुम ही इसके स्वामी हो। इसकी सुरक्षा का उत्तरदायित्व तुम पर ही है। अपने साहसी नवयुवकों को प्रगति के पथ पर अग्रसर करने के लिए ललकार कर कह रहा है :

'कमर बाँधकर कदम बढ़ाओ। इस समय को गनीमत जान लो हे नवयुवक ! उठ, तुम्हारी यात्रा लम्बी है। उठकर अपने पैरों पर खड़ा रह। हे नवयुवक अपनी समस्या का स्वयं समाधान खोज।"[2]

---

१. पगाह छुम हदिय द्यून पीरस
ध्यायम कन तोब तखसीरस
कयामेच दोह करयम यारी।
कुल्लियाति आज़ाद—पृ० ४२१

२. कमर गण्ड कदम तुल यि दम छइ गनीमत
सफर ज्यूठ छुई वोथ सखर नौ जवानो।
च वोथ रोज़ इस्तादे पननेन कठ्यन प्यठ
पनुन न्याय पानै अंजर नौजवानो।।
कुल्लियाति आज़ाद—पृ० ६७

देश को पराधीनता से मुक्त करने के लिए यह नितान्त आवश्यक हो जाता है कि देश की समस्त जनता एक ही ध्वजा के नीचे एकत्र हो जाये तभी ऐसे दुष्कर कृत्यों में सफलता की आशा की जा सकती है। इसके विपरीत जहाँ यह ऐक्य की भावना प्रबल नहीं हो उठती और चारों ओर अपनी-अपनी ढ़फली और अपना-अपना राग बजता है, वहाँ स्वतन्त्रता प्राप्ति की आशा आकाश-कुसुम तोड़ने के समान ही सिद्ध हो सकती है। वास्तव में स्वतन्त्रता प्राप्ति में राष्ट्रीय एकता ही एक मूल रहस्य है और 'आजाद' जैसे महा कवि भी इस रहस्य से अपरिचित नहीं थे। वे आजीवन सामाजिक एकता और मेल-मिलाप के बन्धनों को पुष्ट करते रहे:

"इनमें तुम एकता, प्रेम और सौहार्द का भाव उत्पन्न कर। वीरता का हृदय देकर उसमें सच्चा प्रेम उत्पन्न कर।"[1]

क्रान्ति चाहें हिंसात्मक हो अथवा अहिंसात्मक, जहाँ इस में राष्ट्र के कल्याण की भावना अन्तर्निहित रहती है कवि उसे अपनाने में संकोच नहीं करते। वर्तमान की दुर्दशा और घृणास्पद स्थिति को बदलने के लिये वे मुक्त हृदय से क्रान्ति का स्वागत करते रहे। रूस की क्रांति का भी कवि पर विशेष प्रभाव रहा। देश के वीरों में क्रांति की आग भड़काने में 'आजाद' कभी पीछे नहीं रहे। मातृ-भूमि की रक्षा का भार प्रत्येक प्राणी पर है और इसके लिए मर मिटना मनुष्य के लिये परम गौरव का चिन्ह है। 'आज़ाद' अपने देश वासियों में बलिदान की इसी भावना का संचार करते हुए और उन्हें सरल स्वभाव त्याग कर कठोरता से काम लेने को प्रेरित कर रहे हैं:

"हे देश वासी आगे आ और अपना प्रण पूरा कर। तू प्रेम पूर्वक कदम बढ़ा अपना शरीर देश पर बलिदान कर। यदि धनुष सीधा रहे तो क्या तीर निशाने पर लग सकता है? कभी अपनी यह सीधी काया टेढ़ी भी तो कर।"[2]

"आज़ाद" होप सस्टेंज लाइफ' सिद्धान्त के अधिक समीप थे, अतः वे कभी अकर्मण्य तथा दिल मसोस कर अपने क्षेत्र से विलग न हुये। अपने दारिद्र्य

---

१. दितख च तौफीक बरादरी हुन्द
मोहब्बतुक लाल दिलबरी हुन्द।
'कुल्लियाति आज़ाद—'पृ० २८०

२. तनदार वतनदार पनुन वाद वफा कर
तुल लोल कदम शोक वतन पान फिदाह कर।
स्योदि रोज़ि कमान योद त लग्या तीर निशानस
कुनि सात यि स्योद पान पनुन होल [illegible] कर॥
'कुल्यियाति आज़ाद—पृ० ४१०

एवं अभावपूर्ण जीवन से जूझते हुये उन्होंने कभी निराशा व्यक्त न की। संघर्षोपरान्त ही अभावों की पूर्ति में जीवन का वास्तविक आनन्द सन्निहित रहता है। इसी संघर्ष को कवि ने अपनी वाणी द्वारा महत्व प्रदान किया है। कर्मठता के जयघोष से उनके काव्य की दिशायें गूँज उठी हैं। आशावाद के भक्त कवि ने जिस स्वर्णिम भविष्य की परिकल्पना की है, उस तक पहुँचने के लिये उन्होने जनता को संघर्षशील रहने की प्रेरणा दी है। इस दिशा में उनके नेतृत्व की कड़ियाँ कहीं भी शिथिल नहीं पड़ी हैं। उनका सन्देश सर्वत्र सेनाधीश का सा ओज और तेज लिये हुये हैं :

"बहादुरो ! कदम बढ़ाते जाओ। सदा संघर्षशील रहो। नवयुवक वीरो ! आशायें और अभिलाशायें संचित रखो। आओ मिलकर वतन वतन पुकारें और वतन का गीत गायें।"[1]

मानवतावाद के पुजारी 'आज़ाद' ने भविष्य के जिस राष्ट्र का संदेश दिया है, उसमें मानव परम महत्व का अधिकारी होगा और मानव कल्याण की भावना सर्वत्र व्याप्त होगी। शोषक और शोषित की कोई समस्या नहीं होगी और प्रत्येक व्यक्ति को अपने अधिकार प्राप्त होंगे। चारों ओर सुख और शान्ति की रश्मियाँ विकीर्ण होंगी। जनता में प्रेमभाव, एकता और सौहार्द की भावना प्रबल होगी। घन के स्थान पर मानवीय गुणों को पूजा जायेगा तथा आततायियों और अत्याचारियों को कठोर दण्ड दिये जायेंगे। भविष्य के इसी राष्ट्र की इच्छा करते हुए कह रहे हैं :

"मैं धन और स्वर्ग नहीं मागूँगा, परन्तु मुझे वह आलम दिखा जहाँ रत्नों और जवाहिरातों का कोई मूल्य नहीं है; जहाँ वीरों का मूल्य है। जहाँ अत्याचारियों तथा क्रूर व्यक्तियों के सिर बिना संकोच के काट दिये जाते हैं।"[2]

---

१. तुलिव कदम बहोदुरो, करिव हमेशि जुस्तजू
जवाँ जवाँ दिलावरो, थॅविव उमेद त आरिज़ू
सॅमिथ वतन वतन करो, तरानै वतन परो।
'कुल्लियाति आज़ाद'—पृ० १८२।

२. ब मंगैन मोहर त सोन, दितम मगर आलमासु म्य हावतम
यति मोल छु दरद बहोदुरन, न सोनस त लाल जवॉहिरन
यति ज़ॉलिमन त सितमगरन ननि वान सर छि करान जुदा।
,कुल्लियाति आज़ाद'—पृ० १६६।

'आज़ाद का उदार दृष्टिकोण कश्मीर की घाटी तथा भारत राष्ट्र की सीमित परिधि में आबद्ध न रह सका, अतः राष्ट्र की सीमाओं को लाँघकर अन्तर्राष्ट्रीय क्षितिज के छूने का सफल प्रयास भी किया। परन्तु जहाँ तक उनकी कविता का सम्बन्ध है, उसमें कवि ने अधिकतर कश्मीर प्रदेश और तत्पश्चात् भारत देश का ही चित्रण किया है। यद्यपि उनका चिंतन इन सीमाओं से परे था, फिर भी उनके काव्य में अन्तर्राष्ट्रीय चित्रण अल्प मात्रा में मिलता है। इसका मुख्य कारण उनका विदेशों के प्रति अल्प ज्ञान, स्वदेश की दुर्दशा तथा इसके प्रति मोह हो सकता है। विश्व बन्धुत्व की भावना कवि में व्याप्त थी, तथा इस दिशा में कवि का संदेश, मानव प्रेम, एकता और समानता पर ही आधारित है। वर्तमान राष्ट्रों की भिन्नता से 'आज़ाद' का कोई सरोकार नहीं था। उन्होंने स्पष्ट कह दिया :

"शंका और विश्वास, कुफ्र और दीन तुम्हारा विचार और राय है। हिन्द, अरब, रोम और चीन तुम्हारी कहानियाँ और तुम्हारे ही झगड़े हैं।"[1]

इस प्रकार 'आज़ाद' ने अपना उदार एवं व्यापक दृष्टिकोण प्रदान करके मानव समाज को सचेत करने का यत्न किया है। उनका यही दृष्टि कोण वर्तमान संकटापन्न स्थिति से मुक्ति के लिए तथा स्वर्णिम भविष्य के निर्माण हेतु एक सशक्त और प्रभाव पूर्ण सन्देश है। मानव कल्याण के लिए कवि का यह सन्देश आदर्श रूप में असाधारण महत्व का अधिकारी है।

---

१. शख त यकीन कुफ्र-व-दीन
चोन खयाल चॉनि राय।
हिन्द, अरब, चीन, रूम
चॉनि क्स, चॉनि न्याय॥
कुल्लियाति आज़ाद—डॉ० गंजू, पृ० २३५।

मैं और हिन्दी

अब्दुल रशीद भनाई

मैं आज प्रसन्नता का अनुभव करता हूं जब कि मैं आज इस लेख के माध्यम से अपने कुछ विचारों को प्रकट करता हूं।

मेरा जन्म सन् १९५५, २० अप्रैल को एक साधारण गरीब शिक्षित घर में हुआ। मेरे माता-पिता, भाई और बहिनों ने मुझे बड़े प्यार से पाला पोसा। जब मैं ६ वर्ष का हो गया तो मेरे पिताजी ने मुझे अपने गांव के निकट एक गांव की पाठशाला में शिक्षा पढ़ने के लिए भेजा। जब मैंने दूसरी कक्षा में प्रवेश लिया तो मेरे पिताजी ने मुझे हिन्दी पढ़ने की ओर अग्रसर किया। उन्होंने मुझे हिन्दी पढ़ने की प्रेरणा दी। जब मैं पहले ही दिन अपनी पाठशाला के हिन्दी अध्यापक के पास हिन्दी पढ़ने के लिए गया, तो उन्होंने मुझे हिन्दी वर्णमाला के स्वर लिखवाये और कापी और तख्ती पर लिखने को कहा। जब चार बजे पाठशाला की छुट्टी हुई तो मैं घर जाकर हिन्दी अध्यापक के अनुसार अपना सबक याद करने लगा। जब मैं (अ, आ, इ, ई) आदि स्वर घर में पढ़ने लगा और तख्ती और कापी पर लिखना आरम्भ किया तो मेरी बहिनों ने मेरी हंसी उड़ाई और कहने लगीं 'रशीद पढ़ अ, आ, इ, ई,।' इन बेचारियों ने तो इससे कभी ये ध्वनि सुनी ही नहीं थी। यह पहला समय था जबकि मैंने अपने घर में वर्णमाला के ये स्वर पढ़े। मैं बहुत दुःखी हुआ। जब मैं अपने घर से बाहर निकला और अपने मुहल्ले के बच्चों के साथ खेलने लगा तो उन्होंने भी मेरी हंसी उड़ाई। क्योंकि उन्होंने सुना था कि मैं अपने पिताजी के कहने पर हिन्दी सीखना आरम्भ किया है। जब मेरे पिताजी स्कूल से संध्या होने पर घर आये तो मैंने उनको यह सब बताया कि किस प्रकार मुझे हिन्दी सीखने पर मेरी बहिनों और मेरे साथियों ने मेरी हंसी उड़ाई। मैंने रोना शुरू किया लेकिन मेरे पिताजी ने मुझे धैर्य बांधा और कहा बेटा—तू हिन्दी पढ़ने से हिन्दू नहीं बन जाएगा, हिन्दी पढ़ने से कोई हिन्दू नहीं होता, अंग्रेजी पढ़ने से कोई अंग्रेज़ या ईसाई नहीं होता, हिन्दी एक भाषा है। धर्म और भाषा दो भिन्न वस्तुएं हैं। मेरे पिताजी कट्टर भारती हैं। उन्होंने मुझे समझाया कि हिन्दी पढ़ना कोई पाप नहीं है। जब मैं पांचवीं कक्षा में पहुँचा तो मैंने हिन्दी पढ़ना छोड़ दिया और इसके बदले मैंने उर्दू पढ़ना आरम्भ किया। जब मेरे पिताजी ने यह सुन लिया, तो उन्होंने मुझे खूब डांटा। पिताजी के डांट खाने से मैंने फिर हिन्दी पढ़ना आरम्भ किया। जब मैं छटी कक्षा में आया तो मुझे इस छटी कक्षा की हिन्दी पुस्तक पढ़ने में कठिनाई का अनुभव

होता था तो मेरे हिन्दी अध्यापक ने मुझे नये सिरे से हिन्दी भाषा की वर्णमाला सिखाई। जब मैंने आठवीं कक्षा की परीक्षा पास की तो मैंने त्राल के Higher Secondary School में प्रवेश लिया और चाहता था कि हिन्दी छोड़ दूं और हिन्दी के स्थान पर Science पढ़ लूं। मेरी रूचि बचपन से डाक्टर बनने की थी। परन्तु पिताजी ने फिर हिन्दी पढ़ने को कहा और मेरे पीछे रहते थे कि मैं हिन्दी स्कूल में पढ़ता था या नहीं। जब मैंने कॉलेज में प्रवेश लिया, तो मुझे हिन्दी पढ़ने और लिखने में कठिनाई अनुभव होती थी। मेरी हिन्दी लिखाई अच्छी नहीं थी। मैंने निर्णय किया कि मैं हिन्दी छोड़ दूं और उर्दू पढ़ूं परन्तु फिर पिताजी ने न माना। बी० ए० की परीक्षा पास करके मैंने यहां अपने ही प्रदेश के विश्वविद्यालय में हिन्दी विभाग में एम० ए० के लिए प्रवेश लिया।

मेरे हिन्दी पढ़ने की ओर प्रेरित करने वाले मेरे पिताजी हैं। मेरे पिताजी ने ही मुझे हिन्दी पढ़ने की ओर प्रेरित किया। उन्होंने मेरे बड़े भाई को भी हिन्दी पढ़ने की ओर अग्रसर किया। पिताजी के बाद मुझे उत्साह एवं उत्तेजना देने वाले कुछ अध्यापक हैं। जिनमें श्री दामोदरलाल, श्री सोमनाथ और श्री नेन्द्रनाथ आदि हैं। मेरे पथ-प्रदर्शन श्री प्रफेमर सप्रू साहब ने मुझे हिन्दी पढ़ने में मेरा पथ-प्रदर्शन किया। इन्होंने मुझे अपने पिता की तरह हिन्दी पढ़ने के लिए उत्साहित किया और हर प्रकार के प्रयत्न किये कि मैं हिन्दी में आगे बढ़ जाऊं। इन्होंने मुझे हर प्रकार की सहायता की। इन्होंने मुझे हिन्दी में एम० ए० की उपाधि प्राप्त करने को कहा। उन्होंने मेरी हिन्दी की लिखाई की ओर भी अधिक ध्यान दिया। मैं इन का आभारी हूं और कृतज्ञ हूं।

हिन्दी पढ़ने में मुझे आदि से लेकर आज तक अपने घर में अनुकूल वातावरण नहीं मिला जिससे मेरी हिन्दी पढ़ाई और लिखाई सुधारी जा सकती थी। मेरे पिता हिन्दी लिखना, पढ़ना नहीं जानते हैं। पिता की ओर अच्छा प्रबन्ध मेरी हिन्दी पढ़ाई के लिए नहीं मिला। मेरे इलाके के मुसलमान लोग हिन्दी पढ़ना आज भी पाप समझते हैं। मेरे इलाके के कुछ मुसलमान बुजुर्ग मुझे पण्डित जी कहते हैं। मैं चाहता हूं कि मैं हिन्दी का प्रसारक और प्रचारक बनूं और लोगों को विशेषकर मुसलमानों को (अशिक्षित मुसलमानों) यह समझाऊं कि हिन्दी पढ़ने से कोई मुसलमान हिन्दू नहीं होता है।

कश्मीरी लोकोक्तियों में मंगल-कामना

• डॉ० संदित कौल

भाषा-प्रवीण ग्रियर्सन ने अपनी 'लिङ्ग्विस्टिक सर्वे ऑफ इन्डिया' में कश्मीरी भाषा को अ-संस्कृत भाषाओं की 'दरद' शाखा में स्थान दिया है, जो कि उस प्रचलित विश्वास के प्रतिकूल है जिसके अनुसार 'कश्मीरी' मूलत: ब्राह्मणों की भाषा कही गई है तथा जिसका उद्गम संस्कृत से हुआ माना गया है। एक पाश्-चात्य यात्री विग्ने के अनुसार कश्मीर की भाषा एक मुख्य भाषा का अपभ्रंश (प्राकृत') है जिस में बहुत से शब्द संस्कृत, फारसी व हिन्दुस्तानी के हैं तथा कुछ अरबी और कुछ थोडे तिब्बती भाषाओं के पाये जाते हैं।[1] सच तो यह है कि अतीत से इस भाषा ने परिपाक पाने की क्षमता दर्शायी है जो इसके कई भाषाओं तथा सभ्यताओं से प्रभावित होने का हेतु बनी है। पन्द्रहवीं शताब्दी तक कश्मीर की भाषा संस्कृत होने से 'कश्मीरी' में संस्कृत भाषा तथा सभ्यता का प्रभाव मुख्य रूप से रहा है। इसके बाद फारसी के आगमन और सरकारी भाषा बनने से 'कश्मीरी' लोक-साहित्य पर इसका गहरा प्रभाव पड़ा। अत: 'सूक्ष्म अध्ययन करने से पता चलता है कि कश्मीरी मुहावरे, कहावतें आदि संस्कृत तथा फारसी भाषा से उद्धृत होकर उनका कश्मीरी संस्करण हो गये हैं।[2] वर्तमान शताब्दी के आरम्भ में उर्दू के प्रचलन से तथा फिर अंग्रेजी के आने से 'कश्मीरी' दो भाषाओं से प्रभा-वित हो गई। परन्तु इन विभिन्न भाषाओं का प्रभाव, जो कश्मीरी लोकोक्तियों में प्रकट होता है, मौखिक उक्ति तक ही सीमित रहा है; मूल विषय में कोई परि-वर्तन नहीं आया।

'कश्मीरी' की लिपि 'शारदा' मानी जाती है, जो 'ब्राह्मी लिपि' से व्युत्पन्न हुई है। परन्तु यह शारदा लिपि ब्राह्मणों तक ही सीमित रही है, जैसा आजकल भी देखा जाता है। अत: ऐसा कहा जा सकता है कि 'कश्मीरी' की ऐसी कोई लिपि नहीं जो जन-साधारण की लिपि रही हो। फिर भी कश्मीरी लोक-साहित्य में कुछ महाकाव्यों तथा गायन-गीतों के अतिरिक्त लोकोक्तियां तथा पौरा-णिक कथा-कहानियों की भरमार है जो अधिकतर मौखिक रूप में ही सुरक्षित आ रहे हैं। 'कश्मीरी' लोकोक्तियों को संकलित करने का सफल प्रयास सब से

1. VIGNE, G.T. 1842 : Travels in Kashmir, Ladakh and Iskardu (1135.39) Landon.
२. सप्रू, चमनलाल, १९६० : कश्मीरी और हिन्दी के मिलते जुलते मुहावरे तथा कहावतें, 'विश्वज्योति' (होशियारपुर) : दिसम्बर १९६०

पहले हिंन्टन नोव्यल्स[3] ने किया। आनन्द कौल बामज़ई[4] ने भी कई लोकोक्तियों को संग्रहीत किया है। हाल ही में प्रो० 'पुष्प'[5] द्वारा सम्पादित प० सुदर्शन काशकारी की 'कश्मीरो' लोकोक्तियों का संग्रस इसी कडी में एक प्रयास है, पर इस कृति से कश्मीरी लोकसाहित्न के क्षेत्र में पहले से विद्यमनान ज्ञान में कोई विशेष वृद्धि हुई हो ऐसा दिखाई नहीं देता।

कश्मीरी लोकोक्तियां, जो ऐतिहासिक विस्तार के पिछले छ: सौ से अधिक वर्षों में बनकर इकट्ठो हुई हैं, मानव अनुभव के साथ-साथ कश्मीरियों के सारपूर्ण वचन तथा व्यावहारिक ज्ञान की द्योतक हैं। इन उक्तियों की विशेषता इनके सक्षेपन में है। यह प्रकृति के प्राणि तथा वनस्पति कोष से उपमायें तथा रूपक लेकर एक साधारण निरूपण की मधुर प्रतिरूप बनी हैं।

कश्मीरी पण्डत (हिन्दू) की अपने घर से बहुत ही लगन रहती है। उस की इस लगन के सम्बन्ध में त्रिलोकी नाथ मदन की यह उक्ति स्थानाकूल है।

To a Pandit his *garr* is symbolic of the purpose of his existence and strivings .....He devotes his life to making a contibution in one capacity or another, to the upkeep of the *gara* (house and household to which he belongs. The sentiments of love, sharing and solidarity..... are in a Pandit estimation, the heightest ideals of human conduct."[6]

"अर्थात् पण्डित (कश्मीरी) के लिए उसका घर उसके जीवन तथा परिश्रम का प्रतिरूप है। ····· अपने घर के आश्रय के हेतु वह अपनी अवस्थानुकूल योगदान देने के लिए आजीवन अनुरक्त रहता है। एक पण्डित के निरूपण में प्रेम, सहकार्य तथा परस्पर अधीनता के भाव मानव व्यवहार के उच्चतम ध्येय हैं।) अत: कश्मीरी' में घरेलू विषयों से प्रेरित लोकोक्तियां अधिक सख्या में होना स्वाभाविक है। घर की मंगल-कामना के विषय भी इन उक्तियों में व्यक्त हैं। प्रस्तुत लेख में इसी विषय को लेकर कुछ लोकोक्तियों का उल्लेख किया गया है।

रस लगिनम त दस चलिनम :

स्वस्थता पाऊँ और आलस्य से मुक्त रहूँ। गृहस्थ का कार्य करने से पूर्व प्राय: कश्मीरी मातायें नदी के घाट पर मुँह धोने के उपरान्त अञ्जलि लेकर प्रभु से यह प्रार्थना करती हैं।

दोस्तस स्यज मॅञ तॅ दुश्मनस वृकरमॅञ :

---

3. KNOWLES. Rev. J. H. 1885 : A Dictionary of Kashmiri Proverbs & Sayings; Bombay.
4. BAMZAI, ANAND KAUL 1934 : Kashmiri Proverbs; Indian Antiquary'
5. PUSHP. P. N. (ed.) 1962 : The wit of Kashmir; compileb & translated by Sudharsan Kashkari, Kashmir series of texts & studies No. 88, Srinagar.
6. MADAN. T. N. 1965: Family and Kinship : A study of the Pandit of Rural Kashmir; Bombay pg. 53-54.

मित्रों से अकुटिल सामना और शत्रु को तिरस्कृत दृष्टि। दिन के काम पर निकलने पर बालक आज्ञा मांगता है तो उसकी माता आशीर्वाद में यही उक्ति कहती है।

फलिस ह्योल तॅ ह्यालिस खार दिननय दय :

प्रभु तुम्हारे हर अंकुर को पुलिन्दा और हर पुलिन्दे को खरवार बनाये।

म्यच अय तुलख स्वन बनिनय :

मिट्टी भी अगर उठाओ, सोना बन जाये। जब कोई किसी आर्थिक काम में उचित फल न मिलने पर हतोत्साहित होकर नया काम करने लगता है, तो उसकी माता या तो कोई और शुभ-इच्छुक उसे यही आशीर्वाद देते हैं।

मीठ प्वन्द तॅ जीठ वुमॅर :

प्रीतिकर (सुखकर) छींक और दीर्घ आयु। जो छींक आंख, नाक और गले में कोई दर्द न करे, सुखकर मानी जाती है। किसी अवसर पर, जैसे दवाई पीने पर (इस मात्रा के पीने के बाद और दवाई पीने की आवश्यकता का सूचक!); घोड़े की पीठ पर चढ़ने पर; तर्क करने पर (तर्क करने वाला अगर खुद छींके या किसी दूसरे की छींक सुने, तो अवश्य ही उसकी सफलता होगी!); सोने पर; खाने के समय; पढ़ने के समय; और बीज बोने के समय; छींक शुभसूचक मानी जाती है। संस्कृत की कृति 'वाराह' में भी अपरिलिखित अवसरों का उल्लेख है।

हूत्य सुन्द ह्यू सब्र, अछ्य पूर, बलायि दूर, दुथिस नूर :

कुत्ते की सी सहनशीलता, तेजयुक्त चक्षु, दुर्गति दूर हो और मुख पर सदा आभा रहे।

बलायि दूर तॅ खॅडर कबूल :

दुर्गति दूर और सौभाग्य प्रदान हो।

दु च्य बलायि दूर, दुश्मनन सूर, यॅड सबूर, न्यत्रर नूर :

सब विपत्तियां दूर हों, दुश्मनों का नाश हो, क्षुदा की तृप्ति तथा तेजस्वी नेत्र। दूध पीता बच्चा (विशेषकर बालक) अगर छींके तो उसकी मां उसे सहलाते यह उक्ति कहकर उसका मंगल चाहती है।

जीठ वुमॅर तॅ म्यूठ वत्त :

दीर्घ आयु वाला हो और सुखकर खाओ।

लसुन तॅ बसुन :

जियो और सुखी जीवन प्रदान हो।

रूमॅ ऋष्युन आय आसुन :

रुमॅ (लोम) ऋषि जैसी दीर्घ आयु प्रदान हो। यह उक्ति प्रायः मां अपने पुत्र को आशीर्वाद देते समय कहती है। रुमॅ-ऋषि सम्भवतः लोमहर्षन ऋषि या लोमासु ऋषि हैं जो 'महाभारत' में पाण्डवों के तीर्थागमन के समय उनके साथ थे।

स्वामी गोविन्द कौल तथा उनकी कविता

• श्री त्रिभुवन नाथ शास्त्री

वन पोहभवं सन्तं भक्तानाँ वरदायकम् ।
तपस्विनं जितक्रोधं गोविन्दं नौमिसद्गुरुम् ।।

कश्यप ऋषि की यह तपो भूमि ऋषियों का निवास स्थान यह कश्मीर प्राचीन काल से शैव दर्शन का केन्द्र रहा है। अनादि काल से यहां के आचार्यों तथा सन्तों ने विश्व को आध्यात्मिक मार्ग पर चलने का उपदेश दिया है। यहां के अभिनवगुप्त, सोमानन्द, उत्पलाचार्य आदि आचार्यों ने गीर्वाणवाणी में शैवदर्शन के अमूल्य ग्रन्थों की रचना करके संसार के अध्यात्म वादियों की आंखें खोलदी हैं। उक्त आचार्यों के दर्शन को जन साधारण तक पहुंचाने के लिये लल्लेश्वरी, रूपा भवानी, परमानन्द जी, कृष्ण जुव राजादान आदि सन्त कवयित्रियों तथा कवियों ने कश्मीरी भाषा का सहारा ले लिया। कश्मीरी भाषा के दार्शनिक कवियों तथा कवयित्रियों में लल्लेश्वरी का नाम विख्यात है। उसकी वाणी 'लल्ल वाक्य" के नाम से प्रसिद्ध हैं। आध्यात्मिक विचार धारा वाली यह भूमि आज भी सन्त कवियों से विहीन नहीं। ८० वर्ष पूर्व इस आध्यात्मिक भूमि में एक महान् आध्यात्मिक सन्त कवि का प्रादुर्भाव हुआ है, जो स्वामी गोविन्द कौल के नाम से प्रसिद्ध है। श्रीनगर से ३५ मील की दूरी पर 'वन पोह' नामक गांव में स्वामी गोविन्द कौल का पुण्य जन्म हुआ है। उनका पावन जन्म दिवस फाल्गुण शुक्ल त्रयोदशी है।

भगवान् कृष्ण ने श्रीमद्‌भगवद् गीता जी में कहा है :—
प्राप्य पुण्य कृतां लोकानुषित्वा शाश्वती: समा: ।
शुचीनां श्रीमतां गेहे योग भ्रष्टोऽभिजायते ।।
अथवा योगिनामेव कुले भवति धीमताम् ।
एतद्धि दुर्लभतरं लोके जन्म यदीदृशम् ।।
तत्रत बुद्धि सयोग लभते पौर्वदेहिकम् ।
यततेच ततो भूय: ससिद्धौ कुरुनन्दन ।।

हे अर्जुन वह योग भ्रष्ट पुरुष स्वर्गादिक लोकों में अनेक वर्षों तक निवास करके शुद्ध आचरण वाले श्रीमान् (ज्ञानवान् योगी) पुरुषों के घर में जन्म लेता है। इस प्रकार का पुण्य जन्म पाना संसार में अत्यन्त दुर्लभ है। ऐसे दुर्लभ जन्म को पाकर योगी पुरुष पूर्व जन्म के बुद्धि संयोग को अनायास ही प्राप्त करने के प्रयास से ईश्वर प्राप्ति के लिये प्रयत्न शील रहता है। स्वामी गोविन्द कौल जी ने

भी ऐसे ही पुनीत घर में जन्म लिया था। जहाँ पूरा आध्यात्मिक तथा धार्मिक वातावरण था। उनके माता-पिता सन्त थे। पिता के तुल्य बड़े भाई हरिहर कौल एक आध्यात्मिक सन्त कवि थे। उनका लिखा हुआ काव्य 'हरिहर कल्याण' के नाम से प्रसिद्ध है। स्वामी जी के मामा जी कृष्ण जुव राजदान महान् सन्त कवि थे। जिनकी भक्ति रस की कविताएं (लीलाएं) आज भी भक्त लोग प्रायः गाते रहते हैं। उक्त धार्मिक घर में स्वामी जी ने जन्म पाकर अपने पूर्व जन्म के आध्यात्मिक बुद्धि संयोग को अनायास ही प्राप्त कर लिया। जिसके फलस्वरूप वे ईश्वर को प्राप्त करने में इस जन्म में भी सतत प्रयत्नशील रह कर ईश्वर का साक्षात्कार करने में सफल रहे। स्वामी जी ने पूर्व जन्मों के पुण्यों के प्रभाव से तथा इस जन्म में भी कठिन तपस्या करके गुरुजनों की कृपा दृष्टि से ईश्वर का साक्षात्कार करने के पश्चात् जिस सुख तथा शान्ति का अनुभव किया, गुरु की प्रेरणा शक्ति से उस अनुभव को कविता के रूप में भक्त जनों के सामने रखा। स्वामी जीं ने कहा है :—

गोविन्द करिह्यन कांह कथ, तमिस तोरच्य छि हरकत।

गोविन्द कौल कुछ भी नहीं कहता, लेकिन उसे वहां की ही (असीम की) प्रेरणा है। आध्यात्मिक सन्त कवियों में ईश्वर प्रदत्त प्रतिभा होती है। जिस प्रतिभा से उन की वाणी से अमृत की धारा फूट पड़ती है। जिसे पीकर मनुष्य आनन्द विभोर हो जाते हैं। उक्त कविता में स्वामी जी ने स्पष्ट किया है कि मैं अपने अनुभव को अपनी इच्छानुसार प्रकट नहीं कर रहा हूं, अपितु अपने गुरुओं की प्रेरणा से मैं ऐसा करने के लिये विवश हूं।

स्वामी जी ज्ञानमार्गी सन्त कवि थे। उनकी कविताओं में प्रायः यत्र-तत्र सर्वत्र अध्यात्मज्ञान के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं मिलेगा। स्वामी जी प्रभु की वन्दना करते हुये कहते हैं।

अस्य आय शरणे पूजा करने, जानिथच्ययओंकार छिय।
साहस बद्य प्रणाम गुल्य गन्डिगन्डी, दंडवत् बारंबार छिय।
विज्ञानह सागर मंज च्यय ईरान, फोकह डूब्रहिव्य कत्य ब्रह्मांडई।
इन्दर चन्दर सिरियं त यमय, कात्वा बेशुमार छिय॥
अपरम्पार छय चानिय लीला, क्या छयकह व्यता करिथ बो।
शरमन्दह सारिय शरख्यथ गामत्य, व्यास आदि बडय भाशकार छिय॥

हे ईश्वर हम आपको ओंकार स्वरूप जानकर आपकी शरण में पूजा करने आये हैं। हम हाथ जोड़कर आपको हजारों बार दंडवत् प्रणाम करते हैं। विज्ञान का समुद्र आपके अथाह सागर में गिरकर विलीन हो जाता है। कितने ब्रह्माण्ड बुद्बुदों की भांति विलय हो जाते हैं।

असंख्य इन्द्र चन्द्रमा तथा यम आप के विराट स्वरूप में विलय हो जाते हैं। हे ईश्वर आपकी लीला का कोई भी आदि तथा अन्त नहीं है। अत: मैं आप की स्तुति क्या करूँ। व्यास आदि बड़े २ भाष्यकार भी आपकी स्तुति करने में असमर्थ होकर लज्जित हो जाते हैं।

सन्त मार्ग में गुरु की महिमा का अत्यन्त वर्णन किया गया है, स्वामी जी ने गुरु महिमा का वर्णन करते हुये कहा है :—

सुय बनि पूर्ण सत् चित् आनन्द। गुरु सन्ध्य युस सिवि चरणार व्यन्द।
गुरु छुय हाव वुन नूरुक नूर। अज्ञान तिमिरन कर वुन दूर।

जो गुरु के चरण कमलों का सेवन करेगा। वह पूर्ण सच्चिदानन्द को प्राप्त करेगा। गुरु अज्ञान के अन्धकार को मिटाकर ज्योति स्वरूप परमेश्वर के तेज को दिखायेगा।

शारीरिक तथा मानसिक स्वच्छता रखने पर ही परमेश्वर स्पष्ट रूप से दिखाई देते हैं। इस आशय को लेकर स्वामी जी ने कहा है :—

साफ वुछुन साफ पाठिक साफ दियी दर्शुनुय।
साफ तनथव साफ मनथव, साफ पैर वस्त्र हना।।
साफ अन्नख्यह साफ जल च्यह साफ सुॅयसूॅत्य वोथत बेह।
साफ वाणी साफ अछथव, अथह निशि इन्साफ म त्राव।।
साफ कनथव सत् श्रवणकर कांसि हन्ज निंदा म वोज।
अदह साफ बोजनह इयीय, साफ दियी दर्शुनुय।।

अपने शरीर अपने मन अपने पैरों तथा वस्त्रों को साफ रक्खो। शुद्ध अन्न तथा जल का सेवन करते रहो। शुद्ध आचरण करने वाले सदाचारियों की संगति में बैठो। अपनी वाणी से सदा स्वच्छ शब्दों का उच्चारण करते रहो। अपनी दृष्टि को स्वच्छ रखो। अपने हाथ से सदा दया का त्याग मत करो। सदा अच्छी वाणी के श्रवण करने से अपने कानों को शुद्ध रखो। कभी भी किसी की निन्दा का श्रवण मत करो। इन गुणों के संग्रह करने से ही ईश्वर स्पष्ट दिखाई देंगे। अर्थात् प्रप्यक्ष दर्शन देंगे। उपर्युक्त गुणों से विहीन केवल मात्र ईश्वर के नामों की रट लगाने वाला पुरुष ईश्वर के दर्शन करने में असमर्थ है।

ईश्वर की व्यापकता का वर्णन करते हुये स्वामी जी कहते हैं :—

पान शमाह पानय परवानय, पानय गथ पानस करानय लो।
पानय रग मुशुक गुल गुलिस्तानय, पानय बुल बुल बोलानय लो।

दीपक स्वयं प्रभु है। उस पर अपने आप को जलाने वाला परवाना भी प्रभु ही है। फूल भी वही (प्रभु) है। फूल का रंग भी वही है। सुगन्धि भी वही

है। बाग में बोलने वाली बुलबुल भी वही (प्रभु) ही है।

स्वनह कांह जाय छुय मकानय, येति न पानय सु बसिथ।
सुय मस्जिद त बुत खानय, येति न पानय पानय सु बसिथ॥
अकलु'य करतु इनसानय, दानु दानय सु बसिथ।
सुय हिन्दुय मुसलमानय, येति न पानय सु बसित॥

ऐसा कोई भी स्थान नहीं जहाँ ईश्वर की व्यापकता नहीं है। मस्जिद तथा मन्दिर में भी एक ही निवास करते हैं। अरे मनुष्य तू बुद्धिमत्ता से काम ले लो यह जान लो कि प्रभु कण कण में व्याप्त हैं। हिन्दू भी वही है और मुसलमान भी वही है। दार्शनिक सन्त कवि मनुष्यों में भेदभाव नहीं पाते हैं। इनके विचारानुसार मस्जिद तथा मन्दिर में कोई अन्तर नहीं है। हिन्दू तथा मुसलमान में कोई भेद नहीं है। मानवता वादी सन्त कवियों की दृष्टि में सारा विश्व एक ही परिवार है।

ज्ञान की आवश्यकता पर बल देते हुये बाह्याडम्बर की अनावश्यकता प्रकट करते हुये स्वामी जी ने कहा है :—

ज्ञानह गंगायि मंज येम्य श्रान कोर, तीर्थ सु कर्यतन या मतह कर्यतन।
भक्ति गंगायि मज येम्यश्रान कोर, तीर्थ सु कर्यतन वा मतह कर्यतन।

जिस ज्ञानी पुरुष ने ज्ञान की गंगा में स्नान किया। अर्थात् ज्ञान का अर्जन किया। उसके लिये तीर्थ के जल में स्नान करना अनिवार्य नहीं है। जिस भक्त ने ईश्वर की भक्ति की गंगा में नहाया उसके लिये तीर्थ के जल में नहाना आवश्यक नहीं है।

अभिमान यस ख्योल वासनायि मल छोल, व्रत सु दर्यतन या मतह दर्यतन।
सरह क्वोर येम्य पान दुरआत्मध्यान। ब्येयि ध्यान दर्यतन या मतह दर्यतन॥

जिसका अभिमान नष्ट हो गया। वासना रूपी मल दूर हो गया। उसके लिये व्रत रखना आवश्यक नहीं है। जिसने अपने आप को पहचान लिया, तथा अपने आत्म देव का ध्यान कर लिया। उसके लिये पुनः ध्यान करने की आवश्यकता नहीं है।

संसार की असारता को प्रकट करते हुये मनुष्य को विषय विलास से दूर रहने के लिये स्वामी जी ने कहा है।

स्वरतह पानय करतहव्यचार, सार सम्सार छासह।
रावरावुन यि लोकहचार युथ कांह जार छासह॥
प्यतह पायस वुनि छुयवार सार सम्सार छासह।
दिह यावुन धनह तय ब्यार, अथ एतिबार छासह॥
विशियन म छिव करनय खार युथ कांह जहार छासह।
ह्यखनय पीतस्यतह पंजार सार सम्सार छासह॥

मामस मो कर आहार, युथ काँह मुरदार छासह ।
नाटह् व्यठरनि छासह झाटजार सार सम्सार छासह ।।

अरे मनुष्य विचार करलो कि क्या यह संसार सार है ? व्यर्थ ही अपनी बाल्यावस्था को गंवाना जुआ खेलने के समान है। अपने जीवन को सुधारने के लिये अभी भी समय है। शरीर, यौवन, तथा धन ये सब चंचल हैं। इन पर विश्वास नहीं है। विषय विलास के लोभ में पड़ कर तुम नष्ट हो जाओगे। विषय विलास तो विष हैं। यदि तुम अपनी इन्द्रियों को विषयों से नहीं हटाओगे, तो तुम्हें जूते खाने पड़ेंगे। माँस का आहार कभी भी करना नहीं चाहिये। माँस तो उच्छिष्ट वस्तु है। माँस खाकर अपने शरीर के मांस की वृद्धि करना क्या कुशलता है।

मन की स्वच्छता, प्रभु चरणों के प्रति आन्तरिक अनुराग, द्वैत भाव के त्याग, सत्यता, नम्रता, तथा अहिंसा से ही परमेश्वर के दर्शन होते हैं। बाह्या-डम्बर प्रभु को प्रिय नहीं। आन्तरिक प्रेम से ही प्रभु के साक्षात्कार होते हैं। प्रभु मनुष्य की सम्पत्ति को देखते नहीं हैं। उसके आन्तरिक प्रेम को देखते हैं। प्रभु यह भी नहीं देखते हैं कि कौन काला है या कौन सुन्दर। उसे केवल भक्त का स्वच्छ मन चाहिये। प्रभु को कथनी नहीं, करनी चाहिये :—

दय नो वुछान अथह बुथ छलनस। वुछान सु मनि दुय वुचलनस कुन ।।
वुछान न दय प्रेनि क्रेहनि कायाये। वुछान सु अन्द्रिमि राये कुन ।।
दयनो वुछान धनह-ध्यार-धाये। वुछान सु अन्द्रिमि राये कुन ।।
दय खोश स्यजरस पजरस त माये। वुछान यु अन्द्रिमि राये कुन ।।
धर्म व मंजह वुछान छुय अहिंसाये। वुछान सु अन्द्रिमि राये कुन ।।

हे मनुष्य ! ईश्वर मनुष्य से दूर नहीं, सर्व व्यापक होने के कारण बहुत निकट है। यदि मनुष्य चाहे तो उसे अपनी आँखों में देखे। जैसे लकड़ी में आग, मेंहदी में लालिमा, अक्षरों में आकार है। वैसे ही अपने मित्र प्रभु को अपने शरीर में देखो ? जैसे हिम में जल, बलवान् में बल है। वैसे ही शिव कण २ में व्याप्त है। उस निर्मल शिव को अपनी हृदय रूपी गुहा में देखलो।

दय नो दूर सु छु जायि जायि मज वुछ।
युथ छु नजदीक अछि नई बायि मंज वुछ ।।
जिनि सई मंज वुछ छुय नार इथह पाठय।
मांजे मंज वुछू वोज्ञ जार इथह पाठय ।।
अछरिन मंज छुय आकार इथह पाठय।
यार [illegible] मंज वुछ ।।

शीनम मंज वुछ छुय जल इथह पाठय ।
बलियस मंज वुछ छुय बल इथह पाठय ॥
थलि थलि वुछ छुय केवल इथह पाठय ।
शिव निर्मल हृदयि गोफायि मंज वुछ ॥

स्वामी जी ने प्रभु गुरु से याचना की है । उन्होंने प्रभु से सांसारिक सुख नहीं मांगा । अपितु पारमार्थिक सुख हेतु शुद्ध बुद्धि दृढ़ विश्वास सम्यक ज्ञान, तथा सहजा वस्था की याचना की है ।

बोजुम दयालु सतगुरु प्रसन्न बनिथ इय दान दिम ।
शुद्ध बुद्ध त दृढ़ विश्वास पूर भक्ति त सम्यक ज्ञान दिम ॥
विनती म्याने कन च थाव सहज अवस्था प्रावनाव ।
दर्शुन पतुन चोपोर हाव, सदा शिवो निरवान दिम ॥

स्वामी जी पूर्ण योगाभ्यासी थे । योग के अंगों का उन्हें पूर्ण ज्ञान था । योग-मार्ग पर चलते हुये उन्होंने परम शिव के दर्शन कर लिये थे । वे साधक को योग-मार्ग पर चलने से क्रम की शिक्षा देते हुये कहते हैं :—

गुरु ध्यान कर अय बद बन्द, कन थाव वजान छुव नादह ब्यन्द ।
पांच नावस्मरणाई करिथ, भ्रूमध्य कुन दृष्टि धरिथ ।
स्वरिथ गुरु चरणार ब्यन्द, कन थाव वजान छुय नादह ब्यन्द ।
ज्योती हुन्दुय न जारह वुछ, फुलिथ सहसरार वुछ ।
ओंकार वुछ ओंकार ब्यन्द, कनथाव वजान छुय नादह ब्यन्द ।

अरे साधक ! अपने द्वारों को बन्द करके गुरु का ध्यान करो, तथा श्रवण करलो नादह बिन्दु बज रहा है । पाँच नामों का स्मरण करके भ्रूमध्य की ओर दृष्टि रख कर गुरु के चरण कमलों का ध्यान करो । ज्योति का दृश्य देख लो । प्रफुल्लित सहस्रार को देखो । ओंकार के बिन्दु को देख लो, तथा श्रवण करलो नाद बिन्दु बज रहा है ।

स्वामी जी ब्रह्मलीन शिव व्रत लाल जी के शिष्य थे। उन्हीं की कृपा से वे परम गति को प्राप्त हुये । स्वामी जी अपने,गुरु सन्त शिव व्रत लाल जी के विषय में कहते हैं:—

म्य कर्मय रोस्त त धर्मय रोस्त सु परमय सन्त वरिथ हय गोम ।
वन्दस च्यथ बुद्ध त मन प्राणई, च्योपारिय सुय छु चमकानई ॥
तसुन्द ध्यानई दरिथ हय गोम सु परमय संत वरिथ हय गोम ।
ब यकदम ओम वुछुम अलख, अगम दीशस दपुनम पख ॥
नजरा अख करिथ हय गोम, सु परमय सन्त वरिथ हय गोम ।
करिनम साक वशिवय ताप सुखय सुखदिथ म्य सारिय शाप ॥

मेरे गुरु उस परम सन्त ने मुझे वरण कर लिया । मैं उस सद्गुरु पर अपना चित् मन तथा बुद्धि न्यौछावर कर दूंगा । मेरे गुरु चारों ओर प्रकाशमान हैं । उन्होंने मुझे परमेश्वर का ध्यान कराया । मैंने उनकी कृपा से अलख ओंकार के दर्शन किये । वे मुझ से बोले अगम देश की ओर चल पड़ो । उन्होंने मुझ पर दृष्टिपात किया । मुझे वरण किया । गुरु ने मेरे तीनों प्रकार के ताप दूर किये । मेरे बुरे शापों तथा पापों को दूर करके मुझे सुखी बना दिया ।

गुरु के शक्ति पात से स्वामी जी दायें-बायें आँखों की रोशनी में दृष्टा तथा दृश्य में अन्दर तथा बाहिर, विष्णु ब्रह्मा, शिव, गणपति, उमा आदि में परम शिव के ही दर्शन करते थे :—

खोवर्यचई दछिन्य चई मंज़ अछिन गाश चई ।
वुछान चई वुछिवोन चई, चई छुख चई छुख चई छुख चई ।।
अन्दर चई न्यवर चई, हुशा ज़ेर ज़बर चई ।
विष्णु चई ब्रह्मा चई, सदा शिव उमा चई ।।
गणपत चई उमा चई चई छुख चई चई छुख चई छुख चई ।

प्रभु (गोविन्द) की सनातनता के बारे में स्वामी जी कहते हैं :—

आलमई ल्येलि नय ओस ज़ामुतुय,
सिरियि चन्द्रमह ल्येलि नय ओस दामुतुय ।
वोद शास्त्र ल्येलि नय ओस द्रामुतुय,
ओस गोविन्द तथ्य अवस्थायि मंज़ वुछ ।

जब संसार का जन्म ही नहीं हुआ था । सूर्य तथा चन्द्रमा का जन्म ही नहीं हुआ था । वेदों तथा शास्त्रों का आगमन ही नहीं हुआ था । गोविन्द उस अवस्था में भी विद्यमान था ।

वर्ष १९७३ में श्रावण शुक्ल चतुर्दशी के दिन स्वामी जी की दिव्य ज्योति महा ज्योति में विलीन हो गई । आत्मा का विश्वात्मा के साथ मिलन हो गया । स्थूल सूक्ष्म के साथ मिल गया । साकार निराकार में समा गया ।

शिना पर संस्कृत का प्रभाव

• बदरी नाथ शास्त्री (कल्ला)

सर जार्ज ग्रियर्सन के मतानुसार दार्दिक वर्ग में मुख्यत: तीन भाषायें आती हैं:—
(१) शिना (२) कश्मीरी (३) काहिस्तानी[1]।

गिलगत[2] के इलाके में जो जबान बोली जाती है, उसको शिना कहते हैं। शिना ज़बान के क्षेत्र का क्षेत्रफल बारह हजार तीन सौ बावन (१२३५२) वर्ग-मील है। इसे प्राय: तीन सौ आदमी बोलते हैं। शिना जबान के प्रदेश में निम्न क्षेत्र सम्मिलित हैं :— गिलगत की तहसील, रियासत-नगर का नीचे का हिस्सा, पन्याल, दारयल, तांगीर, सिन्ध-कोहिस्तान, चिलास, गूरेजवादी, तिलेल, द्रास शहर तक का टुकड़ा, अस्तोर की तहसील, रोन्दो तक सिन्ध की वादी। इन क्षेत्रों में शिना ने भाषा वैज्ञानिक गुणों के कारण अपना आधिपत्य जमा लिया है।

शिना प्रदेश के बाहिर साथ साथ कई भाषायें बोली जाती हैं क्योंकि इसके चारों तरफ भिन्न भिन्न जातियों और नस्लों के लोग आबाद हैं। इसके उत्तर पूर्व में हुंजा नगर है। वहां बुरुशस्की (Burushaski) बोली जाती है। शिना प्रदेश के उत्तर में गोहजाल है। वहां गोहजाली मातृभाषा है। अश्कोमन पश्चिम की तरफ है, वहां फारसी और खोर (चित्राल की जबान) बोली जाती है। यासीन में बिलतुम, खोर और शिना बोलते हैं। पश्चिम की तरफ तहसील गोपस के पश्चिमी आधे भाग में खोर और प्राचीन फारसी चालू है। पूर्वीयभाग में शिना और शंपू, स्वातरियासत में पहले का रिवाज है। शिना प्रदेश के पूर्वीय भाग में कागान-वादी के लोग और मुजफराबाद के लोग पंजाबी बोलते हैं। कश्मीर में कश्मीरी बोली जाती है। द्रास शिना प्रदेश के दक्षिण पूर्वीय कोने में स्थित है। यहाँ के लोग तीन भाषायें बोलते हैं :—कश्मीरी, पोरेगी तथा शिना।

शिना प्रदेश के पूर्व में सारा बलतिस्तान है और वहां सारे इलाके में लोग बलतिस्तानी ज़बान बोलते हैं। शिना की चार उपभाषायें हैं :—

(१) गिलगती उपभाषा जो स्तरीय (Standard) शिना कहलाती है।
पन्याल की भाषा भी इसी से मिलती-जुलती है। (२) अस्तोरी उपभाषा अस्तोर,
गुरेज, आर द्रास में बोली जाती है। (३) चिलासी उपभाषा चिलास और दारयल

---

(1) Linguistic Sarvey of India, by G. A. Grierson.
Vol. VIII Part II P.N. 2 (Introduction).

(२) शिना और गिलगत की जबान लेखक—डा० नामूस, पृष्ठ नं० ३६३

ताँगीर में प्रचलित है। (४) चौथी उपभाषा ब्रूकपा कहलाती है। इन दार्द लोगों को भी 'ब्रूकपा' ही कहते हैं जो इस उपभाषा को बोलते हैं। ये दार्द लोग वादी सिन्ध में ऊपर की तरफ चले गये और अस्कर्दू, परकोता, तोलती से गुज़र कर पोरीग में जाकर आबाद हो गये। पोरीग के दार्द लोगों की 'ब्रूकपा' भाषा जो शिना की एक उपभाषा है, गिलगती स्तरीय भाषा से इस रूप में भिन्न हो गई है कि शिना बोलने वाले इसको नहीं समझ सकते।

ऊपर तो 'दर्द' शब्द का उल्लेख दो तींन बार आ गया है। अतः इस पर प्रकाश डालना आवश्यक है। संस्कृत में[1] 'दर्द' शब्द का अर्थ पर्वत है। संस्कृत साहित्य में पर्वत पर रहने वालों को 'दार्द' के नाम से अभिहित किया जाता है। भविष्यत् पुराण, वायु पुराण, —हरिवंश पुराण — मनुः स्मृति, महाभारत में भी इन्हें 'दर्द' कहा जाता है। कल्हण की राजतरङ्गिणी में भी प्रायः 'दर्द' या 'दार्द' शब्द का प्रयोग हुआ है। पामीर और पंजाब के उत्तर पश्चिम का मध्य-पार्वत्य प्रदेश दर्दिस्तान के नाम से प्रसिद्ध है। दूसरे शब्दों में दर्द देश के नाम के अन्तर्गत समस्त पार्वत्य प्रदेश हिन्दुकुश तथा भारत की सीमा के दर्मियान वाले भाग आते हैं। यद्यपि यह सारा प्रदेश केवल दर्दों द्वारा बसा हुआ नहीं है, तथापि इस भूखण्ड में समस्त आर्य भाषायें बोलने वालों को दार्दिक नाम से पुकारा जाता है।

शिना दर्द भाषाओं का शुद्ध उदाहरण है। इसका स्तरीय रूप गिलगत के आसपास बोला जाता है। जिस प्रकार प्रायः भारत की समस्त भाषाओं तथा उपभाषाओं पर संस्कृत भाषा का प्रभाव किसी न किसी रूप में नज़र आता है, उसी प्रकार संस्कृत का प्रभाव शिना पर स्पष्टतम दृष्टिगोचर होता है। प्रायः संस्कृत तथा शिना के शब्दों में रूप साम्य के साथ-साथ ध्वनि साम्य भी है और अर्थ साम्य भी। निम्नतालिका से यह पूर्ण रूप से स्पष्ट होता है : —

शिना	संस्कृत	कश्मीरी	हिन्दी
दूर	दूर	दूर	दूर
रात	रात्रिः	राथ	रात
लिख	लिख	लेख	लिखो
शुवुव	शिशु	—	बच्चा
खह	खादय	ख्य	खाओ
सह	स्वसा	—	बहिन
पवन	पथिन्	—	रास्ता

1 A Sanskrit English Dictionary by Sir M. Monier williams. पृष्ठ नं० ४७०

शिना	संस्कृत	कश्मीरी	हिन्दी
बिजो	व्रज्	—	जाना
सुरई	सूर्य	सिरी	सूर्य
दिश	दिशा	द्यशा	दिशा
पश	पश्य	पशुन	देखो
हर	हर	—	लेजाओ
अछी	अक्षि	अँछ	आंख
नोम	नाम	नाव	नाम
दर	द्वार	दॅर	द्वार
बन्द	बन्ध	बन्द	बन्द
बाल-बालक	बालः	बालुक	बालक
रगो	रोगी	रूगी	रोगी
मुशा	मनुष्यः	मनुष	मनुष्य
अहुक	अल्प + कः	ओप	थोड़ा
बार	भार	बोर	बोझ
चोम	चर्म	चम	चाम
गिरवम	ग्रीष्म	ग्रिष्म	गर्मी
दुत	दुग्ध	द्वद	दूध
रनो	रन्धन	रन	पकाना
शेव	श्वेत	छोत	सफेद
मालू	महल्लः	मोल	पिता
हिन	हिम	—	बर्फ
खल	खल	खल	खलिहान
बुन	वन	वन	वन
सिन	सिन्धु	स्यन्द	दरिया
श्वुन	श्वन	हून	कुत्ता
शकरी	शर्करीयः	शकर	शकरकी
(१) हंज़	हंस	अँज्ज	हंस
गूम	गोधूमः	—	गेहूं
यो	यव	—	जौ

(२) प्रायः संस्कृत के आदि अथवा शान्त शब्द कश्मीरी में 'ह' में परिवर्तित होते हैं जैसेः—शत से 'हथ', दश से 'दह', क्रोश से 'क्रोह', श्मन से 'हमुन' आदि ।

ब्री	ब्रीहि	—	चावल
मुंग	मुग्दा	म्बङ्ग	मूंग
मजुर	मसूरः	मुसुर	मसूर
मारुच	मरिच	मर्चं	मिर्च
शा	शाकः	हाख	साग
स्वङ्	स्वर्ण	स्वन	सोना
नानग	नाणकः	नानुक	सिक्का
(२) शुक	शुष्क	होख	सूखा
ले	लूम् (छेदने)	लो+नुन	काट
हल	हल	हल	हल
मोस	मासः	मोस	महीना
देस	दिवस	—	दिन
रङ्ग	रंग	रंग	रंग
जरु	जरा	—	बूढा
थुलो	स्थूलः	—	मोटा
गानी	गणिका	गॉत्र	वेश्या
अगार	अङ्गार	—	आग
तुन	तुण्ड	तून	नाभि
जिप	जिह्वा	ज्यव	जीभ
पाय	पाद	पेय	पांव
शस्दुर	श्वघुरः	हिहुर	ससुर
कुड	कुडा	—	दीवार

वारों के नाम

शिना	संस्कृत	कश्मीरी	हिन्दी
ऐथवार	आदित्यवारः	आथवार	इतवार
चन्द्रार	चन्द्रवारः	चन्दरवार	सोमवार
बोङ्वार	भौमवारः	बोमवार	मंगलवार
बडदवार	बुधवारः	बोदवार	बुधवार
ब्रसवार	बृहस्पतिवारः	ब्रसवार	बृहस्पतिवार

---

(२) प्रायः संस्कृत के हादि शब्द कश्मीरी में 'अ' में परिवर्तित होते हैं जैसे :— हस्त से 'अथ', हल से 'अल', हस से 'अस', आदि ।

जुम्माह	(अरबीशब्द)	जुमाह्	शुक्रवार
बटार (बटार)	भट्टारकवार:	बटवार	शनिवार

सख्यावाची शब्दों के नाम :—

शिना	संस्कृत	कश्मीरी	हिन्दी
एक	एक:	अख	एक
दुव[1]	द्वौ	ज	दो
त्रय	त्रय:	त्रय	तीन
चार	चत्वार:	चोर	चार
पोंश	पंच	पेञ्छ	पांच
इन:	षट्	श	छ:
सत	सप्त	सथ	सात
अंश्र	अष्ट	अेठ	आठ
नव	नव	नव	नौ
दई	दश	दह	दस

(१) प्राय: संस्कृत के 'द' को कश्मीरी में 'ज' बनता है जैसे :—द्वीप से जुव, दीप्ति से ज़िति (न) 'द्व' व से ज आदि।

डुग्गर की लोक गाथाएँ- एक परिचय

• प्रो० शिव 'निर्मोही'

लोक गाथा का स्वरूप :—लोक साहित्य की अनेक विधाओं में लोक गाथा का अपना विशिष्ट स्थान है। लोक गाथा क्या है ? भारतीय तथा पाश्चात्य विद्वानों ने इस विषय पर विचार व्यक्त किये हैं तथा 'लोक गाथा' का स्वरूप निर्धारित करने का प्रयास किया है। लोक साहित्य विज्ञान के आचार्यों ने अंग्रेंजी भाषा के बैलेड को लोक गाथा का पर्याय्त माना है। बैलेड को जी० एल० कितरेज ने कथात्मक गीत कहा है।[1] हैजलि ने इसे गीतात्मक कथा कहा है जब कि डॉ० सरे बैलेड को छोटे छन्दों में रची गई एक स्फूर्ति जनक (प्रेरणा-दायक) कविता मानते हैं। जिसमें कोई लोक प्रचलित कथा अन्तर्निहित रहती है।[2] डॉ० सरे के मतानुसार बैलेड में तीन बातों का होना अनिवार्य है (१) छोटे छन्द (२) प्रेरणादायक कथा (३) कथा को विस्तार से वर्णन करना। किन्तु वी० ए० वोट किन के मतानुसार उपरोक्त तत्वों के साथ साथ नाटकीय तत्व का प्रभाव भी गाथा काव्य में रहता है। बैलेड विषयक अपने लेखों में प्रो० एफ० वी० गुएर ने विषय वस्तु की दृष्टि से बैलेड को व्यक्तित्व विहीन तथा साहित्यिक प्रभाव हीन रचना कहा है।

भारतीय साहित्य में गाथा शब्द का प्रयोग ऋगवेद गाथित रूप में हुआ है जिसका अर्थ है गाने वाला। किन्तु बाद में गाथा चरित काव्य के पर्याय में भी प्रयुक्त होने लगा था। गाथाओं की परम्पराओं का रूप भारतीय साहित्य में ऐतरेय ब्राह्मण, मैत्रायणी संहिता, पारस्कर गृह्य सूत्र, आश्वलायेन गृह्य-सूत्र, वाल्मीकीय रामायण वाली जातक तथा श्रीमद्भागवत में भी मिलता है।

संस्कृत के अमरकोष के अनुसार पितृगण, परलोक तथा इसी प्रकार के अन्य विषयों से सम्बन्धित अनुभूतियों विषयक पद (छन्द) या गीत 'गाथा' कहलाते हैं। संस्कृत भाषा के गाथा 'सप्तशती' साहित्य में गाथा शब्द का प्रयोग प्रायः इसी अर्थ में हुआ है।

हिन्दी भाषा के विद्वान डॉ० कृष्णदेव उपाध्याय ने उस प्रबन्धात्मक गीत को लोक गाथा माना है जिसमें कथानक की प्रधानता के साथ-साथ गेयता का

1. English & scothish Ballads.
2. New English Dictionary.

तत्व भी हो ।[4] डॉ० सत्यव्रत सिन्हा[5] ने भी लोक गाथा में 'गेयता' तत्व के साथ-साथ कथानक का होना अनिवार्य माना है ।

पंजाबी भाषा के विद्वान डॉ० करनैलसिंह खिन्द ने इस विषय पर चर्चा करते हुए लिखा है कि—लोक गाथा एक ऐसी परम्परागत गेय काव्य कथा है जिस में शौर्य, वीरता तथा रोमांचित प्रसग बड़ी सादी भाषा में कहे गये हों । डॉक्टर धर्मपाल सैनी[6] ने भी अपने एक शोध लेख में लोक गाथा को-अकृत्रिम और साधन हीन लोक जीवन से सम्बन्धित कथानक प्रधान स्वाभाविक सरस रचना कहा है जो छन्दोबद्ध होने के कारण लोगों को प्रभावित करती है ।

लक्षण :—भारतीय तथा पाश्चात्य विद्वानों ने लोक गाथा की जो परिभाषाएँ दी हैं उन सभी में निम्नलिखित लक्षण निश्चित किये जा सकते हैं :—

१. लोक गाथा एक गीतात्मक कथा होती है ।
२. इस में लेखक के व्यक्तित्व की छाप नहीं होती है ।
३. इस का मूल पाठ परिवर्तित होता रहता है ।
४. इस में आंचलिक रगत होती है ।
५. इस में रचनाकार अज्ञात रहता है ।
६. इस में अलंकृत शैली के साथ स्थान पर स्वाभाविक शैली क प्रयोग होता है ।
७. इस में टेक की पुनरावृति होती है ।

संक्षेप में हम कह सकते हैं कि पुनरावृति, गेयता, परम्परा, अज्ञात रचयिता, परिवर्तन शीलता तथा जन प्रिय आख्यान लोक गाथा के विशेष गुण हैं ।

लोक गाथाओं में उपदेश का अंश भी हो सकता है । उसमें नैतिक मान मूल्यों तथा आदर्शों की चर्चा भी हो सकती है । लोक गाथा मनोरंजन भी करती है किन्तु इसका प्रेरणादायक होना अनिवार्य है ।

डोगरी लोक गाथाएं :—डोगरी लोक गाथाओं की परम्परा का प्रमाणिक इतिहास तो उपलब्ध नहीं है । किन्तु अनुमान है कि अधिकांश लोक गाथाएं मध्ययुगी हैं । इन गाथाओं में डुग्गर के रीति रिवाजों, धार्मिक अनुष्ठानों, टोनो टोटकों, अन्ध-विश्वासों एवं अन्य तत्सम्बन्धी प्रथाओं के स्पष्ट दिग्दर्शन होते हैं। इन गाथाओं में जन इतिहास स्वाभाविक ढंग से अंकित हुआ है । डोगरी लोक गाथाओं में केवल मानव मन की वेदना, हर्ष, विषाद, आनन्द, उद्वेग, उत्साह,

---

४. लोक साहित्य की भूमिका डॉ० कृष्णदेव उपाध्याय
५. भोजपुरी लोक गाथा
६. लोक गाथा का स्वरूप

संयोग-वियोग, प्रताड़ना, घृणा, ग्लानि आदि भावों की ही अभिव्यंजना नहीं हुई है अपितु इस प्रदेश के लोगों की जीवन सम्बन्धी आस्थाएं, परम्पराएं, मान्यताएं तथा चेतनागत भावनाएं भी प्रस्फुटित हुई हैं।

डोगरी लोक गाथाएं डुग्गर प्रदेश के लोक स्वभाव का दर्पण हैं। इन गाथाओं में लोक चिंतन के साथ-साथ लोक-अभिव्यक्ति का पूरा-पूरा प्रभाव है। इन का रचनाकाल भी लोक परम्परा से जुड़ा हुआ है। अधिकांश गाथाएं मध्य-युगीन हैं किन्तु इनका सृजन परम्परागत रूप से अभी तक हो रहा है।

विषय :—डोगरी लोक गाथाएँ, पौराणिक, ऐतिहासिक, तथा धार्मिक सामाजिक विषयों को आधार बना कर रची गई हैं। इन में वैदिक देवता यथा इन्द्र, वरुण तथा अग्नि का केवल मात्र उल्लेख ही किया गया है। पौराणिक देवी देवताओं तथा ब्रह्मा, विष्णु, महेश, दुर्गा, कालिका, वैष्णों देवी इत्यादि पर पर्याप्त मात्रा में स्तुति गान रचे गये हैं। डोगरी गाथाओं में वैदिम धर्म, बौद्ध धर्म अथवा ब्राह्मण धर्म की विवेचना नाम मात्र ही है किन्तु नाथ सम्प्रदाय के वैराग्य वाद की विवेचना सविस्तार की गई है।

डोगरी लोक गाथाएं डुग्गर प्रदेश के वास्तविक इतिहास की महत्वपूर्ण दस्तावेज हैं। इस में एक ओर सामंतवादी प्रवृतियों का यथार्थ चित्रण है तो दूसरी ओर साधनहीन, असमर्थ तथा निरीह लोगों की आत्मपीड़ा की अभिव्यंजना भी हुई है। मानवीय आदर्शों की रक्षा के लिए आत्म बलिदान करने वाले नायकों को ही डोगरी गाथाकारों ने गाथाओं में उच्च स्थान दिया है।

डोगरी गाथाकारों ने सामतों के चरित को आधार बना कर भी कुछ गाथाएं लिखी हैं किन्तु वे गाथाएं लोकप्रिय न बन सकीं। इन गाथाओं में जन मानस का आक्रोश सामंतवाद के विरुद्ध दिखाया गया है।

इन गाथाओं में घर गृहस्ती के दैनिक व्यवहार, नाते रिश्ते, खाने पीने, प्रेम-भावना, हिरख, वैर, जीवन, मृत्यु, सुसराल, पीहर, सास देवरानी, देवर जेठ तथा बहू, इत्यादि समूचे परिवार का चित्रण यथार्थवादी ढंग से किया गया है।

डोगरी लोक गाथाओं में कुछेक मिथक भी हैं जिन पर लोक चिंतन का पूर्ण प्रभाव है। धार्मिक उत्सव, पर्व, झाड़-फूंक, भूत-प्रेत तथा ग्राम्य देवी देवताओं का निरूपण भी स्वाभाविक ढंग से ही किया गया है।

संक्षेप में हम कह सकते हैं कि डोगरी लोक गाथाएँ इन प्रदेश के लोक चिन्तन का बिम्ब हैं।

वर्गीकरण :—डोगरी लोक गाथाएं कई रूपों में उपलब्ध हैं तथा धर्म गाथा, लोक गाथा या वीर गाथा (बार) धार्मिक गाथा का आधार कोई धार्मिक धार्मिक कहानी होती है। डोगरी में धार्मिक गाथा को प्रायः कारक (कारिका)

तथा वीर गाथा को बार' कहते हैं।

कारक :—डोगरी कारक संस्कृत के कारिका शब्द का तद्भव रूप है। कारिका का शाब्दिक अर्थ है :—श्लोक, विशिष्ट कविता, बहुअर्थबोधक अल्प अक्षर, किसी सूत्र की श्लोक बद्ध व्याख्या, एक रागिणी। डोगरी में विशेष धारा से सम्बन्धित विशिष्ट कविता को ही कारक कहा गया है। श्लोक तथा मन्त्र की सी पवित्रता इस में भी रहती है। डोगरी कारिका धर्म-गाथा के अन्तर्गत आती है और इस में देवी देवताओं महान पुरुषों तथा शहीदों का यशोगान होता है। कारिकाओं में अमर आत्माओं के अमर बलिदान का चित्रण भी बड़ी ओजपूर्ण, सरल तथा सरस शब्दावली में होता है। कारिका गायन प्रायः धार्मिक कृत माना जाता है तथा कथानक में चमत्कारित घटनाओं का बाहुल्य रहता है। इन देवी शक्तियों तथा अमर आत्माओं के प्रति श्रद्धाभाव प्रदर्शित किया जाता है। विषय वस्तु की दृष्टि से कारकों का वर्गीकरण इस प्रकार किया जा सकता है।

१. वैदिक देवताओं की कारिकाएँ :—यथा इन्द्र की कारिका। वरुण, अग्नि, पवन इत्यादि प्राकृतिक शक्तियों पर कारिकाएँ लिखी गई थीं किन्तु वे अब केवल टूटे सूत्रों में ही उपलब्ध हैं।

२ पौराणिक देवताओं की कारिकाएँ :—यथा महादेव, विष्णु तथा ब्रह्मा की कारिकाएँ भी टूटे सूत्रों में ही उपलब्ध हैं। किन्तु इन देवताओं का नाम कारिकाओं में बार-बार आता है।

३. पौराणिक देवताओं की कारिकाएँ :—डोगरी लोक गाथाओं में पौराणिक तथा परा-पौराणिक देवियों पर कारिकाएँ भक्ति-भाव से रची गई हैं। डुग्गर प्रदेश में स्थानीय देवियों पर भी कारिकाएँ उपलब्ध हैं। ज्वाला माता, सुकराला माता, वैष्णों माता, काली माता, चिची माता तथा जसरोटे वाली माता प्रसिद्ध कारिकाएँ हैं।

४. ग्राम्य देवी देवताओं की कारिकाएँ :—डुग्गर मे स्थानीय ग्राम्य देवी देवताओं की कारिकाएँ भी बड़ी श्रद्धा-भक्ति से गाई जाती हैं। प्रत्येक गांव में प्रायः जातीय देवी देवता भी हैं और सांझे देवी देवता भी हैं। इन देवताओं की अब भी डुग्गर समाज में पूजा होती है। विशेष अवसर पर इन की कारिकाएँ गाई जाती हैं। कुल देवी-देवताओं पर भी कारिकाएँ गाई जाती हैं। प्रायः किसी कारण शहीद हुए व्यक्ति ही बाद में ग्राम्य देवता मान लिए गये। इन देवताओं तथा देवियों के स्मारक अब भी गांव-गांव में हैं। इन शहीदों को दाता अथवा बाबा नाम से अभिव्यक्त किया जाता है।

डुग्गर में ग्राम्य देवी देवताओं की कारिकाओं की संख्या सैकड़ों में है। किन्तु कुछ उल्लेखनीय कारिकाएँ निम्नलिखित हैं :—

दाता रेणु, दाता लीखो, दाता हल्लो, दाता वाल्ला, दाता सुक्खो, दाता पोखो, दाता वीरम, दाता विद्दो, दाता रंगू, बाबा जितो बाबा भोतो, बाबा थोलू, बाबा बंगी, बाबा पोतो, बुआ मक्खां, बुआ अमरो इत्यादि।

ग्राम्य देवी :—ग्राम्य देवी-देवमाओं से सम्बन्धित बहुत सी कारिकाएं प्रकाशित भी हो चुकी हैं।

५. सामाजिक एवं ऐतिहासिक कारिकाएं :—डोगरी लोक साहित्य में सामाजिक तथा ऐतिहासिक विषयों को आधार बनाकर भी कारिकाएं सृजित की गई हैं। इन कारिकाओं में इतिहास तत्व का निरूपण भी हुआ है। बाबा जितो तथा दातारेणु की कारिकाओं में सामाजिक पक्ष की अभिव्यजना तो हुई ही है किन्तु इतिहास भी मुखर हो उठा है। डोगरी लोक गाथाओं में सामंतवाद के विरोध में जन साधारण का क्षोभ भी ध्वनित हुआ है।

कुछ ऐतिहासिक पात्रों पर कथित कारिकाएं लम्बी-लम्बी यात्राएं करके डुग्गर भूमि में प्रविष्ट हुई हैं। बंगाली लोक गाथा 'गोपी चन्देर गान' समस्त उतरी भारत की यात्रा करती हुई यहां पहुँची है। गोपीचन्द की गाथा डोगरी रंग में इतनी रगी हुई है कि इसका नायक बंगाली समाज की अपेक्षा डुग्गर समाज का नायक लगता है। डोगरी लोक गाथा राजा गोपीचन्द तथा बंगाल की लोक गाथा 'गोपी चन्देर गान' पर तुलनात्मक अध्ययन अभी तक नहीं हुआ है। इसी प्रकार राजा भरथरी की प्रसिद्ध कारिका भी उत्तरी भारत की प्रसिद्ध कारिका है। किन्तु बहुत सी गाथाएं जो ऐतिहासिक विषयों पर लिखी गई हैं संदिग्ध लगती है क्योंकि वर्णित नायकों का इतिहास में विवरण उपलब्ध नहीं होता।

६. नाथ सिद्धों की कारिकाएं :—डोगरी में नाथ सिद्धों पर पर्याप्त-मात्रा में कारिकाएं रची गई हैं। नाथ पंथ में अवस्था रखने वाले जोगी और गारड़ी लोगों ने अपने सम्प्रदाय विशेष का प्रचार करने हेंतु इनका सृजन किया होगा। डोगरी में नाथ पंथ के विरपा नाथ, भैरो नाथ, सिद्ध गौरिया, सहज नाथ, दशहरा नाथ तथा सन्तोष नाथ इत्यादि की कारिकाएं उपलब्ध हैं। इन कारिकाओं में नाथ पंथ के दार्शनिक सिद्धान्तों का प्रतिपादन भी किया गया है।

७. बारा :—'बार' एक वीर रस प्रधान रचना होती है जिस में वीर पुरुषों की वीरता का अतिश्योक्तिपूर्ण वर्णन रहता है। श्रृंगार, करुणा तथा रौद्र रस गौण रूप में रहते हैं। कुछेक बारों में करुणारस भी अन्तंभूत हुआ है और निराशा का स्वर उभरा है। बारे वास्तव में चरित काव्य हैं और डुग्गर प्रदेश के इतिहास की महत्वपूर्ण कड़ियां हैं।

बारों में इतिहासतत्व का निरुपण स्वाभाविक ढंग से हुआ है इन में सामयिक स्थितियों का अध्ययन करने के लिए भी पर्याप्त सामग्री रहती है। डोगरी

में 'मीयां डीडो' की बार का अपना विशिष्ट स्थान हैं। इस में जातीय गुणों की अभिव्यक्ति तथा नैतिक चरित्र की अभिव्यंजना सरस शैली में हुई है। इसी प्रकार वजीर जोरावरसिंह, की बार, वजीर रत्नू की बार। होशियारा सिंह की बार, वाजसिंह की बार, रार्मसिंह की बार तथा मेहतावसिंह की बार, शुद्ध ऐतिहासिक चरित्रों पर चरित बारे हैं। राजा होड़ी तथा राजा हौंस की वारों की ऐतिहासिकता संदिग्ध है।

डोगरी वारों नें राजा मंडलीक की बार अति प्रसिद्ध है। यह सब से लम्बी बार है तथा एक अच्छा सा खंड काव्य है। राजा मंडलीक (गुंगा) कहा जाता है। कि मेवाड़ का सपूत था किन्तु डोगरी गाथाकारों ने उसे आंचलिक रंग से इतना रंगा है कि वह डोगरों का नायक चित्रित किया गया है। उसका जन्म दिन गुगा-अष्टमी डुग्गर के गाँवों में अब भी मनाया जाता है।

डोगरी बारों का सांस्कृतिक मूल्य भी है तथा साहित्यिक मूल्य भी।

दार्शनिक अनुभूति: – उपलब्ध डोगरी लोक गाथाओं में से अधिकांश में किसी भी दार्शनिक विचार-धारा की अभिव्यंजना नहीं की गई है। किन्तु फिर भी समाज में व्याप्त दार्शनिक विचारों से डोगरी गाथाकार अप्रमाणित भी नहीं रहे हैं। डोगरी गाथाकारों में अधिकाँश नाथ पंथ में आस्था रखते थे अत: उन्होंने नाथ सम्प्रदाय के ही दार्शनिक तत्वों का निरुपण इन गाथाओं में किया है।

नाथ सम्प्रदाय का वैराग्यवाद इन गाथाओं में व्याप्त है। राजा गोपीचन्द, राजा हौंस, राजा होड़ी, राजा भर्तृहरि, राजा रत्नपाल इत्यादि पात्र नाथ पंथ के दार्शनिक सिद्धान्तों से प्रभावित होकर स्वेच्छा से सिंहासन त्याग कर वैराग ले लेते हैं। संसार की नश्वरता का ज्ञान हो जाने पर 'अलख निरंजन' का मंत्र जाप करते हैं।

नाथपंथ की निवृत्ति, भावना डोगरी गाथाओं में स्वरित हुई है। नारी के प्रति उदासीनता का भाव इन गाथाओं में परिलक्षित होता है। द्वैत-अद्वैत, सगुण-निर्गुण इत्यादि दार्शनिक तत्वों की विवेचना इन गाथाओं में की गई हैं किन्तु अधिक जोर इन्द्रिय निग्रह पर दिया गया है। इसी प्रकार प्राण साधना, मन साधना, नाड़ी साधना तथा रसायण साधन के संकेत इन गाथाओं में दिये गये हैं[1]। डोगरी गाथाओं में हठयोग की विवेचना भी हुई हैं तथा सत्यान्वेषण की प्रेरणा भी दी गई है। इन गाथाओं में धार्मिक आडम्बर विशेष रूपसे वलि प्रथा रूढ़िवाद, परम्परागत विश्वास तथा आस्थाओं पर गम्भीर चोट भी की गई है। मूर्ति पूजा, अवतारवाद का विरोध तथा शून्यवाद का समर्थन किया गया हैं। डोगरी लोक गाथाओं में नि:संदेह पलायन की प्रवृति उभरी है तथा निराशा का स्वर मुखरित

१. डोगरी लोक गाथाओं पर नाथपंथ का प्रभाव — लेखक

हुआ है किन्तु इस पलायन वाद तथा निराशा वाद की पृष्ठ भूमि में नाथ पंथियों का वैराग्यवाद रहा है। जिसका समर्थन, प्रचार तथा प्रसार डोगरी गाथाकारों ने डोगरी लोक गाथाओं में किया है।

राजा हौंस, राजा होड़ी, राजा मंडलीक, भैरों नाथ, दशहरानाथ, वीर नाथ विरपानाथ, चरपट नाथ, सिद्ध वनखंडी नाथ इत्यादि गाथाओं में नाथ सम्प्रदाय के दार्शनिक सिद्धान्तों की विशद विवेचना की गई है।

डोगरी गाथाकार:—डोगरी लोक गाथाओं का सृजन जाति विशेष के लोगों ने किया है जिनमें जोगी, गारड़ी और दरेस उल्लेखनीय हैं। लोक गाथाएं किसी व्यक्ति विशेष का नहीं अपितु समुदाय वादी सिद्धान्तों का फल है। ये परम्परा रूप में कई शताब्दियों से गाई जा रही हैं किन्तु समय-समय पर इन में संशोधन भी होता रहा है। डोगरी लोक गाथाकार अब भी अशिक्षित तथा अपठित हैं फिर भी इन्हें बीसियों गाथाए कठस्थ हैं। इन लोगों ने इस अमूल्य निधि को अब तक सम्भाले रक्खा है। इन लोगों की आजीविका का साधन भी गाथा गायन ही रहा है।

आधुनिक युग में मनोरंजन के साधनों की वृद्धि से इस व्यवसाय में लगे लोगों को काफी ठेस लगी है। नई शिक्षित-पीढ़ी में इन गाथाओं के प्रति रुचि घटती जा रही है। जोगी गारड़ी भी नये-नये व्यवसाय ढूंढ रहे हैं। बहुत सी लोक गाथाएं ये लोग भूल गये हैं। कई गाथाएं केवल टूटे सूत्रों में ही मिलती हैं। अतः इन गाथाओं को लिपि बद्ध करना आवश्यक है।

अनुसन्धान कार्य:—डोगरी लोक गाथाओं पर अनुसन्धान का कार्य अभी तक वैज्ञानिक ढंग से प्रारम्भ नहीं हुआ है। इन गाथाओं में इतिहास तत्व का निरुपण जिस स्वाभाविक ढंग से हुआ है उस पर वैज्ञानिक ढंग से शोध कार्य होना अति अनिवार्य है क्योंकि इन गाथाओं में इतिहास के सामाजिक आर्थिक तथा धार्मिक पक्षों पर पर्याप्त सामग्री बिखरी है। डोगरी लोक गाथाएं लोक संस्कृति का उज्जवल दर्पण हैं इन में लोक धर्म की अभिव्यक्ति तथा लोक चिंतन की अभि-व्यंजना भी परम्परागत ढग से हुई है।

आशा है डोगरी लोक गाथाओं पर वैज्ञानिक शोध कार्य शीघ्र ही प्रारम्भ हो जायेगा। इस दिशा में कुछ उत्साही युवकों ने कदम बढ़ा भी लिये हैं। डोगरी संस्था जम्मू द्वारा प्रकाशित 'नमी चेतना' में कुछेक विद्वानों के इस विषय पर शोध लेख प्रकाशित भी हुए हैं किन्तु इन लेखों में लोक गाथाओं की परिचयात्मक विवेचना ही की गई है। कल्चरल अकादमी द्वारा प्रकाशित 'साढ़ा साहित्य' (डोगरी) तथा शीराजा (डोगरी) में भी लोक गाथाओं पर शोध लेख प्रकाशित हुए हैं।

डोगरी लोक गाथाओं के संकलन का काम भी हो रहा है। आशा है निकट भविष्य में से लोक गाथाओं पर वैज्ञानिक शोध कार्य आरम्भ हो जायेगा क्योंकि डोगरी भाषा के विद्वानों ने इस क्षेत्र में कार्य प्रारम्भ कर दिया है।

कश्मीरी साहित्य पर गान्धी जी का प्रभाव

● (प्रो०) चमन लाल सप्रू

गान्धी जी इस सदी के दूसरे दशक में भारतीय कर्म क्षेत्र में प्रकट हुए। उन्होंने भारतीय जनसमुदाय को अपने पाँव पर खड़े होकर विदेशी शासन से मुक्ति प्राप्त करने के लिए 'असहयोग-आन्दोलन' का जो अमोघ अस्त्र प्रदान किया, उसकी छाप कश्मीरी जनमानस पर एक दशक के बाद पड़ी। उसके कई कारण हैं। कश्मीर सीधे रूप से ब्रिटिश सरकार के अधीन नहीं था। इसके अतिरिक्त यहाँ समाचारों पर 'सेन्सर शिप' होने के कारण बहुत कम राजनैतिक घटनाओं और गतिविधियों का ज्ञान होता था। लाहौर से छपने वाले एक-आध समाचार-पत्रों की कुछ सीमित प्रतियाँ ही यहाँ के इने-गिने पढ़े-लिखे लोगों तक पहुच पाती थीं।

किसी राजनैतिक गतिविधि को शुरू करने की बात असम्भव थी ही, यहां तक कि सामाजिक एवं धार्मिक गतिविधियों को आरम्भ करने के लिए भी सरकारी आज्ञा प्राप्त करनी पड़ती थी। स्वामी विवेकानन्द जी जब उन्नसवीं शताब्दी के अन्तिम दशक में कश्मीर पधारे थे तो उनके मन में एक मठ तथा संस्कृत कॉलिज खोलने की तीव्र इच्छा थी। यद्यपि तत्कालीन कश्मीर नरेश ने उन्हें ऐसा करने की न केवल अनुमति प्रदान की थी, अपितु हर संभव सहयोग भी देने का आश्वासन दिया था। किन्तु श्रीनगर स्थित अंग्रेज रेजिडेंट ने ऐसा करने से स्थानीय शासक को रोका था। स्वामी विवेकानन्द ने उस समय कहा था कि ब्रिटिश-इंडिया में कार्य करना देशी रियास्तों की अपेक्षा आसान है।

इसी प्रकार महात्मा गान्धी ने भी अपने सामाजिक एवं राजनैतिक कार्यक्षेत्र के लिए देशी रियास्तों की अपेक्षा ब्रिटिश अधिकार के अन्तर्गत भारतीय क्षेत्रों को चुन लिया था। उन्होंने अपने सत्याग्रह अभियान में देशी-रियासतों की अपेक्षा ब्रिटिश अधिकार के अन्तर्गत भारतीय क्षेत्रों को चुना। उन्होंने अपने सत्याग्रह अभियान में देशी-रियासतों को अछूता रख दिया। इतना कुछ होते हुए भी गांधी जी के आन्दोलन का प्रभाव कुछ देशी रियास्तों पर पड़ा जिनमें कश्मीर राज्य भी था।

मुस्लिम बहुल कश्मीर प्रदेश में १९३१ में एक जन आन्दोलन मुस्लिम कान्फ्रेंस के तत्त्वावधान में हुआ। किन्तु शीघ्र ही सन् १९३९ में उक्त संस्था ने अपना रूप बदलकर 'नेशनल कान्फ्रेंस' नाम धारण करके जम्मू-कश्मीर राज्य के

इस समय कुछ एक कविताएं रचकर कश्मीरी कवियों ने बापू को भाव भीनी श्रद्धांजलियां अर्पित कीं।

कश्मीरी साहित्य पर गान्धी जी का जो प्रभाव है वह अन्य भारतीय भाषाओं की अपेक्षा यद्यपि मात्रा में बहुत कम है, किन्तु भावपक्ष की दृष्टि से बहुत महत्वपूर्ण है।

गांधी जी के चुने हुए साहित्य का कश्मीरी में सफल अनुवाद हुआ है। 'मेरी आत्मकथा' के दो अनुवाद हुए हैं। प्रथम अख्तर महीउद्दीन ने और दूसरा मोहन निराश ने किया है। उनकी कुछ चुनी हुई रचनाओं अनुवाद 'कल्चरल अकादमी' द्वारा हुआ। गान्धी जी के बारे में लिखी हुई कुछ सुन्दर पुस्तकों का भी कश्मीरी भाषा में अनुवाद हुआ है। 'गान्धी जियुन ल्वकचार' (गांधी जी का बचपन) अनु० विश्वम्भरनाथ कौल फरहत गीलानी द्वारा रचित 'गान्धी जी सुन्द पंचायती' 'राज्युक तसवुर' इस दृष्टि से उल्लेखनीय हैं। 'चमन' नामक कश्मीरी साप्ताहिक पत्रिका ने एक बार गांधी जी के बारे में एक विशेषांक प्रकाशित किया। इसके अतिरिक्त आकाशवाणी के नेशनल प्रोग्रामों में गान्धी जी के सम्बन्ध में प्रसारित कुछ उत्कृष्ट कार्यक्रमों को भी कश्मीरी में अनुदित किया गया है।

गान्धी जी के आदर्शों एवं उनके व्यक्तित्व पर बीसियों कश्मीरी कविताए लिखी गई हैं। उनमें उल्लेखनीय कुछ एक का यहां पर वर्णन किया जाता है।

अमीन कामिल ने अपनी ऐक छोटी कविता में महात्मा गान्धी के अलौकिक व्यक्तित्व का चित्रण करते हुए अपनी कविता के अंत में इस प्रकार कहा है—

"यि छु कुसताम आदम जाथ बदल।"

(यह तो सर्वथा एक भिन्न ही प्रकार का प्राणी (मनुष्य) है।) इसी प्रकार एक तरुण कश्मीरी कवि फारोक नाज़िकी ने फारसी की मसनवी शैली में 'बापू नामा' लिखा है। यह बहुत ही लोकप्रिय काव्य रचना है। इसमें दो सो 'मिसरेअ' (दोहे) हैं। इस काव्य कृति में गान्धी जी के आदर्शों और उनकी मानव-जाति के लिए उपयोगिता के सम्बन्ध में वर्णन है—

'.........जब तक बेशक सौन्दर्य का आकर्षण बना रहेगा, तब तक उसके लिए हमारा प्रेम बना रहेगा।' दीनानाथ नादिम की उत्कृष्ट रचना जो उन्होंने बापू के प्रति लिखी है का शीर्षक है—"अख संदुर तु ज़ितिन्याह अख" (समुद्र में एक चिंगारी) यह कविता प्रतीकात्मक है। इसमें मानवीय आत्मा की अन्याय और घृणा के प्रति सतत संघर्ष की कहानी है। यह कविता गान्धी जी के प्रति कश्मीरी में लिखी गई सर्वोत्तम कृति है—

"युगों से पृथ्वी घूमती आई है" (सूर्य के चारों ओर)

प्रेम की है सनातन मजबूरी,

पतंगे का (दीप की) लौ के प्रति आकर्षण।"

गुलाम नबी 'फिराक' "गांधी" नामक कविता में कहता है—

हर एक हर एक से कहता है

सत्य कहने से पार लगाएगा बेड़ा खुदा।

लेकिन यह दिन दहाड़े किस के हृदय पर छाया-अन्धियारा ऐसे औदार्य के गीत गाए जाते हैं सर्वत्र जिसने पिए यह घूंट (ज़हर के)

उसे ही चढ़ाया गया सलीब पर......

रघुनाथ 'कस्तूर' ने गान्धी के प्रति अपने विचार व्यक्त करते हुए शान्ति और प्रेम के पुजारी गान्धी जी को संसार को जगाने वाले के रूप में देखा है—

'इस स्वार्थी संसार में पददलितों का एक मात्र सहारा और ठंडक गान्धी है। वह अन्धेरे में रोशनी का मीनार है। 'कुरान' और 'गीता' को बूझकर गुत्थियों को सुलझाता है गान्धी।'

पृथ्वीनाथ कौल 'साईल' ने तरुण कवियों में सबसे अधिक कविताएं गांधी जी के प्रति और उनसे प्रभावित होकर लिखी हैं।

"गांधी जी एक अद्भुत इंसान हैं, जिसने सच्चाई के लिए अपनी जिन्दगी भेंट की है—नहीं उसने अपना सर्वस्व अर्पण किया बस एक सच्चाई के लिए।"

"उसने जब्र और जुल्म को टोका क्यों न झुकें सभी ऐसे मानव के चरणों में। वह ज़माने का बुद्ध ही तो है।"

गांधी जी के भाई चारे और मिलाप की भावना से प्रेरित होकर अलहाज फाज़िल कश्मीरी ने "भाई-चारा" नामक कविता लिखकर बापू के प्रति अपनी श्रद्धांजलि प्रस्तुत की है—

'हिन्दू क्या है और क्या है मुसलमान ?

हम तो बस हैं केवल इंसान

यह हिन्दू और मुसलमान दो ढांचे तो हैं

लेकिन एक मगर हैं प्राण।"

अमीन कामिल ने एक छोटा उपन्यास "गटि मंज गाश" (अन्धेरे में उजाला) लिखा है। इसमें गाँधी जी का प्रभाव बिल्कुल स्पष्ट है। कथानक १९४७ की घटनाओं पर आधारित है।

आधुनिक कश्मीरी साहित्य का विकास अभी होता जा रहा है। ज्यों-ज्यों कश्मीरी जनमानस देश की मुख्य धारा के निकट आता जाएगा उतना ही अधिक और व्यापक प्रभाव गांधी जी का कश्मीरी साहित्य पर पड़ता जाएगा, इसमें कोई सन्देह नहीं।

कश्मीरी लोक संगीत

• श्री पृथ्वीनाथ रैणा

इस विश्व का प्रत्तेक भूखण्ड अपनी २ पृथक् २ विशिष्टायें रखता है। विश्व के प्रत्येक भू-भाग की अपनी २ अलग २ जलवायु है, अपना पृथक् स्वतन्त्र वातावरण है और हर भूखण्ड के निवासियों की वर्ण, रूप, भाषा, जन्म, इतिहास, कला, सभ्यता, साहित्य, रहन-सहन, रीति-नीति अपना अलग २ अस्तित्व रखते हैं। सृष्टिकर्ता ने विश्व के प्रत्येक भू-भाग से सम्बन्ध रखने वाले लोगों को, जो उस पर वास करते हैं, उसके वातावरण और जलवायु के अनुरूप बनाया होता है। यह बात विश्व के प्रत्येक या भू-भाग एवं उस पर जन्म लेने वाले लोगों पर समान रूप से घटती हैं।

कश्मीर भारत वसुन्धरा का शिरोमणि है और कविवर श्रीधर पाठक के अनुसार—'यही स्वर्ग सुरलोक, यही सुर-कानन सुन्दर। यही अमरन को ओक, यहि कहुं बसत पुरन्दर,।।' यहां के सर-सरिता, गिरि शिखर, गह्वर, कानन आदि आदि अपने रूप-सिंगार की मोहनी से किसके हृदय को अपनी ओर आकर्षित नहीं करते ? यह वह ऋषि-वाटिका है, जिसने आध्यात्मस्वरूपा ललेश्वरी, अरिन्यमाल, रूपभवानी तथा प्रबुद्ध श्री परमानन्द, शमस फकीर, वाहब खार, आदि जैसे कवि-प्रसूनों को विकास दिया। यही वह हँसवाहिनी माता शारदा देवी का पुण्य-पीठ है जो सदैव "सिद्धिदासधिकारिनम्" आदि गुणों से सम्पन्न रहा है।

प्रत्येक देश के निवासी अपने देशकाल एवं परिस्थितयों से प्रेरित होकर कला को जन्म देते आये हैं। कश्मीर प्रदेश भी अपने क्षेत्र में विभिन्न कलापों में प्रगतिशील रहा है। प्रस्तुत लेख में मेरा तात्पर्य कश्मीर की संगीत-कला से है।

कश्मीर का अपना लोक-सगीत है, जो यहां की अपनी भाषा कश्मीरी पर अवलम्बित है। कश्मीर के संगीत की अजस्र धारा प्रधानतया छै उपधाराओं में प्रवाहित होती रही है। उदाहरणार्थ—(१) लीला, (२) रोंफ या रोंव, (३) वन-वुन, (४) न्यंद-ब'थ, (५) छ'कर, (६) सूफिआना कलाम्।

(१) लीला—लोक संगीत का यह एक भेद है। 'लीला' का अर्थ है "क्रीड़ा" अर्थात् इसका सम्बन्ध प्राय: हिन्दुओं के देवी देवताओं की स्तुतियों, उनकी क्रीड़ाओं अर्थात् चरित्रों, वेदांत, वैराग्य आदि से होता है। कश्मीर की हिन्दू-नारियां और नर "लीला" का गान प्राय: शुभ अवसरों, महोत्सवों एवं विवाहोत्सवों पर करते हैं। "लीला" का गान व्यक्तिगत रूप से भी, लेकिन प्राय: सामूहिक

रूप से घड़े, मजीर, करताल आदि की लय के साथ, और विवाहोत्सवों पर विशेषकर तुम्बकनारी' (कश्मीरी लम्बूतरे मुंहवाला ढोल) पर किया जाता है। संस्कृत-मिश्रित कश्मीरी भाषा में प्राय: 'लीला' की रचना होती है। प्राचीन कश्मीर लीला के प्रमुख रचनाकार कविवर परमानन्द, लक्ष्मणदास, कृष्णदास, हरिहर कौल, गोविन्द कौल, मानजी, अत्तार आदि हैं। उनकी 'लीलाओं' के पृथक् २ सकलन मिलते हैं, जैसे—'लल्लवाक्' 'ज्ञान प्रकाश', 'हरिहरकल्याण', 'सत्य-हरिश्चन्द्र', 'रामायण', 'अक्कनन्दुन', आदि। आजकल कश्मीर के वर्तमान हिन्दू-कवि भी विभिन्न देवी-देवताओं सम्बन्धी 'लीला' की सुन्दर रचनायें करते हैं।

नाते-शरीफ—कश्मीरी हिन्दुओं की "लीला" की तरह कश्मीरी मुसलमान अल्लाह की प्रशंसा एवं प्रार्थना में नाते-शरीफ का गान करते हैं। "नात" का अर्थ है "दुआ" या "प्रार्थना"। इस में मुसलमानों के अवतारों एवं धर्मानुयायियों के चरित्रों तथा उनके पुण्य-कर्मों पर प्रकाश डाला गया होता है। "लीला" की तरह ही "नातें" भी गाई जाती हैं। कश्मीरी में "नातें" प्राय: नाजिम सा'ब, शमस फकीर, मुहम्मद गा'मी, हक़ानी आदि की मिलती हैं।

(२) रो'फ या रो'व— कश्मीरी लोक-संगीत का दूसरा रूप हमें 'रो'फ' में मिलता है। यह कश्मीरी मुसलमानों-स्त्रियों का एक सामूहिक गान होता है। उसे विशेषकर विवाह के शुभावसरों एव धार्मिक पर्वों—ईद आदि पर वे दो वर्गों में बट कर, खड़ी, अपने दाईं और बाईं ओर की सहेलियों को अपनी दाईं और बाईं भुजाओं से कन्धों से पकड़कर दांया पांव आगे और बांया पीछे धर के दोनों वर्ग की स्त्रियां एक दूसरे के सम्मुख होकर गाती हैं। इसमें कोई वाद्ययन्त्र नहीं बजता। पहले वर्ग की स्त्रियाँ आगे और पीछे हिलने का क्रम जारी रखती हुई पहले 'रो'फ' का एक चरण गाती हैं, फिर सामने वाला दूसरा वर्ग उसी ढङ्ग एवं भाव से दुहराता है। रो'फ के गीत प्राय: मुस्लिम धर्मावतारों के आदर्श जीवन एवं उनके आदर्श पुण्य-कर्मों; इसके अतिरिक्त प्रेमी-प्रेमिका के विषय की चर्चा से सम्बन्ध रखते हैं। ये गीत प्राय: फारसी मिश्रत कश्मीरी भाषा में मिलते हैं।

(३) वनवुन— कश्मीरी लोक-संगीत के अन्तर्गत 'वनवुन का एक विशिष्ट स्थान है। इसे कश्मीरी हिन्दू और मुसलमान नारियां प्राय: विवाहोत्सवों पर गातीं हैं। दोनों प्रकार के 'वनवुन' में भाषा-भेद अवश्य रहता है। हिन्दू नारियों के 'वनवुन' की रचना संस्कृत-मिश्रित कश्मीरी और मुस्लिम नारियों की फारसी मिश्रित कश्मीरी भाषा में होती है। हिन्दू नारियाँ एक स्थान पर बैठकर एवं दो श्रेणियों में विभक्त होकर 'रो'फ्' की तरह 'वनवुन' का प्रत्येक चरण गाती हैं। शुभोत्सव या बिवाहोत्सव के अवसरों पर प्रारम्भिक धार्मिक संस्कार से लेकर अन्तिम संस्कार तक के गेय पद दोनों धर्मानुयायियों के 'वनवुन' के बंधे होते हैं।

'वनवुन' के अवसरों पर पहले किसी किसी वृद्ध अनुभवी महिला के वरण करने की अपेक्षा होती है, जो आदि से लेकर अन्त तक के दूल्हा-दुल्हन के परिणय सम्बन्धी पदों को जानती हो, क्योंकि नव-युवयियां इसकी ओर कम ही ध्यान देती हैं। लेकिन अब इस कठिनाई को तत्सम्बन्धी प्रकाशन ने दूर कर दिया। मुस्लिम महिलायें अवसर के अनुरूप 'रो'फ' की तरह खड़ी २, दो वर्गों में बंटकर 'वनवुन' का गान करती हैं या कभी एक ही स्थान पर बैठकर दूल्हा या दुल्हन या अवसर के अनुकूल दोनों की 'वनवुन' के द्वारा आरती उतारती हैं।

(४) न्यंद'-बॉथ—अपने २ खलिहानों में अपने कृषिकार्य या निराई के समय कृषक-दल न्यंद,-बॉथ का सामूहिक गान करते हैं। 'न्यंद' का अर्थ है 'निराई' और 'ब'थ' का अर्थ है 'गीत'। गीत प्रायः परमार्थ—सम्बन्धी हुआ करते हैं और इनमें प्रेमिका एवं प्रेमी के संयोग-वियोग का भी वर्णन होता है। इसमें कृषकगण अपने स्वर्ण-भविष्य अर्थात् अच्छी खेती होने के लिए अपनी महत्वाकांक्षाओं को प्रकट करते है। उसके पूर्व इसकी अगवाई एक व्यक्ति करता है और बाद में अन्य उसका साथ देते हैं।

(५) छ'कर या छकरी—खलिहानों में जब धान पक रहा होता है और उससे किंचित निश्चिन्त होकर, अहर्निशि; उसके रक्षार्थ, कृषक-वृन्द दीर्घाव-काश की अवधि को गुजारने के लिए अपने खलिहानों के निकटवर्ती सीमा-स्थल पर एकत्रित होकर सामूहिक रूप से कश्मीरी सारन (एक प्रकार की छोटी सारंग) की स्वरलहरी, घड़े और तुम्बकनारी की लय-ताल के साथ छकरी गाते हैं। छकरी के गानों के अन्तर्गत कश्मीरी गज़लें हुआ करती हैं, जिसमें प्रेमी-प्रेमिका के प्रेमा-लाप, नखशिख, सँयोग-वियोग आदि का वर्णन होता है। छकरी के ग़ज़लों की रचना फ़ारसी-गर्भित कश्मीरी में हुआ करती है। छकरी में एक प्रमुख नेता होता है जो कि ग़ज़ल के प्रत्येक पाद का नेतृत्व करता है। दूसरे सहगायक उस गाये हुए प्रत्येक चरण को दुहराते हैं। हर चरणांत पर वाद्य-यंत्रों पर लय को बढ़ाते हुए उस ग़ज़ल की केवल धुन विभिन्न लयकारियों में बजाकर उसका एक अंश पूर्ण किया है। तब इसी क्रम से ग़ज़ल के अन्यांश भी गाये-बजाये जाते हैं।

आजकल कश्मीर में छकरी बहुत प्रचलित और सार्वजनीन हो गई हैं, और भिन्न २ धुनों में इसे विभिन्नावसरों पर बड़ी रुचि के साथ गाया जाता है। कश्मीर के प्रमुख मुसलमान कवियों में हब्बाखातून, वाहबखार, रसूलमीर, न्याम' सा'ब, हक़ानी, महमूद-गामी, शमस-फकीर आजाद, महजूर आदि हैं तथा वर्तमान कवियों की कवितायें भी छकरी के रूप में गाई जाती हैं। छकरी के पद्यमय आख्यान भी गाये जाते हैं, जैसे—'प्रीस्य्-क़ूर', 'गुलरेज', 'क़ालल-क़ूर', 'जिन्य्-मज़ूर', 'ह'र-तोत' आदि।

आजकल भारतीय संगीत की देखादेखी कश्मीरी ग़ज़लों को ग़ज़ल और क़व्वाली के ढ़ङ्ग से भी गाया जाता है।

(६) सूफ़ियाना कलाम्—जब भारत में इस्लामी राज्य की नींव पड़ी, उस समय के प्रथम मुस्लिम विजेता ने अपने साथ अरबी संगीत को भी बाहर लाया, लेकिन विद्वान, दार्शनिक और वेदांतिक सूफ़ियों ने ही प्रथम बार संगीत के असली तत्व और उसकी महानता को समझा था।

सूफीमत वास्तव में हिन्दू-विचारों का ही एक अनुकरण-मात्र है। यह कहा जाता है कि सूफ़ियों ने ही हमारे संगीत का प्रचार नये २ आक्रमणकारियों के बीच किया। 'सूफियाना' का अर्थ है 'सूफियों द्वारा विरचित'; 'कलाम्' अर्थात् 'वाणी'। सूफियों द्वारा विरचित वाणी का श्रीगणेश अरब में मुस्लिम संगीत के नाम से हुआ था। मुस्लिम संगीत का इतिहास पर्शियन अरबी-संगीत का मिश्रित इतिहास है, जो कि एक दूसरे में बिल्कुल घुल-मिलकर एक हो गया है।

इतिहासकारों का मत है कि फ़ारस, टर्की, अरब और उन देशों में, जहां कि बाद में अरब सभ्यता ने अपने पैर जमाये, भारतीय संगीत ही यात्रा करता हुआ वहां पहुँचा, वहां का संगीत यहां नहीं आया। जब मुसलमान भारत आये, तो भारतीय संगीत को पाकर उन्होंने उसे निजी ढांचे में ढालना शुरू किया था। वे उस विरासत को पुन: उसकी मातृभूमि में ले आये। अरब का वैसे अपना कोई विशुद्ध संगीत नहीं था। अरब के गानों में अरबी संगीत का माधुर्य, रोमन और यूनानी संगीत की छाप तथा हिन्दू—संगीत का पुट था। इस प्रकार सूफियाना संगीत का आधार अरबी या मुस्लिम संगीत है। कश्मीरी सूफियों ने कश्मीरी भाषा में गीत-रचना करके इसे अरबी संगीत की विभिन्न धुनों या रागों में बांध लिया। अरब के प्रमुख दार्शनिक और विद्वान संगीतज्ञों से अलफराबी और इब्नि-मिन्हा थे, जिन्होंने संगीत पर बहुत उत्कृष्ट निबन्ध लिखे हैं। उनके कथानुसार अरब-संगीत में बारह राग या मकाम हैं—(१) राहबी, (२) हुसेनाई, (३) रास्ते, (४) हिजाज, (५) बुजुर्ग, (६) कोचक, (७) ईराक़, (८) नवाब, (९) सफ़हा, (१०) उशाशक, (११) जंगला, (१२) बमालिका। इन रागों में से प्रत्येक दो शोभाओं में बंटी हुई हैं और रात्रि के चौबीस घन्टों के लिए चौबीस राग-रागनियां बनीं। इसके अतिरिक्त दूसरी ध्वनियों के मिल जाने तथा भारतीय संगीत की राग-रागनियों के आधार पर भी नये राग या मकाम बनाये गये, जैसे—कल्याण, खमाज़, तिलंग, बहार, आसावरी, भैरवी, विहाग, जैजैवन्ती, झंझोटी, पूर्वी, दुगाह, सेहगाह, चारगाह, आदि इस प्रकार ४८ धुनों या घोषों का अब तक पता चला है। इन मकामों या रागों का गायन समयाधीन होता है और साथ ही सत्रह तालों या लयों का भी पता चला है।

सूफियानां संगीत (मूसीकी) के सम्बन्ध में ऊपर वर्णन किया गया है। उसकी विभिन्न धुनों में बन्धी हुई जो कवितायें रची गयी हैं उनकी पृष्ठभूमि में आध्यात्मिक भावना या प्रेरणा काम करती है। यार, आशक (प्रेमी) या माशोक (प्रेमिका) के सम्बोधनों के द्वारा सूफी-भगत उस अखिलेश्वर या एकेश्वर की अर्चणा करते आये हैं। कुछ गीतों में गायक गायिका के संयोग-वियोग, नखसिख आदि का भी वर्णन मिलता है। सूफ़ियाना संगीत में फ़ारसी गीतों को भी गाया जाता है और भारतीय गीत में प्रचलित तराना, जो अरब की देन है, की रचना भी इन्हीं के साथ या अलग की हुई मिलती है कश्मीरी सूफ़ियाना के कश्मीरी गीत अरिन्यमाल, हब्बाखातून, महमूद गा'मी, नुँद ऋषि आदि से विरचित मिलते हैं। अधिक सामग्री अज्ञेय कवियों की प्राप्त होती है, जो बहुत प्राचीन है।

कश्मीरी सूफ़ियाना संगीत में तीन प्रकार के साज़ (वाद्य) बजते हैं – संतूर, सेतार' या मधम तथा कश्मीरी साज़।

संतूर—यह छाज की शक्ल का होता है और प्रायः शहतूत की लकड़ी से बनाया जाता है। इसे एक पीठिका पर बजाते समय रख दिया जाता है। इसकी सौ तारें होती हैं, जो डेढ़ सप्तकों में राग या मक़ाम के स्वरों की आवश्यकतानुसार मिलाई जाती हैं। मध्य सप्तक के स्वरों को निकालने के लिए पीतल की तारें तथा तार सप्तक (टीप) के स्वरों के लिए इसमें लोहे की तारें लगी हुई होती हैं. जो एक ओर से लोहे की कीलों में बन्धी हुई होती हैं, दूसरी ओर से लोहे की चाभियों से कसी जाती है। इसे पक्षी के पंजे की शक्ल के लकड़ी से बने हुए अवज़ार 'क़लम' से हाथों से तारों पर प्रहार करके बजाया जाता है।

सेतार' या मधम—भारतीय संगीत में प्रयुक्त होने वाली सितार से यह आकार-प्रकार में बहुत छोटी होती है इसमें धागे के परदे लगे होते हैं, जिन्हें मक़ाम के स्वरों की आवश्यकतानुसार ऊपर या नीचे किया जाता है। इसमें पीतल की सात तारें लगी होती हैं। इसे मिज़राव से बजाया जाता है।

कश्मीरी या का'शु'र साज़ -कश्मीरी साज़ सूफ़ियाना संगीत में अपना अलग महत्वपूर्ण स्थान रखता है। यह लकड़ी का बना हुआ होता है। इसके नीचे एक छोटा तूम्बा होता है, जिस पर चमड़ा मड़ा हुआ होता है. इसके साथ पतली और सुडौल डाँड होती है, जिस पर धागे के परदे लगे हुए होते हैं। इसमें तांत की तारें लगी हुई होती हैं, जिन्हें डाँड की चोटी पर चाभियों से कसा जाता है। इसके सिरे पर पीछे की तरफ से भी एक तूम्बा लगा हुआ होता है। इसे गज़ से बजाया जाता है।

ताल और लय की संगीत के लिए "सूफियाना संगीत" में प्रायः 'वसूले' (ढोलक की शक्ल वाले चर्मवाद्य) का प्रयोग किया जाता था। आजकल इसके

स्थान पर अधिकतर तबले (दुकरा) की ही संगत की जाती है ।

कश्मीरी सूफियाना संगीत में सर्वप्रथम वाद्यों पर बजाये गये स्वरालाप द्वारा अभिष्ट राग या मकाम की अवतारणा की जाती है । इसके बाद गीत की स्थाई नेता के निर्देशन के अनुसार की जाती है । इसे जब 'सम' पर समाप्त किया जाता है तब सभी साज़ों पर इस गाई हुई स्थाई की धुन बजाई जाती है और बड़ी मन्द आवाज में मुंह से भी उसके साथ शब्दोच्चारण किया जाता है । स्थाई की धुन को सम पर समाप्त करके गीत के दूसरे चरण 'अन्तरे' को सामूहिक रूप से पहले चरण 'स्थाई' की तरह के ढङ्ग से गाया जाता है । फिर 'सम' पर समाप्त करके केवल वादन-द्वारा इसकी पूर्ति की जाती है, और धीमी आवाज में 'अन्तरे' को दुहराया जाता है । 'सूफ़ियाना' में इस दुहराने की क्रिया को 'जवाब' कहते हैं । इस प्रकार गीत के अन्य भागों में भी पूर्ववत् क्रम चलता है ।

'सूफियाना-संगीत'—भारतीय संगीत के 'ध्रुपद'-गायन' की तरह कुछ सीमा तक स्वर-प्रधान और इनमें गाये जाने वाले गीत भाव-प्रधान होते हैं ।

हाफ़िज़ों का नग़मा—प्राचीन समय में शुभावसरों, विशेषकर विवाहोत्सवों पर "हाफ़िज़ों का नग़मा" कराया जाता था । हाफ़िज़ों के साथ अपने २ साजन्दे हुआ करते थे, और हाफिज़ायें गायन के साथ उसका नृत्य के साथ अभिनय भी दिखाती थीं और उनके साजन्दे उनके गायन की संगत किया करते थे ।

बच्च नग़मा - बच्च' नगमा' में हाफिजाओं के स्थान पर दाढ़ी-मूंछ के बगैर एक बच्चा या लड़का, जामा पहन कर गाया और नाचा करता है । उसके सिर पर स्त्रियों की तरह लम्बे बाल होते हैं, जो उसके मुख पर बिखरे हुए होते हैं । कभी 'बच्चा' कृत्रिम बालों का भी प्रयोग करता है । वह ऐसी मङ्गल की मूल मजलिसों में बहु-रूप धारण करके गायन के साथ नृत्य और अभिनय का भी प्रदर्शन करता है । इस प्रकार रात भर अपने गायन, अभिनय और नृत्य कला से वह 'बच्चा' उपस्थित दर्शकों एवं श्रोताओं का मनोरंजन करता है ।

भाण्ड जश्न'—कश्मीर में किसी भी घर में विवाह-संस्कार के सम्पन्न होने पर जब दुल्हन घर आ जाती है तो ऐसे शुभावसरों की ताक में एक और प्रकार की गायक-मण्डली इधर-उधर पता लेने के लिए घूमती रहती है । किसी घर में शुभ-विवाह के सम्पन्न होने का पक्का पता पाकर वह मण्डली उस घर के आंगन में प्रविष्ट होती है । इस मन्डली का नेतृत्व, खुसरे करते हैं जिन्हें 'सिद्द गूयूं' कहते हैं । ये 'सिद्द गूयूं' कश्मीरी मुस्लिम वेषभूषा में ही प्रायः सु-सज्जित हुआ करते हैं । वे कश्मीरी 'फेरन' (एक तरह की चोली) जिस पर सलमा-सितारा जड़ा हुआ होता है, शिलवार, पैरों में जूता पहने हुए, सिर पर 'कमाबा' (एक प्रकार का टोप, जिसमें ढङ्ग से रोपे के सिरों वाली सुइयां चुभो दी गई होती

हैं). ओढ़नी (पूच) कानों में रोपे के कुण्डलों का गुच्छा (जिसे कनवाजि कहते हैं) बाहुओं में रोपे के बन्ध, हाथों में रोपे की दर्जनों अँगूठियां, आंखों में सुरमा डाले, सिर पर मांग सजाये. घर में प्रवेश पाते ही, बधाई का गान शुरू कर देते हैं। उनके साजन्दे वसूले, छोटे नगाड़े, रबाब तथा मंजीरों के साथ अपने अगवा की संगत करते हैं। बधाई देकर और लड़के वालों से शगून लेकर वे चले जाते हैं।

कश्मीरी लोक-संगीत की एक विशेष झलक 'भाण्ड जशन' में भी मिलती है। हिन्दू-मुसलमानों के धार्मिक महोत्सवों, जैसे ईद, शिवरात्रि (हेरथ), नव-वंरिह (नव-वर्ष) आदि पर भाण्ड लोग घर २ बधाई देते हुए घूमते-फिरते हैं। वे ढोल तथा स्वर-नय (शहनाई) पर कश्मीरी लोक-धुनें बजाकर, कभी गाकर तथा शगून लेकर चले जाते हैं।

कश्मीरी लोक-संगीत की झलकियां "लड़ीशाह" "तंम्बूर्य-नगम", हक्क-ब'थ आदि में भी मिलती हैं, जिनका वर्णन निम्नांकित है :—

लड़ीशाह—लड़ीशाह साथ के लिए प्रयुक्त होने वाला एक ऐसा ताल-वाद्य है जो लोहे के एक पतले सीकचे की शक्ल का होता है। इस के दोनों सिरों को मोड़ लिया होता है। इस सीकचे में लोहे के दर्जनों छल्ले डाले गये होते हैं। वादक इसी 'लड़ीशाह' के एक सिरे को बाईं बगल में और दूसरे सिरे को बायें हाथ से पकड़ कर दायें हाथ मे छल्लों पर एक विशेष लय में छेड़ने का क्रम जारी रखते हुए विभिन्न लोक-कथाओं को एक अनोखे ढङ्ग और धुन में गाता है। 'लड़ीशाह' बजाने के कारण लोक-कथाओं के गाने वालों को ही 'लड़ीशाह' कहते हैं। यह प्राचीन चारणों की स्मृति को सजीव करता है।

,तंम्बूर्य नगम'—यह गायकों और वादकों की एक विशेष मण्डली है। शुभोत्सवों पर आकर रबाबों और वसूलों के साथ यह मण्डली अपने ही ढङ्ग का गान गाती है। इस मण्डली के नेता या मुखिया को 'वोस्त' अर्थात् 'उस्ताद' कहते हैं।

हक्क ब'थ— कश्मीर में नदियों में सामान या बोझ से लदी हुई बड़ी २ नावों या सड़कों पर रेढ़ों या गाड़ियों को खेंचते हुए हाँजी या मजदूर लोग साहस और शक्ति को बटोरने के लिए 'हक्क-ब'थ' बड़े स्फूर्तिदायक शब्दों में गाते हैं। पार्टी में से कुछ लोग गीत का नेतृत्व करते हैं, और शेष उन शब्दों को दुहराते हैं। इन गीतों का विषय उत्साह-वर्धक एवं स्फूर्तिदायक होता है और इन गीतों द्वारा बोझ को गन्तव्य पर पहुंचाने के लिए भगवान् से हिम्मत और बल देने के लिए प्रार्थना की जाती है।

इस प्रकार कश्मीर के संगीत का संसार के अन्य देशों या प्रान्तों की तरह एक महत्व पूर्ण स्थान है। ये हैं कश्मीरी संगीत के विभिन्न रूप और उनके साथ बजने वाले वाद्यों का विस्तृत वर्णन, जो कश्मीरी सभ्यता एवं संस्कृति की महानता का द्योतक है।

वितस्ता*
(उद्भव, विकास तथा प्रवाह)

• प्रो० काशीनाथ दर

वितस्ता एक साधारण नदी न होकर हमारी सनातन परम्पराओं की धारावाहिक प्रतीक है। इस की कोख में हमारी संस्कृति का उत्थान-पतन समोया हुआ है; इस के अविरल प्रवाह में काश्मीरियों का जनमानस प्रतिबिम्बित होता आ रहा है। इस की लहरों की छुन-छुन में कश्मीर का अक्षय जीवन-संगीत मुखरित चला आ रहा है; जभी तो प्राचीन काल से इस की महिमा का वर्णन मुक्तकण्ठ से किया गया है। कश्मीर का प्रख्यात इतिहासकार कल्हण हो, या काव्यकारों के शिरोमणि बिल्हण् अथवा मंख हों, बहुविश्रुत क्षेमेन्द्र हो या सर्वगुणसम्पन्न शैवाचार्य अभिनवगुप्त हो, सभी ने एक स्वर होकर इसे मानवी क्या देवी बना दिया है; माता की ममताभरी उपाधि से विभूषित किया है; इसकी तथा-कथित जड़ धड़कनों में प्राण फूंक दिये हैं; कश्मीर प्रदेश को इस हिम-पुत्री वितस्ता से इतनी सुविधायें सुलभ हो गई हैं कि इसे देवी या माता समझना कुछ आश्चर्यजनक दिखाई नहीं देता। इसकी पावनता से ही आकृष्ट होकर शैवाचार्य अभिनवगुप्त के पूर्वज अत्रिगुप्त ने अन्तर्वेदी से यहाँ आकर इसी के रम्य तट पर अपना निवास स्थान बनवाया था।

इस नदी की पवित्रता तथा प्राचीनता का आभास हमें इस बात से भी मिलता है कि इसका उल्लेख ऋग्वेद के 'नदीसूक्त' में भी आया है और इसे गंगा, यमुना के समकक्ष रखा गया है; गंगा, यमुना और सरस्वती की त्रिधारा भारतीय जन-विश्वासों की आदि काल से आती हुयी अपूर्व थाती है; जभी तो पं० नेहरू ने अपनी अस्थियों को इसी त्रिवेणी संगम को अर्पित करने का आग्रह किया था; इसी प्रकार कश्मीर में वितस्ता लोक-कल्याण का उत्तरदायित्व, वेदों के कुहरे से ढके समय से लेकर बराबर आज तक कश्मीर की धरती और जन-मन को एक-साथ सींचकर निभाती आ रही है।

यद्यपि भारत की धार्मिक तथा सांस्कृतिक आस्थाओं के विश्वकोष महाभारत में भी इस नदी का नाम आया है, फिर भी हमें इसका सविस्तार वर्णन "नीलमतं-पुराणं, राजतरंगिणी" और "हर चरित चिन्तामणि' में मिलता है। यहाँ तक इस के नाम 'वितस्ता' को भी सार्थकता प्रदान की गई हैं; इन प्राचीन ऐतिहासिक स्रोतों के अतिरिक्त इस नदी के माहात्म्यों में भी इस पयस्विनी की

* लेखक द्वारा प्रणीत एक शोध पत्र 'वितस्ता' पर आधारित।

भूरि-भूरि प्रशंसा की गई है। नीलमत में इस नदी को कश्मीर के प्रथम शासक नील नाग की दुहिता माना गया है। इस में दी गई एक गाथा के अनुसार यह कहा गया है कि जब कश्यप ऋषि ने सतीसर से जल का सम्पूर्ण निकास करवाया, तो जल के अभाव में नाग-जनता को असख्य कठिनाइयों का सामना करना पड़ा; इसके साथ ही पिशाचो से सम्पर्क होने के कारण यहां के लोग अपवित्र हो गये थे; अतः इन न्यूनताओं का निराकरण करने के लिये कश्यप ने शिव जी से प्रार्थना की वे अपनी प्रेयसी पार्वती को एक नदी के रूप में अवतरित होने की प्रेरणा दें। शिवजी ने पार्वती से इस सम्बन्ध में पूछा तो उसने उत्तर दिया कि आप अपने त्रिशूल से पृथ्वी में रन्ध्र पैदा करें, जिससे मैं वहीं से एक नदी के रूप में बाहिर प्रवाहित होऊंगी; तदनुसार शिवजी ने नीलनाग के विश्रामस्थल के समीप ही अपने त्रिशूल से एक वितस्ती के बराबर गड्ढा खोदा; इसमें से पार्वती वितस्ता का नाम धारण करके बाहर फूट पड़ी; 'वितस्ती' एक संस्कृत शब्द है जिसका अर्थ बारह अंगुल के बराबर दूरी है; अथवा खुले हाथ के अंगूठे से कनिष्ठका तक की लम्बाई है; वितस्ती के बराबर गड्ढे से निकलने के कारण ही इस नदी का नाम वितस्ता पड़ा, और यह नामकरण स्वयं शिव जी द्वारा प्रतिफलित हुआ है।

"तस्या नाम वितस्तेति कृतवान् शंकरः स्वयम्।
वितस्तिमात्रं गर्त तु शूलेन कृतवान् हर :।
रसातल गता येन निष्क्रान्ता सा सरि द्वरा।

(नीलमत पुराण-६५-६६,२१७-२१८)

इस सरिता के कई अन्य नाम भी प्रसिद्ध हैं, जैसे नीलजा, नीलकुण्ड इत्यादि। माहात्म्यों में इसे 'शूलगाथा' के नाम से भी सम्बोधित किया गया है; कल्हण ने नीलमत में दिये गये आख्यान का शब्दशः अनुमोदन किया है और साथ ही यह भी कहा है कि यह नीलकुण्ड जहां से यह नदी प्रवाहित हुई गोलाकार था जो नीलनाग का जैसे राजसी छत्र हो।

नीलमत में लगभग कश्मीर की साठ नदियों का वर्णन है, परन्तु इन सब से वितस्ता की महत्ता ही सर्वोपरि है। नीलमत में यह भी कहा गया है कि यह नदी दो बार अन्तर्हित हुई, और तब ही इसने फिर से प्रवाहित होना स्वीकार किया जब इसे सिन्धु, विशोका (काश्मीरी व्यशिव) और गोदावरी (काश्मीरी गुदर) का साहचर्य प्राप्त हो। अन्ततः आरवुबिल (अर्हबल प्रपात) से विशोका ने, और गंगबल झील से सिन्धु ने जन्म लिया, और यह तीनों बहनें मदमाती गति से कश्मीर में बहने लगीं। वितस्ता का प्रादुर्भाव और इसके उपरान्त अदृश्य होना, इस तथ्य की ओर इशारा करता है कि इसके एक से अधिक स्रोत हों; 'वितस्तामाहात्म्य' में 'वितस्तात्र' काश्मीरी (व्यथु वोतुर) को भी इस का एक उपस्रोत माना गया

है। यह जगह वेरीनाग से लगभग दो मील नीचे उत्तर-पश्चिम में स्थित है। यहां पर एक भ्रम का निवारण करना अभीष्ट बन जाता है; नील नाग को आगे के इतिहासकारों ने 'वेरीनाग' का नाम दिया है; और यह नीलनाग वह हिमानी झील नहीं जो 'यूसमर्ग' के समीप है और अभी भी इसी नाम से पुकारी जाती है इस झील से 'दूधगंगा' (क्षीरनदी) निकलती है, जो वितस्ता के साथ श्रीनगर से बाहिर सातवें पुल से भी नीचे आ मिलती है। वितस्ता के प्रवाह का रास्ता आज के नील नाग से किसी प्रकार का सम्बन्ध नहीं रखता। अत: हमें यह स्वीकारना है कि प्रस्तुत वेरीनाग ही नीलमत का नीलनाग है; इस तथ्य की पुष्टि हमें स्वत: सुलझानी है।

अनन्तनाग जिले के अन्तर्गत आज का 'शाहाबाद' पुराने समय से 'वेर' के नाम से प्रसिद्ध था; ओबुलफज़ल ने भी 'आईनि अकबरी' में इस परगने का नाम 'वेर' ही दिया है; अत: इस बात में आपत्ति करने की कोई भी गुंजाइश नहीं रह पाती कि बाद में इस नीलनाग को 'वेर' के नाग (चश्मे) का नाम मिला हो; गांव के नाम से आजकल भी बहुत चश्मे पुकारे जाते हैं, अत: यही नीलनाग परगने के नाम से सम्बद्ध होकर बाद को वेरीनाग के नाम से प्रख्यात हुआ। ओबुल फज़ल ने 'आईनि अकबरी' में यह स्पष्ट रूप से अंकित किया है कि यह चश्मा वितस्ता का आदि स्रोत है, और इस के चारों ओर बहुत से मन्दिर खड़े थे, जो पत्थर के बने हुये थे। आजकल केवल एक शिवालय इस नाग के समीप दिखाई देता है।

परन्तु यह बात भी विश्वास से परे बन जाती है, कि एक नाग से निकल कर वितस्ता का इतना बड़ा आकार सम्भव था; इस के प्रवाह में अन्य नदी-नालों का संयोग अवश्यभावी हो जाता है; अनन्तनाग के समीप ही वितस्ता का पूरा और वास्तविक आकार निखर आता है, और यहीं पर इसमें और भी नदी नाले आकर मिल ज ते है; आज का 'ब्रिंगी' (प्राचीन भृङ्गी) नाला सर्व प्रथम इसके पानी को गले लगाता है; उत्तर पूर्व से 'आरपथ' (प्राचीन हर्षपथ) नद अछावल (प्राचीन अक्षवाल) से निकल कर इसे पुष्ट बनाता है, और यह संगम 'खनाबल' में दृष्टि-गोचर होता है। उत्तर से 'लग्नदर' (प्राचीन लम्दरी) शेषनाग झील से निकल कर सिर फटौल गति से झूमती हुई वितस्ता के गम्भीरत्व नें खो जाती है; इस प्रकार विपुलकाय बन कर वितस्ता 'खनाबल' से श्रीनगर की ओर मदिर-मन्थर चाल से बहने लगती है। यहीं से इस में किश्तियां, नावें इत्यादि चल सकती हैं, और कुछ समय पहले तक यही पानी का रास्ता अधिक लोकप्रिय यातायात का साधन रहा है।

श्रीनगर तक आते-आते इसके तट पर कई तीर्थ और राजधानियाँ निर्मित हुई थीं, खनाबल से लगभग दो मील नीचे विजयेश्वर (काश्मीरी व्यजब्रोर) तीर्थ

स्थित है; कल्हण के कथनानुसार यह तीर्थ सबसे पहले महाराज अशोक ने बनवाया था, और यहां पर एक विहार तथा एक विश्वविद्यालय भी निर्मित किये गये थे। आगे चलकर वितस्ता के साथ शिव नदी (प्राचीन विशोका) कुलगाम की ओर से और 'रम्बिआरा' (प्राचीन रामायणाटवी) शुपयाँ की तरफ से आकर इस में मिल जाते हैं, और इस पवित्रस्थल का नाम पुराने समय में गम्भीर सगम था; अब केवल इसे संगम के नाम से पुकारा जाता है।

संगम से कुछ मील नीचे की ओर हमें महाराज अवन्तिवर्मन् से स्थापित राजधानी अवन्तिपुर के दर्शन होते हैं; आजकल वहां पर केवल दो विशाल मन्दिरों के अग्रावशेष हमें दिखाई देते हैं; इसी महाराजा के समय में वितस्ता के प्रवाह को 'सूय्या' नाम वाले एक प्रतिभाशाली इञ्जीनियर ने सुस्थिर बनाया, इसके अडियलपन को लगाम देकर आकस्मिक बाढ़ों के प्रकोप से कश्मीर को सुरक्षित किया, जभी तो उसके नाम के साथ 'अन्नपति' नाम वाली सार्थक उपाधि जुड़ गई। अवन्तिपुर से पाँच अथवा छः मील नीचे, ललितादित्य महापराक्रमी महाराज के नाम पर 'ल्यतपोर' (प्राचीन ललितपुर) बसा हुआ है। यहां पर अब केसर की मन भावनी क्यारियां ही नजर आती हैं; इसके बाद तीन या चार मील की दूरी पर वितस्ता पाम्पुर (प्राचीन पद्मपुर) के साथ होकर बहने लगती है। यह उपनगर ललितापीड़ की रानी जयादेवी के भाई पद्म ने बसाया था; आजकल यहां केसर की उपज और विक्रय का व्यवसाय सुचारू रूप से होता है; यहीं पर योगेश्वरी लल्ला का एक जोहड़ भी विद्यमान है जिसे ललत्राग प्राचीन (लल्लतड़ाग) कहा जाता है।

अब वितस्ता श्रीनगर के बहुत समीप आ जाती है और पांड्रेठन (प्राचीन पूर्णाधिष्ठान) के निकट बहने लगती है; यह प्रवरसेन प्रथम की राजधानी थी; महाराज अशोक का भी इस नगर से सम्बन्ध रहा है; आज यहां पर अब बौद्ध विहारों तथा शैव और वैष्णव मन्दिरों के भग्नावशेष देखने को मिलते हैं। इससे मील डेढ़ मील की दूरी पर अब वितस्ता श्रीनगर (प्राचीन श्रीनगरी या नगरी) में प्रवेश करती है; यह भव्य नगर इसके दोनों तटों पर बसा हुआ है, और आरपार जाने के लिये पुल बनाये गये हैं; हिन्दू शासन-काल में ये पुल नावों को एक दूसरे से जोड़ने से बनाये जाते थे, अस्थायी थे; शत्रु के आक्रमण के समय इन नावों को एक दूसरे से पृथक किया जाता था और इस तरह शत्रु के लिये पार आ जाना कठिन हो जाता था; स्थायी रूप में पुलों का निर्माण सुलतानों के शासनकाल से होता रहा है। परन्तु वितस्ता में स्नान कोष्ठ (कश्मीरी स्नान कुठ) हिन्दू राज्य के समय भी विद्यमान थे; कल्हण इन के संबन्ध में निर्विवाद रूप से लिखता है; नगर में प्रवेश करने के साथ ही वितस्ता से 'मार-षूंठिकोंली' (प्राचीन महा-

सरित्) का समागम होता है। वास्तव में यह डल सरोवर से निकाली गई एक नहर है; चूंकि डल का धरातल 'मार' से कुछ ऊंचा था, अतः उस समय भी आजकल के 'डलगेट' की तरह वहाँ पर पानी का धरातल सुनियन्त्रित किया जाता था; कल्हण लिखा है इस के लिये एक राक्षस के घुटने को प्रयोग में लाया गया था; यह 'मार' आधुनिक खोड़बल (प्राचीन क्षुरिकाबल) तक फैली हुई थी, और इस के बीच के स्थल पर मक्षिका स्वामी का मन्दिर बना हुआ था; मक्षिका-स्वामी को ही आजकल 'मायसूम कहा जाता है; 'मार' और वितस्ता के संगम पर महाराज क्षेमगुप्त से निर्मित क्षेमगौरीश्वर मन्दिर विद्यमान था; इस की साक्षी हमें बिल्हण के महाकाव्य विक्रमाङ्कदेव चरित में मिलती है। आगे कुछ सौ गज चल कर वितस्ता से बायीं ओर एक नहर निकाली गई थी, जिसे आजकल किटू कोंल (प्राचीन क्षिप्तिका) कहा जाता है। और यह छोटी कुल्या सातवें पुल के समीप ही फिर वितस्ता से मिल जाती है; सम्भवतः यह नहर निकालने का अभिप्राय यह रहा हो कि एक तो श्रीनगर बाढ़ से बचता रहे, और दूसरा काठल (प्राचीन काष्ठलेश्वर) एक द्वीप का रूप लेकर आक्रमणों से बचता रहे; इसी काठल में टकनशाला (मुद्रा टंकित करने की जगह) भीथी; जिसे आजकल टकीपोरा कहते हैं; आजकल इस किटॅ कोंल का आकार बहुत छोटा है, उस समय यह ब्येमुत (प्राचीन अभिन्यु पुर) तक फैली हुई थी; इसी काठल की उच्च भूमि पर महारजों के महल बने हुए थे जिनका निर्माण लकड़ी (काष्ठ) से किया गया था, यही प्रबल कारण है इसके भग्नावशेष हमें यहाँ पर नहीं मिलते; कल्हण के अनुसार भी महाराज अनन्त का महल सोमेश्वर मन्दिर (आधुनिक सोमयार) के सामने था; और इस राज प्रावाद के निकट ही सदाशिव मन्दिर (आज का पुरुषयार) था।

श्रीनगर के बीचोंबीच वितस्ता धीर-गम्भीर गति में बहती जाती है और छट्टे तथा सातवें पुल के मध्य में 'व्यदमर' (प्राचीन विद्यामठ) से होती हुई शादीपुर (प्राचीन शहाबुदीनपुर) के सामने सिन्धु का साहचर्य प्राप्त करती है; परन्तु आन्तरिक और बाह्य साक्षी के आधार पर हमें यह मानना होगा कि आज का शादीपुर के सामने का बहुत प्राचीन कल्हण जिन मन्दिरों का इस संगम पर उल्लेख करता है वे तो परिहासपुर तथा फलपुर में भग्नावस्था में मौजूद हैं; इसलिये यह अनुमान लगाना सहज बन जाता है कि उस समय वितस्ता इन्हीं दो ग्रामों के पास से गुजरती थी; बाद में इस ने अपने प्रवाह की गति मोड़ ली हो। नदियों का इस प्रकार मूल रास्ते से भटक कर कोई अन्य रास्ता बना लेना एक भौगोलिक सत्य है। कल्हण साफ शब्दों में लिखता है कि इस वितस्ता और सिन्धु के संगम पर एक वट बृक्ष आरोपित था; आजकल यहाँ पर एक चिनार

लगा हुआ है। परिहासपुर के समीप ही सिन्धु पिछले समय वितस्ता से आ मिलती थी; आजकल का यह संगम जिसे प्रयाग भी कहा जाता है बाद की चीज़ हैं ।

संगम से कुछ मील नीचे सुम्बल का गाँव बसा हुआ है; जब वितस्ता बायीं ओर बह रही थी तो प्राचीनकाल में वहीं पर जयपुर नाम की राजधानी महाराज जयापीड़ ने निर्मित की थी; इसी के समीप 'अन्दरकोट' नाम वाली कश्मीर के हिन्दुओं की अन्तिम राजधानी थी; यहीं पर कोटारानी ने अपने प्राण त्यागे थे; शहमीर ने यहीं पर से कश्मीर में मुसलमानी शासन की घोषणा की थी; आजकल सुम्बल पुल की बांई ओर नन्दिकेश्वर तीर्थ वितस्ता के किनारे खड़ा है; पिछले समय में इसे 'नन्दिकेशव' कहा जाता था। यहीं से कुछ दूरी पर वितस्ता से निकाली गई एक नहर मानसबल (प्राचीन मानस सर) की ओर जाती है; इस सरोवर का उल्लेख हमें नीलमत और जोनराजकृत राजतरङ्गिनी में भी मिलता है।

कुछ मील आगे चलकर वितस्ता वुल्लर झील में से अपना रास्ता बनाती हुई सोपुर (प्राचीन सुय्यापुर) की ओर बढ़ती है। वुल्लर झील का प्राचीन नाम महापद्मसर था; जोनराज इसे 'उल्लोल' का नाम देता है, जिसका तद्भव रूप वुल्लर है। वुल्लर से निकलकर वितस्ता सोपुर के तट को छूने लगती है; जैसा कि इस उपनगर के नाम से स्पष्ट है यह सुय्या अन्नपति का बसाया हुआ नगर था; आगे बढ़ कर वितस्ता मे हन्दवारा (प्राचीन हिन्दूवाट) की ओर से इस में तीन अन्य नदियाँ मिल जाती हैं; ये हैं 'पोहर' (प्राचीन पुहर)। 'मावर' (प्राचीन माहुरी) और 'हमली' (प्राचीन समल)। इस तरह अपने विपुल शरीर को इठलाती हुई गजगामिनी की तरह धीरे-धीरे वितस्ता बारामूला (प्राचीन वाराहमूल) की ओर बढ़ने लगती है। यहीं पर 'विष्णु आदि वाराह' का प्राचीन मन्दिर दायें किनारे पर स्थित था, जिसे आजकल कोटि तीर्थ कहा जाता है। जोनराज लिखता है कि इस भव्य मन्दिर को सिकन्दर बुतशिकन ने नष्ट-भ्रष्ट किया था। वितस्ता के बायें तट पर हमें प्राचीन बौद्ध नगरों के अवशेष मिलते हैं; आज का 'वुश्कोर' कनिष्क के पुत्र हविष्क के द्वारा बसाया हुआ हविष्कपुर है। कनिष्क ने स्वयं इस नगर से थोड़ा ऊपर की ओर कनिष्कपुर की नींव डाली थी; इसे आजकल 'कानिसपोर' कहा जाता है।

आगे बढ़कर वितस्ता पहाड़ी प्रदेश में प्रवेश करती है, और इसका पाट बहुत कम हो जाता है, और इसी कारण इसे इस स्थान पर कनिकामाता (कनिमोज) तीर्थ के नाम से पुकारा जाता है; इसका अर्थ छोटी माता (संस्कृत) और पत्थरीली माता (काश्मीरी) में बनता है। यहां पर एक 'द्वार' बनाया गया था, जहाँ सेना रहती थी, और आने जाने वाले देशी-विदेशी लोगों पर नजर रखी जाती थी; यह स्थान पुराने समय में बहुत ही महत्वपूर्ण माना जाता था, क्यों कि

यही तो घाटी का प्रवेश द्वार था।

इसी स्थान पर प्राचीन समय में इन्द्र द्वादशी का उत्सव मनाया जाता था; भाद्रपद शुक्ल पक्ष द्वादशी को ही इन्द्रद्वादशी कहा जाता है; परन्तु पिछले समय में यह खुशियों का समारोह था, परन्तु अब यहाँ पर पितरों के लिये श्राद्ध-तर्पण किया जाता है; इस तीर्थ से कुछ पहले ही वितस्ता की धीर-गम्भीर गति का अन्तिम पड़ाव खादनयार है; यह स्थान महाराज मेघवाहन की रानी 'खादना' ने एक बौद्ध विहार के रूप में बसाया था। इस तरह वेरी नाग से जन्म लेकर, खना-बल से पूरा आकार पाकर यह वितस्ता खादनयार तक शान्त-सौम्य चाल से बहती जाती है, और लगभग सत्तर मील की यह दूरी इसके प्रवाह को सार्थक बनाती है; इसके बाद यह वितस्ता भूगर्भ में विलुप्त होकर पाकिस्तान में 'जेलहम' का नाम पाकर पुनर्जन्म धारण करती है।

कश्मीरी इस वितस्ता को 'व्यथ' 'व्यतस्ता' के प्यारे नाम से भी पुकारते हैं। और विशेषकर काश्मीरी पण्डित इस का जन्मोत्सव "व्यथॅत्रुवाह" के नाम से मनाते हैं; यह पर्व भाद्रपद कृष्णपक्ष त्रयोदशी को पड़ता है; इस दिन पर वितस्ता में फलों, फूलों की भेंट चढ़ाई जाती है। नीलमत पुराण में इस की पावनता का इस प्रकार वर्णन किया है:—

"तन्मध्येन च निर्माता सीमन्तमिव कुर्वती।
वितस्ता परमा देवी साक्षाद्हिमनगोद्भवा।।"

(पवित्र नील नाग) से निकलकर, कश्मीर प्रदेश को एक स्त्री की वेणी की तरह दो भागों में विभक्त करती हुई, यह परम देवी वितस्ता वस्तुत: हिमालय की (मानस) पुत्री है।

नीलजा—३
के
रचनाकार

(रचनाओं के क्रम से संक्षिप्त

जीवन—परिचय)

●

जन्म: १९१६, कुलगाम अनंतनाग (कश्मीर) शैव-दर्शन के प्रकाण्ड विद्वान, शैवदर्शन सम्बन्धी हिन्दी, सस्कृत और अंग्रेजी में अनेक ग्रन्थों के रचयिता, इस समय आचार्य अभिनव गुप्त के तन्त्रालोक पर अंग्रेज़ी में शोध–कार्यरत।

पता—संस्कृत विभाग, हिमाचलप्रदेश विश्व विद्यालय शिमला-५

डॉ० बलिजन्नाथ पण्डित

जन्म : १९१०, प्रख्यात विधिशास्त्री, भूतपूर्व न्यायाधीश इलाहाबाद उच्च न्यायालय, भूतपूर्व विधान सभा सदस्य, इलाहाबाद लॉ जरनल के सम्पादक (१९३८-५१) अनेक शिक्षण एवं सामाजिक संस्थाओं से सम्बद्ध, यूरोप और अमरीका का भ्रमण, सम्प्रति डॉ० कैलाशनाथ काटजू कॉलिज इलाहाबाद के अध्यक्ष, रक्षा मंत्रालय द्वारा संचालित सैनिक स्कूलों की प्रबन्ध कारिणी समिति के सदस्य, अखिल भारतीय शाक्त सम्मेलन के अध्यक्ष, 'चण्डी' पत्रिका के सस्थापक, 'दक्षिण यात्रा" और "खोये फूल" के प्रणेता।

पता— २५ एडमन्स्टन रोड, इलाहाबाद (उ०प्र०)।

न्यायमूर्त्ति श्री शिवनाथ काटजू

जन्म : १६२४, श्रीनगर हिन्दी संस्कृत और अंग्रेजी के विद्वान, कुछ समय अध्यापन किया, तदनन्तर पत्रकारिता, सप्रति मुख्य संसदीय भाषान्तरकार (चीफ पार्लियमेंट्री इंटर-प्रेटर) अनेक पुस्तकों एवं शोध-पत्रों के प्रणेता।

पता—सेक्टर ४, २६६ रामकृष्ण पुरम्, नई दिल्ली-२२।

श्री जानकी नाथ भान

जन्म : १६१७, मीरपुर (जम्मू) हिन्दी-संस्कृत विद्वान, अनेक शोधपूर्ण पुस्तकों एवं निबन्धों के रचयिता, हिन्दी में हास्य-व्यंग्य के प्रतिष्ठित लेखक, अनेक राज्य-सरकारों द्वारा सम्मानित।

पता—प्राचार्य एव अध्यक्ष हिन्दी तथा पंजाबी विभाग, जम्मू विश्वविद्यालय, जम्मू।

डॉ० संसार चन्द्र

जन्म : श्रीनगर। हिन्दी, संस्कृत एवं अंग्रेजी की विदुषी, समाज सेवा में रुचि, कुछ समय श्रीनगर के गवर्णमेंट कॉलिज फॉर वीमेन में अध्यापन तदनन्तर जम्मू-विश्व विद्यालय के संस्कृत विभाग में- संप्रति उक्त विभाग में रीडर।

पता—२० न्यू कम्पनी बाग, कनाल रोड, जम्मू।

डॉ० कौशल्या वल्ली

जन्म : १९२७, भानु मोहल्ला, श्रीनगर। हिन्दी और संस्कृत के विद्वान, अनेक शोधपूर्ण लेखों तथा पुस्तकों के लेखक कश्मीरी और हिन्दी सूफी काव्य पर शोध-प्रबन्ध की रचना। आकाशवाणी जालंधर से अनेक नाटक और वार्त्ताएँ प्रसारित। संप्रति गवर्णमेंट कॉलिज डेरा बसी (पं०) में वाईस-प्रिंसपल।

पता—१६०-१५ ए, चंडीगढ़।

डॉ० जियालाल हण्डू
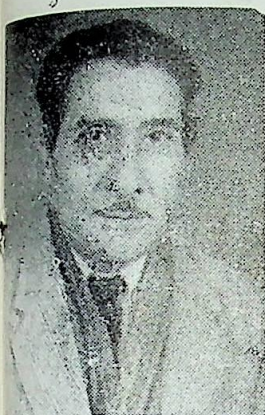
प्रो० नीलकंठ गुर्टू

जन्म : श्रीनगर। हिन्दी और संस्कृत के विद्वान। कश्मीर शैवदर्शन के अधिकारी-विद्वान। कुछ समय तक राज्यकीय प्राच्य-अनुसंधान विभाग में अधिकारी तदन्तर राज्यकीय शिक्षा विभाग में संस्कृत, हिन्दी प्राध्यापक। अनेक शोधपूर्ण निबन्धों के रचयिता।

पता शीतलनाथ, सथू, श्रीनगर।

डॉ० भूषण कुमार डेम्बी

जन्म : १६३८, श्रीनगर में। हिन्दी, संस्कृत और प्राचीन भारतीय इतिहास में निष्णात। शारदा लिपि के अधिकारी विद्वान। चम्बा (हि० प्र०) के प्राचीन इतिहास में गवेषणा कार्य किया।

पता— आचार्य एवं अध्यक्ष, हिन्दी-संस्कृत विभाग, गान्धी मेमोरियल कॉलिज, श्रीनगर (कश्मीर)।
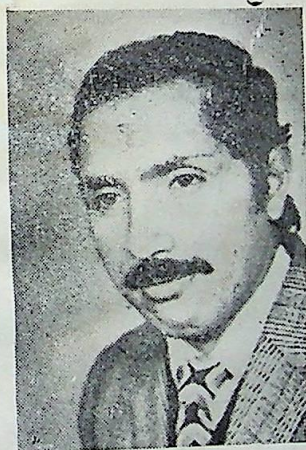
श्री मोतीलाल ज़ाडू शास्त्री 'पुष्कर'

जन्म : श्रीनगर १९३४। संस्कृत के विद्वान, समाज सेवी, अनेक साँस्कृतिक संस्थाओं के सक्रिय सदस्य। भूतपूर्व प्रधान ब्राह्मण महामण्डल, कश्मीर कुछ समय तक केन्द्रीय बौद्ध दर्शन महाविद्यालय, लेह में व्याख्याता रहे। रचनाएं - गुरुनानकोपाख्यानम्, इक़बाल-काव्य दर्शनम् आदि।

पता—गणपतियार, श्रीनगर (कश्मीर)।

जन्म : १९४०, नरवीरस्थान, श्रीनगर। पैतृक परम्परा से प्राप्त शोध कार्य में रुचि। अनेक शोध पूर्ण लेखों एवं शोध ग्रंथों तथा काव्य-संग्रहों का प्रणयन। हिन्दी और कश्मीरी निर्गुण संत-काव्य पर पी० एच० डी० की उपाधि। सम्प्रति—हिन्दी कहानी में नारी चित्रण के विविध आयाम' विषय पर डी० लिट० की तैयारी में संलग्न।

पता प्रवक्ता हिन्दी विभाग, हिमाचल प्रदेश विश्वविद्यालय, शिमला-५
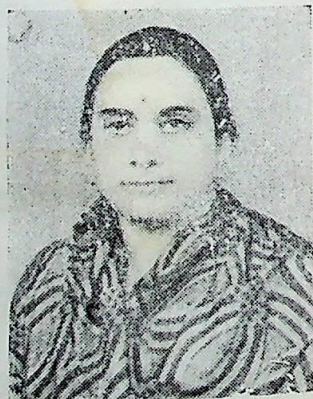
डॉ० कृष्णा रैना
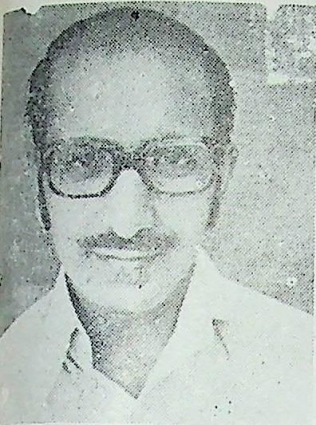
जन्म : श्रीनगर। कश्मीरी बज़म-इ-अदब, दिल्ली कश्मीरी हिन्दी पत्रिका "पम्पोश" दिल्ली तथा कश्मीरी भवन, दिल्ली की गतिविधियों से शुरू से ही सक्रिय रूप से सम्बद्ध। १९५० से दिल्ली के शिक्षा निदेशालय में तथा १९५८ से शिक्षा विभाग नगर-निगम दिल्ली में विभिन्न पदों पर कार्यरत— सम्प्रति उपशिक्षा-प्रधिकारी, दिल्ली नगर निगम।

पता—डी-४०, पम्पोश एन्क्लेव, नई दिल्ली।

श्री लाल चन्द कौल

जन्म : १९४१ श्रीनगर। कुछ समय तक कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय में अध्यापन। १९७० से भारतीय भाषा संस्थान, मैसूर में लोक-साहित्य के विशेषज्ञ। कई पुस्तकें और अनेक शोध पत्र प्रकाशित। कश्मीरी और हिन्दी के लोक-गीत के लिए भारत सरकार द्वारा पुरस्कृत। फोक लोर फेलोज़ ऑफ इण्डिया सोसाइटी के सचिव।

पता—द्वारा—भारतीय भाषा संस्थान, मानस गंगोत्री, मैसूर।

डॉ० जवाहर लाल हण्डू

जन्म : भद्रवाह (जम्मू) विज्ञान में स्नातक, कुछ समय अध्यापक, बाद में हिन्दी साहित्य का विशेष अध्ययन। भदवाह की लोक संस्कृति के विशेषज्ञ, अनेक शोध-पूर्ण लेखों और पुस्तकों के प्रणेता। इस समय गवर्णमेंट कॉलिज पुंछ (जम्मू) में हिन्दी के व्याख्याता।

पता— मोहल्लासराफ, भद्रवाह (जम्मू)।
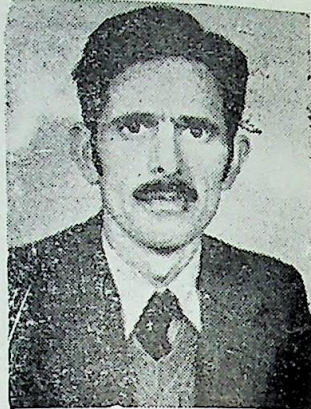
डॉ० प्रियतम कृष्ण कौल

डॉ० अमरनाथ प्रशान्त

जन्म : तेहसील बड़गाम १९४०, एक कश्मीरी कविता संग्रह 'सोंतक्य आलव' प्रकाशित। प्रेमचन्द की कहानियों में 'ग्रामीण जीवन'—(प्रकाशित) अब्दुल अहद आज़ाद और रामधारी सिंह दिनकर के काव्य का तुलनात्मक अध्ययन पर पी० एच० डी०। सम्प्रति—राजभाषा विभाग केंन्द्रीय गृह मन्त्रालय द्वारा संचालित श्रीनगर शिक्षा केन्द्र में अध्यापन।

पता—सथू पाईन, श्रीनगर (कश्मीर)।

अनन्तनाग जिले का प्रथम मुसलमान छात्र जिसने प्रतिकूल परिस्थितयों में प्रथम कक्षा से हिन्दी का एक विषय के रूप में अध्ययन किया। संप्रति कश्मीर विश्वविद्यालय के हिन्दी विभाग में एम० ए० हिन्दी का छात्र। रेडियो कश्मीर श्रीनगर के हिन्दी कार्यक्रमों में प्राय: भाग लेते हैं। कई शिक्षण संस्थाओं की पत्रिकाओं में मौलिक और रोचक लेख प्रकाशित। 'भारती' उपनाम से छोटी-छोटी हिन्दी कविताएँ लिखीं हैं।

पता—सुपुत्र श्री मुहम्मद अकबर गनाई (टीचर) मोंगहामा, वाल, अनन्तनाग (कश्मीर)।

श्री अब्दुल रशीद गनाई

डॉ० संवित कौल

जन्म : १९४१ श्रीनगर, विज्ञान के छात्र और प्राध्यापक होते हुए भी हिन्दी लेखन में रुचि। कश्मीर में हिन्दी के प्रचार-प्रसार में सक्रिय योगदान। कतिपय रचनाएँ विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित।

पता – व्याख्याता, नृविज्ञान विभाग, पंजाब विश्वविद्यालय, चण्डीगढ़।
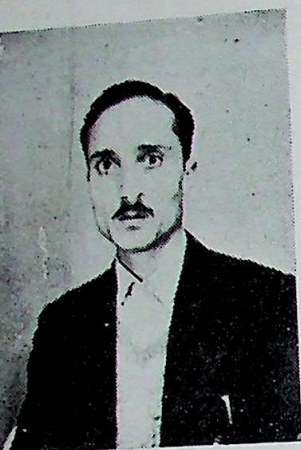
श्री त्रिभुवन नाथ शास्त्री

जन्म : श्रीनगर १९३४, संस्कृत के विद्वान, कश्मीर में संस्कृत-हिन्दी प्रचार के कार्य में सक्रिय योगदान, संस्कृत कश्मीरी कवि। सामाजिक कार्य में रुचि।

पता—गणपतियार, श्रीनगर।

जन्म : १९३१, श्रीनगर। संस्कृत के विद्वान, कश्मीरी भाषा के शोध में रुचि, कुछ समय तक अध्यापन किया। सम्प्रति, कल्चरल अकादमी द्वारा सम्पादित कश्मीरी कोष के सहायक-सम्पादक। कश्मीरी, उर्दू, हिन्दी और संस्कृत में अनेक शोध-पूर्ण लेखों के प्रणेता।

पता—गणपतियार, श्रीनगर।
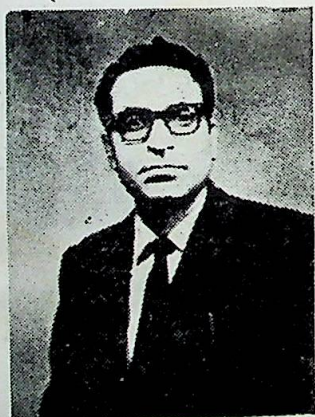
श्री बद्रीनाथ कल्ला शास्त्री

प्रो० शिव निर्मोही

जन्म : पैंथल (ऊधमपुर) १९३७। डोगरी लोक साहित्य में विशेष रुचि। अनेक शोध पूर्ण-लेखों के प्रणेता।

पता प्रवक्ता--हिन्दी विभाग, गवर्णमेंट कॉलिज, कठुआ (जम्मू)।

जन्म : १९२९ श्रीनगर। कश्मीर के प्रसिद्ध संगीतज्ञ, हिन्दी के प्रचार में सक्रिय योगदान। संगीत सम्बन्धी अनेक रोचक लेख विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित। २० वर्ष तक विभिन्न शिक्षा संस्थाओं में हिन्दी भाषा और साहित्य का अध्यापन। सम्प्रति अध्यक्ष गायन विभाग जे एण्ड के इंस्टीट्यूट ऑफ फाईन आर्ट्स, श्रीनगर।

पता—चिक्राल मोहल्ला, श्रीनगर (कश्मीर)।
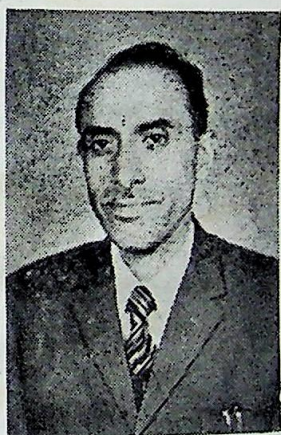
श्री पृथ्वीनाथ रैना

जन्म : १९३५ श्रीनगर। हिन्दी के प्रचार आन्दोलन में बाल्यकाल से सम्बद्ध। का०।८ हिन्दी साहित्य सम्मेलन के संस्थापक-सदस्य एवं प्रधान मन्त्री 'कश्यप' मासिक हिन्दी पत्रिका के संस्थापक प्रबन्ध सम्पादक, ज० क० राष्ट्र-भाषा प्रचार समिति के संस्थापक सदस्य, सम्प्रति संयुक्त मन्त्री। कई साँस्कृतिक एवं शैक्षणिक संस्थाओं से सम्बद्ध। अनेक पत्र-पत्रिकाओं में कश्मीरी संस्कृति एवं साहित्य पर बीसियों लेख प्रकाशित। अनेक पुस्तक-पुस्तिकाओं के प्रणेता। 'सन्तूर के स्वर' (मौलिक निबन्ध संग्रह) जम्मू कश्मीर राज्य द्वारा पुरस्कृत।
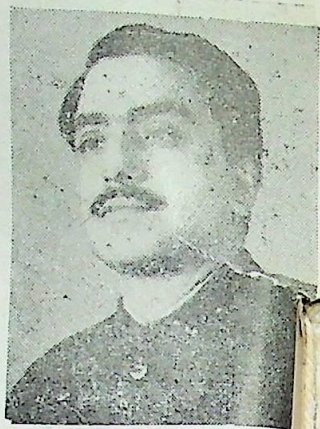
पता—प्रोफेसर एवं अध्यक्ष, हिन्दी-विभाग, गवर्णमेंट कॉलिज, नवाकदल, श्रीनगर।

प्रो० चमनलाल सप्रू

जन्म : १९२३, श्रीनगर। जम्मू-कश्मीर के वरिष्ठतम हिन्दी संस्कृत प्राध्यापक। हिन्दी, संस्कृत और अंग्रेजी के विद्वान। अनेक शोधपूर्ण निबन्धों के लेखक। कई पुस्तक पुस्तिकाओं के प्रणेता। कश्मीर हिन्दी-साहित्य सम्मेलन के भूतपूर्व अध्यक्ष, 'कश्यप' पत्रिका के संस्थापक प्रधान सम्पादक। अनेक सांस्कृतिक और शैक्षणिक संस्थाओं से सम्बद्ध। जम्मू कश्मीर राष्ट्र भाषा प्रचार समिति के कार्याध्यक्ष, अमरसिंह राज्यकीय महाविद्यालय के हिन्दी-संस्कृत विभागाध्यक्ष।

पता—११९, नरसिंह गढ़, श्रीनगर।

प्रो० काशीनाथ दर